यह पुस्तक किन लोगों को पढ़नी चाहिए?

१. जो अपने जीवन मे कोई महान् कार्य करना चाहते है।

२. जो लोक-सेवा के पुनीत कार्य द्वारा जीवन-साफल्य लाभ करना चाहते हैं।

३. जो भारत और सारे संसार मे सुख-शान्ति देखना चाहते है।

४. जो संसार को वदल कर पहले से अच्छा वना देना चाहते है।

५. जो देश व्यापी भ्रष्टता, अकर्मण्यता और वैमनस्य को दूर करना चाहते है।

६ जो मजदूर और पूञ्जीपति के झगड़े को मिटाना चाहते हैं।

७. जो सिद्धहस्त लेखक और प्रभावशाली वक्ता वन कर मानव-समाज का मंगल करना चाहते है।

८. जो अपने जीवन को सच्चे अर्थो मे उच्च, पवित्र तथा धार्मिक वनाना चाहते हैं।

९ जो चाहते हैं कि हमारा लोक-राज सच्चा लोकतंत्र तथा स्थायी हो।

१०. जो अपने मानवी सम्बन्धों को उन्नत तथा सुखद वनाना चाहते है।

११. जो सरकारी कर्मचारी वनकर केवल धनोपार्जन ही नहीं, वरन् राज्य-कार्य को सुचारुरूप से चला कर सच्ची देश सेवा भी करना चाहते है।

१२. जो मिल-मालिक अपने मजदूरों को सन्तुष्ट तथा प्रसन्न रखना चाहते है।

१३. जो सद्धर्म का प्रचार करके ससार को सुखधाम बनाना चाहते है ।

१४. जो लायब्रेरियन बन कर लोक-सेवा करना चाहते हैं ।

१५. जो विद्यार्थी है और जन-सेवा द्वारा ऊँचा उठना चाहते है । जो व्यापारी हैं और दान द्वारा धर्मकार्य मे सहायता देना चाहते है ।

१६. जो अपने मे पवित्र जीवन के लिए प्रेम पैदा करना चाहते हैं । जो भारत से जात-पाँत के विष को दूर करके समता, बन्धुता और सच्ची राष्ट्रीयता लाना चाहते है ।

१७. जो महात्माओं के बहुमूल्य उपदेशों से लाभ उठाना चाहते हैं।

१८. जो सेवा से संसार को जीतना चाहते हैं ।

१९. जो शस्त्र-विजय नहीं; वरन् सम्राट् अशोक के सदृश धर्म-विजय करना चाहते है ।

२०. जो अन्धकार से प्रकाश मे जाना चाहते हैं ।

सम्पादकीय

१. माला-नायक का परिचय—

श्री स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज का जन्म पंजाब के होशिआरपुर नगर के समीपवर्ती बड़ी बसी नाम के उपनगर के एक प्रसिद्ध वैद्यो और विद्वानो के कुल मे सं १६१६ मे हुआ था। आपकी आरम्भिक शिक्षा अपने यहा से बारह कोस पर हरियाना उपनगर मे हुई थी। आरम्भ से ही आप के अन्दर धार्मिक रुचि और साधु-सन्तो के सत्संग में प्रीति पाई जाती थी। इसी कारण जब गृहस्थ हो जाने के कुछ समय पीछे आप की गृहिणी का देहान्त हो गया, तो आप घर से निकल कर विरक्त अवस्था मे विचरने लग गए। सं० १६५३ के लग-भग श्री स्वामी दयानन्द कृत सत्यार्थ-प्रकाश के पाठ द्वारा आप मे लोक सेवा का तीव्र भाव जाग उठा। तभी से आप ने स्थिरमति हो कर, सद्-विचार और निष्काम-कर्म के सुन्दर, समन्वित मार्ग को धारण किया और सं० १६६६ मे निर्वाण-पद की प्राप्ति तक, अर्थात् ४६ वर्ष बराबर, उसे निबाहा। आप पवित्रता और सरलता की मूर्ति, राग-द्वेष से विमुक्त, दरिद्र-नारायण के उपासक और खरी-खरी अनुभव की बाते सुनाने वाले सदा-हँस परम-हंस थे। आप सदा सभी के बनकर रहे और कभी किसी दलबन्दी में नहीं पड़े।

२. 'स्मारक' का इतिहास—

श्री स्वामी जी महाराज विश्वेश्वरानन्द वैदिक संस्थान के आदिम निक्षेप-धारी (ट्रस्टी) एवं कार्य-कारी (एग्जैक्टिव) सदस्यों मे से थे

और आप ने आजीवन इसे अपने आशीर्वाद का पात्र बनाए रखा आपका देहान्त हो जाने पर संस्थान ने यह निश्चय किया कि एक स्थिर साहित्य-विभाग के रूप में आप का स्मारक स्थापित किया जावे, जो सरल, स्थायी, सार्वजनिक साहित्य प्रकाशित करे और उसके द्वारा, आपके जीवन के ऊचे व्यापक आदर्शों को स्मरण कराता हुआ, जनता-जनार्दन की सेवा मे लगा रहे। इस पवित्र कार्य के लिए जनता ने साठ हजार रुपये से ऊपर प्रदान करते हुए अपनी श्रद्धा प्रकट की। परन्तु जब १९४७ के मध्य तक इस बारे में इतना कार्य हो चुका था, तभी हमारे प्रदेश का अंग-छेदन कर दिया गया और सारी भारत-मातृक जनता के साथ ही संस्थान को भी लाहौर छोड़ना पडा। साथ ही, इसे कई लाख रुपये की भारी हानि भी सहनी पड़ी। तभी से यह अपने पॉव पुनः जमाने मे लग रहा है। इस ने अपने पुन प्रतिष्ठापन के उपलक्ष्य में, १९५० के अंदर, प्रस्तुत ग्रंथ-माला का प्रकाशन प्रारम्भ करते हुए, अन्य सभी आवश्यक कार्यो से पूर्व उक्त स्मारक की स्थापना के सम्बन्ध मे ही अपने कर्त्तव्य का पालन किया है। इस माला मे प्रस्तुत ११वॉ ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है †

३. माला का क्षेत्र—

विश्व भर के विश्व-विध विज्ञान, दर्शन, साहित्य, कला और अनुभव के आधार पर ग्रथित की जाने वाली इस माला के प्रकाशन-

---

† इस से पहले, उत्तरोक्त दस ग्रन्थ इस माला में प्रकाशित हो चुके है—१. स्वामी कृष्णानन्द सरस्वती कृत—ब्रह्म-विद्या, २. अध्यात्म-दर्शन, ३ आत्म-पथ, और ४. कर्म और योग, ५. श्री गौरीशङ्कर कृत—संस्कृत शिक्षा-विधि, ६. श्री सन्तराम कृत—हमारे बच्चे, ७. श्री बहादुरमल कृत—बच्चो की देख-भाल, ८. श्री विश्वबन्धु कृत—वेद-सार, ९. मानवता का मान, और १०. सत्संग-सार।

कार्य का क्षेत्र अति विशाल रहेगा, पर, फिर भी, क्षमता की सीमा को दृष्टि मे रखते हुए हमारे प्रकाशनो की मुख्य भाषा हिन्दी रहेगी, और, इनका मुख्य आधार भारतीय संस्कृति और साहित्य होगा। इनमें अपने पूर्वजो की दाय-रूप सामग्री की व्याख्याओ के साथ ही साथ नई रचनाओं को भी पर्याप्त संख्या मे रखा जाएगा। इसी प्रकार, इन मे देश-विदेश की उत्तम रचनाओ के उत्तम अनुवादो आदि का भी विशेष स्थान रहेगा।

४. उपस्थित ग्रंथ—

इस ग्रन्थ के लेखक, श्री सन्तराम जी हिन्दी जगत् के प्रसिद्ध और सिद्धानुभवी महारथी हैं। लगातार चालीस बरसो से आप की लेखनी चल रही है और चल रही है वैयक्तिक एवं सामाजिक, दोनो स्तरो पर सच्ची मानवता का मुखोद्घाटन तथा पृष्ठ-पोषण करने के लिए। इस से पूर्व, आप का एक और ग्रन्थ 'हमारे बच्चे' भी इस माला की सख्या ५ के रूप मे प्रकाशित होकर विपुल प्रसिद्धि लाभ कर चुका है। उपस्थित ग्रन्थ 'लोक-विजय' के मार्ग का निर्देश करता है। इस निर्देश का तत्त्व यह है कि मानव एक दूसरे को अपने सद्गुणों द्वारा ही प्रभावित करने का अभ्यास करे। इन सद्गुणों में आत्म-विजय और दूसरो की मानसिक वृत्तियो के अध्ययन-पूर्वक उनकी सची सहानुभूति-भरी भलाई करने के संकल्प का प्रमुख स्थान समझना चाहिए। इन सद्गुणो द्वारा प्राप्त किया जाने वाला विजय ही असली विजय होता है। इसके सामने उस विजय में कुछ भी तत्त्व नहीं पाया जाता, जो शस्त्र-प्रहार द्वारा की गई शारीरिक अथवा धनादि के प्रलोभनो द्वारा क्षुद्र वृत्तियो की पूर्ति करते हुए की गई मानसिक हिंसा के फल के रूप मे प्राप्त किया जाता है। यह विषय इतना

अधिक विशाल, उपयोगी तथा रोचक है कि इसके बारे मे जानकारी और सत् प्रेरणा प्राप्त करने के लिए सभी कोटियो के पाठक इस उत्तम ग्रन्थ के पाठ से पूरा लाभ उठा सकते है।

५. आभार-प्रकाशन—

अपने संस्थान के सामान्य प्रकाशन विभाग और मुद्रण विभाग के अधिकारिओ और कर्मिष्ठो ने शोध-पत्र ठीक करने तथा छपाई व जिल्द आदि का आकार-प्रकार सुन्दर बनाने मे विशेष परिश्रम किया है। इस सराहनीय सहयोग के लिए माला-सम्पादक के नाते, लेखक उन सब का हृदय से आभारी है।

साधु आश्रम, होशिआरपुर
शिव-रात्रि, २०१०

विश्वबन्धु

लोक-विजय

★

लेखक,
सन्तराम, बी. ए.

प्रथम संस्करण
२०१० (1954)

प्रकाशक,
विश्वेश्वरानन्द संस्थान प्रकाशन,
P. O. साधु आश्रम, होशिआरपुर (पंजाब)

विषय-सूची

प्राक्कथन

सहस्त्रों वर्ष की दासता के पश्चात् हमारा भारत पुनः स्वतंत्र हुआ है। यह सचमुच बड़े हर्ष का विषय है। परन्तु इस नवप्राप्त स्वतंत्रता की रक्षा का प्रश्न अभी तक पूर्ववत् वर्तमान है। आज की यह स्वतंत्रता भारत को पहली बार ही नहीं प्राप्त हुई। इसके पूर्व भी कई बार निसर्ग ने इसे स्वाधीन रहने का सुयोग प्रदान किया था। शिवाजी ने महाराष्ट्र में स्वतंत्रता का झण्डा गाड़ा था। पंजाब में रणजीतसिंह ने अपना राज्य स्थापित कर लिया था। मराठों ने शाहआलम से दिल्ली का शासन-सूत्र अपने हाथ में ले लिया था। सन् १८५७ में भी भारत एक प्रकार से स्वतंत्र हो गया था। परन्तु जिन कारणों से पहले भारत ने अपनी स्वतंत्रता खोई थी, उनको दूर करने पर हमने ध्यान नहीं दिया। अतः, यह देश बार बार स्वतंत्रता खोकर पराधीन ही बनता रहा। हम उस स्वाधीनता को स्थिर न रख सके।

अब भी ठीक वैसी ही स्थिति है। जिन कारणों से भारत प्राचीन काल में अपनी स्वतंत्रता खोता रहा है, वे अब भी विद्यमान हैं। जिन पुरानी समस्याओं का समाधान आज से बहुत पहले हो जाना चाहिए था, पर जो अभी तक हल नहीं की गई वे भारत के भविष्य को अन्धकारपूर्ण बना रही हैं। जब तक इन समस्याओं का समुचित समाधान नहीं होगा तब तक स्वतंत्रता की नौका मँझधार में डगमगाती ही रहेगी।

संसार मे ऐसा कोई राष्ट्र नही जिसे कोई न कोई बुराई दुःख न दे रही हो और जिसे दूर करने के लिए वह राष्ट्र यत्नवान् न हो। परन्तु भारत की एक विशेषता है और वह यह कि दूसरे राष्ट्रों में पाई जाने वाली सभी बुराइयाँ तो इसमे हैं ही, परन्तु उनके अतिरिक्त कई ऐसी बुराइयाँ भी हैं जो केवल भारत मे ही पाई जाती हैं और किसी दूसरे राष्ट्र में नही। उन बुराइयों मे से एक बड़ी बुराई जात-पॉत है। यह भारत को यक्ष्मा की भांति चिपट रही है। यह भारत को एक राष्ट्र बनने से रोकती रही है और अब भी भारतीय राष्ट्रीयता के मार्ग मे सब से बड़ी बाधा है। खेद है कि इस के नाश पर जितना चाहिए था उतना कभी ध्यान नहीं दिया गया। इसी कारण भारत की तकदीर बन-बन के बिगड़ जाती रही है। यह जात-पाँत भारतीय स्वाधीनता और लोकराज की सब से बड़ी शत्रु है।

जात-पॉत के बाद हमारी स्वतन्त्रता के शत्रुओं मे साम्प्रदायिकता, अन्धविश्वास, भाग्यवाद, स्वार्थपरता, भाई-भतीजों की जेबें भरना, घूसखोरी, चोरबाजारी, निरक्षरता, दरिद्रता, कुरीतियाँ और भ्रष्टाचार आदि हैं।

किसी दूसरे मे उसका कोई सद्गुण ले लेना बुरा नहीं, वरन् दूसरों से कुछ सीखे बिना मनुष्य उन्नति ही नहीं कर सकता। परन्तु बिना सोचे समझे बन्दर की भाँति दूसरे का अनुकरण करना बहुधा हानिकारक सिद्ध होता है। कम्यूनिज्म (साम्यवाद) और सोशलिज्म (समाजवाद) आदि पश्चिमी देशों की विशेष

अवस्थाओं में उत्पन्न होने वाले रोगों का उपचार हैं। पूंजीवाद तथा वर्ग-भेद विशेष रूप से पाश्चात्य देशों की व्याधियाँ हैं। ये वहाँ उद्योगीकरण से उत्पन्न हुई हैं। कृषि-प्रधान भारत में अभी इनका विशेष प्रसार नहीं। परन्तु हमारे अनेक भाई यूरोप और अमेरिका के अन्धानुकरण में सारा बल कम्यूनिज्म और सोशलिज्म के प्रचार पर दे रहे हैं। इस पर मजे की बात यह है कि पश्चिमी देशों में जन्मना जात-पांत नहीं, रूस में धर्म को भी अफीम की गोली माना जाता है। परन्तु हमारे ये भारतीय कम्यूनिस्ट जात पाँत और साम्प्रदायिकता में फँसे रह कर केवल दूसरों को लूटने या हड़तालें कराने को ही कम्यूनिज्म मान रहे हैं, ब्राह्मण कम्यूनिस्ट अपने नाम के साथ शर्मा का और राजपूत कम्यूनिस्ट अपने नाम के साथ ठाकुर का पुछल्ला लगाए हुए हैं। ब्राह्मण ब्राह्मण के साथ और राजपूत राजपूत के साथ ही बेटी-व्यवहार करता है। ये लोग अपने देश के मूल रोग—सामाजिक विषमता—को दूर करने का साहस नहीं रखते। पश्चिम के अंधानुकरण में वे केवल आर्थिक समता के लिए ही चिल्लाहट करते हैं। इसी से देश की वास्तविक व्याधि शान्त नहीं हो पाती।

दीर्घकाल तक पराधीन रहने के कारण हम आत्म-विश्वास खो बैठे हैं। हमें प्रत्येक बात में दूसरे का मुंह ताकने की लत पड़ गई है। विदेशी शासन-काल में हम अपने प्रत्येक कष्ट का कारण विदेशी शासकों को ही समझा करते थे और अपने कष्ट को दूर करने के स्थान में शासकों की ही निन्दा करते थे। निकट में

वन्दी तोते की भाँति हम अपनी प्रत्येक सुख-सुविधा के लिए विदेशी शासकों पर निर्भर रहा करते थे। अपने किसी कष्ट या विपत्ति में हम विदेशी शासकों या भाग्य को कोसने के सिवा और कुछ नहीं करते थे। वही लत अभी तक हम में चली आ रही है। लोकराज की स्थापना हो जाने पर भी हम बड़-बड़ाते हुए कह रहे हैं कि यह आज़ादी नहीं बरबादी है, इससे तो विदेशी शासन ही अच्छा था। हम अनुभव ही नहीं करते कि हम अपने राजा अब आप हैं, यदि हम आप अच्छे होंगे तभी हमारा लोक-राज अच्छा होगा। अब हमारे अपने सिवा कोई दूसरा राजा नहीं, जो हमारे कष्टों को दूर करेगा। हमें अपने कष्टों को आप ही दूर करना पड़ेगा, नहीं तो वे दूर न होंगे। किसी अवतार, किसी महात्मा, किसी पीर, किसी गुरु के आने की प्रतीक्षा में हाथ पर हाथ धरे बैठे रहने से अपनी दशा सुधर न सकेगी। अब तो जनता ही जनार्दन है।

आज हमें सरकारी कर्मचारियों तथा जन-साधारण में जो भ्रष्टता तथा चरित्र की दुर्बलता देख पड़ती है उसका कारण लोक-राज नहीं। ये दुर्गुण हम में पहले भी थे। वे विदेशी शासन के भय या दबाव से प्रकट नहीं हो पाते थे। अब वह दबाव उठते ही वे प्रकट हो गए हैं। आवश्यकता अपने इन दुर्गुणों को जड़ से उखाड़ फेंकने की है, न कि लोक-राज या किसी राजनीतिक दल को बुरा-भला कहने की। यद्यपि ऐसा जान पड़ता है कि चारों ओर भ्रष्टता, अनाचार तथा बेईमानी का ही अखण्ड राज्य है

और देश मे एक भी अच्छा और सच्चा मनुष्य नही रहा, सारा राष्ट्र ही दुर्वृत्त हो रहा है। पर बात ऐसी नहीं। अब भी अच्छे मनुष्यों की ही संख्या अधिक है। बुरे लोग दाल मे नमक के समान है। यदि दुर्वृत्त लोगों की संख्या भले लोगों से अधिक हो जाय तो संसार मे रहना ही असम्भव हो जाय। तब कोई भी पुलिस, कोई भी सेना और कोई भी मिलीशिया देश मे व्यवस्था बनाए न रख सके।

बात वास्तव मे यह है कि भ्रष्टता फैलाने वाले लोग थोड़े होते हुए भी चुस्त और क्रियाशील होते है। इस के विपरीत अच्छे मनुष्य निष्क्रिय तथा सुस्त है। इसी लिए भ्रष्टाचारी व्यक्ति संख्या मे थोड़े होते हुए भी अधिक संख्यावालो को व्याकुल कर रहे है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि दाल के बहु संख्यक दानों मे पड़े हुए ककर सारी दाल को ही बिगाड़ देते हैं। चोर, डाकू और अनाचारी आदि लोग अधिक संगठित होते है। थोड़ी संख्या वालो का संगठित हो जाना अपेक्षाकृत सरल भी होता है। इस के विपरीत बहुसंख्या वाले लोग प्रमाद और संख्या के अभिमान के कारण संगठित नहीं हो पाते। समाज-विरोधी कार्य करने वाले लोग दो प्रतिशत से अधिक नहीं होंगे। यदि इन को ठीक करने के लिए तीन या चार प्रति सैकडा अच्छे मनुष्य भी संगठित हो जाएं तो राष्ट्र का कायापलट हो सकना कठिन नहीं।

शताब्दियों के गिरे हुए राष्ट्रों तथा पतित जातियों के पुनरुत्थान

का कार्य सुगम नहीं होता जैसे पुराने रोगी को स्वस्थ तथा बलिष्ट बनाने के लिए दीर्घ काल तक उपचार तथा संयत जीवन-चर्या की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार किसी राष्ट्र का कायापलट करने के लिए भी दीर्घोद्योग तथा घोर परिश्रम का प्रयोजन रहता है। सोलहवीं शताब्दी के मनुष्य को बीसवी शताब्दी का लबादा पहना कर ही उसे बीसवीं शताब्दी का नहीं बनाया जा सकता। न यही संभव है कि कोई राष्ट्र सामाजिक रूप से तो १४वीं शताब्दी मे रहे पर राजनीतिक रूप से बीसवी शताब्दी का बन जाय। हम भूल जाते है कि भारत मे एक मंगल-कारी राज्य की स्थापना की गई है न कि दमनकारी राज्य की।

अपने राष्ट्र को स्वस्थ, सुदृढ़ और सर्वगुण-संपन्न बनाने के लिए बहुत से निःस्वार्थ, त्यागी, तपस्वी, योग्य और धुन के धनी सच्चे लोक-सेवको की आवश्यकता है। दुःख का विषय यह है कि आज भारत मे अधिकतर नेता ऐसे है जो खाना ही चाहते है, पकाने का कष्ट सहन करना नहीं चाहते।

सभी नर-नारी भगवान् की अमृत संतान है। उन को उनके पिता की ओर से कई ऐसे अधिकार मिले है, जो उन से छीन कर किसी दूसरे को नहीं दिए जा सकते। इन अधिकारो में से मुख्य है—

(१) जीवन या जीने का अधिकार।

(२) स्वतन्त्रता अर्थात् स्वतन्त्र रहने का अधिकार।

(३) सुख की तलाश का अधिकार, अर्थात् प्रत्येक नर-नारी का यह अधिकार है कि वह अपने को सुखी बनाए।

इन ईश्वर-प्रदत्त अधिकारों की रक्षा के लिए ही मनुष्य राज्य या शासन की व्यवस्था करते हैं। राज्य को जो अधिकार होते हैं वे जनता के दिए होते हैं। राज्य जनता को कोई अधिकार नहीं देता। मनुष्य को अधिकार तो ईश्वर से ही मिलते हैं। यदि मनुष्यों का बनाया हुआ राज्य इन ईश्वर-प्रदत्त अधिकारों की रक्षा नहीं करता या नहीं कर सकता तो मनुष्य या प्रजा उस राज्य से अपने दिए अधिकार छीन सकती है। राज्य मनुष्य के अधिकार नहीं छीन सकता।

राज्य और राष्ट्र को सुव्यवस्थित और उस में फैली हुई बुराइयों को दूर करने के लिए सच्चे लोक-सेवकों की आवश्यकता होती है। भाड़े के टट्टू कर्मचारी या स्वार्थी नेता यह काम नहीं कर सकते।

आदर्श लोक-सेवक

आदर्श लोक-सेवक झण्डे लेकर प्रदर्शन नहीं करता। वह नरसिंहे और बाजे बजा कर जुलूस नहीं निकालता। वह सनसनी उत्पन्न करने वाले काम नहीं करता। वह बाजार में और बस्ती में जा कर सर्वहारा मनुष्य से मिलता है। उस का काम होता है सचाई पर बल देना, जहाँ दूसरे लोग झूठ को बढ़ाने पर कटिबद्ध होते हैं। जहाँ दूसरे लोग गड़बड़ कर रहे होते हैं वहाँ वह व्यवस्था स्थापित करता है। जहाँ घृणा हो वहाँ वह प्रेम

लाने का यत्न करता है। जहाँ अंधकार है वहाँ वह प्रकाश ले जाता है। वह सदा उन मौलिक सचाइयों को अधिक दृढ़ता के साथ आरोपित करने का उद्योग करता है, जिन को दूसरे उखाड़ फेंकने का यत्न कर रहे हैं।

लोक-सेवक अस्वाभाविक की अपेक्षा स्वाभाविक पर अधिक बल देता है।

लोक-सेवक के लिए साहस तथा उदारभाव से बढ़ कर और किसी बात की आवश्यकता नहीं होती। वह असाधारण की नहीं, साधारण की प्रत्याशा करता है। वह जानता है कि कर्त्तव्य की स्थिर पूर्ति के लिए परिश्रम, तल्लीनता और दैनन्दिन कड़े काम का प्रयोजन होता है। कोई काम कितना ही नीरस और रूखा-सूखा क्यों न हो, प्रेरक उद्देश्य के कारण उस काम की कठोरता निरन्तर हल्की होती रहती है।

तुच्छ से तुच्छ और थका देने वाला काम भी यदि भगवान् के नाम पर लोक-हित के भाव से किया जाय तो वह महत्त्वपूर्ण तथा प्रतिष्ठा का काम हो जाता है।

सच्चा लोक-सेवक आटे में खमीर की भाँति चुपचाप तथा शांत भाव से काम करता है, चोरी से, गुप्त रूप से और धोखे से नहीं।

सच्चा लोक-सेवक कोई विशेष अधिकार, कोई रियायत या कोई अनुग्रह नहीं चाहता। वह इस बात की भी प्रत्याशा नहीं

करता कि उस पर कोई विशेष ध्यान दिया जाय। वह उपेक्षा, भ्रांति, संदेह, तथा कष्ट के लिए सदा तैयार रहता है।

उसे सदा ध्यान रहता है कि महत्त्वपूर्ण बात उपस्थित रहना है, अर्थात् सदा ऐसे स्थान को भरने का यत्न करना जिसे, अन्यथा, डर है कि कोई दूसरा ऐसा व्यक्ति आ कर घेर लेगा या भर देगा जो दुष्टता, विनाश तथा विध्वंस पर तुला हुआ है। वह समझता है कि सफलता हो या न हो, मैं भगवान् के एक तुच्छ सेवक के रूप में जनता की सेवा कर रहा हूँ। इस से बढ़ कर उस के लिए सन्तोष की बात और क्या हो सकती है।

सच्चा लोक-सेवक मान-अपमान, हर्ष-शोक, स्तुति-निन्दा, आशा-निराशा और सफलता-विफलता से परे होता है। वह हितकर-अहितकर और भले-बुरे में भली भाँति पहचान कर सकता है। वह संसार को सुखी बनाने में अपना जीवन अर्पित कर देता है।

वह अपने दोषों और दूसरों के सद्गुणों के प्रति सजग रहता है। वह सब के हित में ही अपना हित समझता है। उस का आत्म-प्रेम विश्व-प्रेम का रूप धारण किए रहता है। वह सच्चा सन्त होता है।

वह कभी नहीं समझता कि मैं किसी का उपकार कर रहा हूँ। उसे अहंकार छूने नहीं पाता।

सब के हित के लिए ही उस के मुख से वचन निकलते हैं।

सच्चा लोक-सेवक क्षमाशील होता है। अर्थात् वह उसे कष्ट देने वाले को उस की भूल बता कर क्षमा कर देता है और शांत हो जाता है।

वह सन्तोषी होता है। अर्थात् वह निरन्तर कर्म करता हुआ उस के फलाफल की चिन्ता नहीं करता।

वह योग करता है। अर्थात् वह अपने भले का विचार करते हुए भी दूसरों के सुख को बढ़ाने और दुःख को घटाने में लगा रहता है। वह दूसरों के प्रति ऐसा कोई कर्म नहीं करता, जिसे वह स्वयं अपने प्रति पसन्द नहीं करता। वह अपने मन को सदा एक रस बनाए रखने का यत्न करता है।

वह संयम और मर्यादा का पालन करता है। वह काम, क्रोध, लोभ और अहंकाररूपी अपनी मानसिक वृत्तियों को नियंत्रित कर के विशेष उचित मर्यादाओं का पालन करता है। वह अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह आदि महाव्रतों को और शौच, अस्तेय, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर-प्रणिधान आदि महा आचारों को धारण करता है। वह अपनी भूख, प्यास और इन्द्रियों की विभिन्न वासनाओं तथा प्रवृत्तियों पर काठी डालता है।

सच्चे समाज-सेवक में निश्चय की दृढ़ता होती है। सच्चे लोक-सेवक में सच्चा समर्पण होता है। वह अपने सामने कोई लक्ष्य रख कर उस के लिए अपने को समर्पित कर देता है। वह सारा ध्यान उसी में लगाए रहता है।

आदर्श लोक-सेवक मे अद्वेष भाव होता है। अर्थात् वह किसी भी प्राणी से द्वेष नहीं करता। वह मन, वचन तथा कर्म से किसी को दुःख नहीं पहुँचाता।

आदर्श लोक-सेवक मे मैत्र-भाव होता है। सच्चा मित्र अपने मित्र का सदा हित-चिन्तन करता और उसके अच्छे कार्यो मे सहायता देता है। एक मित्र दूसरे व्यक्ति के हितार्थ कष्ट सहन करता हुआ भी अनुभव नही करता कि मै कष्ट उठा रहा हूं। लोक-सेवक सारे संसार को अपनी मैत्री का भाजन समझ कर सब से मित्रता का व्यवहार करता है। वह प्रातः काल उठ कर पहले यही सोचता है कि आज मुझे कौन-कौन लोक-हित के काम करने है। यही उसकी सन्ध्या-पूजा होती है।

आदर्श लोक-सेवक मे करुणा-भाव रहता है। दूसरो को दुःख मे देख कर उसका हृदय पिघल उठता है। वह उनके दुःख को देख कर उस दुःख को दूर करने के लिए व्याकुल हो जाता है।

बुराई को भलाई से जीतो

बुराई को भलाई से जीतना चाहिए। देश मे फैली हुई बुराई को भलाई फैला कर ही दूर किया जा सकता है। कारण यह कि आग पानी से बुझती है, आग से नहीं। किसी महात्मा का कथन है कि बुराई तुझे न दबा ले, वरन बुराई को भलाई से जीतो।

भ्रष्टता, घूसखोरी, साम्प्रदायिकता, अनाचार, बेईमानी, छूत-छात तथा ऊँच-नीच के भाव का दूर करना और राष्ट्र के चरित्र को ऊँचा उठाना ही इस समय की सबसे बड़ी समस्या है। इन बुराइयों को फैलाने वाले साधारण लोग ही नहीं, वरन् उनकी एक बहुत बड़ी संख्या ऐसे पदों और स्थितियों पर विराजमान है जहाँ से वे राष्ट्र के बहुत से लोगों में इन बुराइयों को फैला सकते है। स्कूलों, कालेजों, कचहरियों, माल के काग़ज़ों में पुलिस और सेना में सब कहीं जात-पाँत पूछी और लिखी जाती है। मजिस्ट्रेट और जज लोगों को जाति लिखाने पर बाध्य करते देखे जाते है। कथा, कहानी, उपन्यास, नाटक, स्मृति, पुराण, रामायण और महाभारत इत्यादि सभी पुराने ग्रंथों में जाति-भेद का विष फैलाया गया है। इस सारे कुप्रभाव को रोकने में साधारण मनुष्य अपने को असमर्थ पाता है। जहाँ ऊँचे से ऊँचे राज्य-कर्मचारी, सचिव तथा मन्त्री तक घूस, भ्रष्टता, भाई-भतीजों का पक्षपात करते नहीं हिचकते, जहाँ बडे-बड़े व्यापारी तथा धनी मानी, मिल-मालिक चोर बाजारी करते लज्जा का अनुभव नहीं करते, जहाँ खाद्य तथा पेय पदार्थों मे मिलावट करना पाप नहीं समझा जाता, जहाँ वचन देकर उससे फिर जाना एक तुच्छ सी बात समझी जाती है, वहाँ इस गन्दगी को दूर करके राष्ट्र के पुनरुत्थान के लिए कितने धुन के धनी और कितने बहुसंख्यक लोक-सेवकों की आवश्यकता है, इसका अनुमान सहज में ही लगाया जा सकता है।

कम्यूनिज्म या साम्यवाद की अच्छी बातें तो हम ने ली नहीं परन्तु हमारे युवक-समाज में जड़वाद या अनीश्वरवाद की प्रवृत्ति बढ़ने लगी है। वे पाप और पुण्य की, धर्माधर्म की कुछ भी परवाह नहीं करते। स्वार्थ-परता ने उन पर अधिकार कर लिया है। तप-त्याग तथा परोपकार का भाव लुप्त होता जा रहा है। इससे मनुष्य गिरकर पशु के स्तर पर पहुँच गया है। इसका परिणाम दुःख, घृणा, विनाश और व्यापक जन-संहार है।

इस लिए सच्चे लोक-सेवक को तब तक उद्योग करना बन्द नहीं करना चाहिए जब तक कि वह अपनी सचाई तथा भलाई का संदेश राष्ट्र के एक एक व्यक्ति तक न पहुँचा ले। एक ऐसे आन्दोलन की आवश्यकता है जिसका उद्देश्य राष्ट्र के प्रत्येक जन में व्यक्ति गत दायित्व के भाव का विकास और उन बड़ी सचाइयों को सर्वसाधारण में फैलाना हो जिन से समूची मनुष्य जाति को सुख-शान्ति प्राप्त हो सकती है।

इस से पहले जिन लोगों ने राष्ट्रोद्धार एवं विश्व-कल्याण का प्रचार किया है, उनके उदाहरण बड़े उत्साहवर्धक हैं। यदि आज भी वैसे ही सचरित्रता तथा विश्व-शान्ति के प्रचारकों की संख्या एक लाख भी हो जाय तो जगत का शान्तिमय रूपान्तर अवश्यम्भावी है।

ऐसा लोक-सेवक उन सचाइयों को चौराहे के प्रति-मूसर में,

राजमार्ग पर और पगडण्डियों पर सब कहीं ले जाता है। इस प्रकार इस समय संसार में जो कुप्रवृत्तियाँ चल रही हैं वह उनको बदलने का यत्न करता है।

प्रत्येक लोक-सेवक जानता है कि भगवान् ने उसे मछली पकड़ने वाला मछुवा बनाया है। वह यह भी जानता है कि वह एक भी मछली नहीं पकड़ सकता, यदि वह पानी से दो मील परे खड़े रह कर मछलियों के संबंध मे केवल बातें ही किया करता है।

पहचान

मनुष्यमात्र पर प्रेम ही एक ऐसी निशानी है जिस से सच्चा लोक-सेवक दूसरे लोगों से अलग पहचाना जाता है। सच्चा लोक-सेवक अपने को उस भयानक कुप्रवृत्ति से बचाता है जो जनता में फैल रही है। यह कुप्रवृत्ति अनेक ऐसे लोगों में बढ़ रही है जो दूसरी दृष्टियों से स्वस्थ निर्णय-शक्ति रखते हैं परन्तु जो घृणा का बदला प्रेम से देने के स्थान मे घृणा से देने लगे है। स्मरण रहे कि महापुरुष संसार के सभी मनुष्यों के लिए अपने प्राणों की आहुति देते है, न कि केवल उन के लिए जो उन से प्यार करते है। ईसा ने उन के लिए भी कल्याण कामना की थी जिन्हों ने उसे सूली पर लटकाया था। दयानन्द ने अपने विष देने वाले को भी अपने पास से धन दे कर भगा दिया था ताकि वह पकड़ा जा कर दण्डित न हो। इसी प्रकार यूनान के तत्त्वज्ञानी लाइकार्गस की एक आँख जब एक नागरिक ने फोड़ दी, तब

दूसरे नागरिको ने उस दुष्ट युवक को दण्ड देने के लिए उन के हाथ मे सौंप दिया किन्तु लाईकार्गस ने उसे दण्ड न दिया। उन्होंने उसे अच्छी शिक्षा दे कर भला आदमी बना दिया और सब को दिखाने के लिए एक दिन खुल्लमखुल्ला नाट्यशाला मे ले गये। नगरवासियो ने जब आश्चर्य प्रकट किया तब उन्होंने उन से कहा—"तुम लोगो के हाथ से जब मैंने इसे पाया था तब यह दुष्ट और उग्रस्वभाव का था; अब इसे शांत, शिष्ट बना कर मैं तुम लोगों को लौटाता हूं।" इसी भाव से लोक-सेवकों को काम करना चाहिए। जितना अधिक आप का जीवन पवित्र होगा उतना ही अधिक आप दूसरो मे पवित्रता ला सकेंगे।

कल्याण-कामना

मंगल-कामना का अर्थ है, सब के लिए प्रेम प्रदर्शित करना। यह काम हम मे से सब कोई कर सकता है। हमें सब के निकट जाना चाहिये। महात्माओ का सब से बड़ा गुण यही रहा है कि भलाई करने के लिए वे सब के पास जाते थे। वे पापियों, कोढ़ियों और वेश्याओ तक से घृणा न कर के उन की सेवा करते थे। भगवान् बुद्ध ने अपने हाथ से एक पतिता नारी—वासवदत्ता के गलित अंगो से पीप पोंछी थी। वे आप उस के पास उस की कुटी मे गये थे। महात्मा ईसा सब लोगों के पास जा कर उन के दुःखो को दूर करते थे। हमें भी उन्हीं महात्माओं के पद-चिह्नों का अनुसरण करते हुए सेवा के लिये दूसरो के पास जाना चाहिए।

पहाड़ मुहम्मद के पास नहीं गया था, मुहम्मद पहाड के पास जाते थे।

लोक-सेवक को यह प्रत्याशा नहीं करनी चाहिए कि जनता उस का उपदेश सुनने उस के पास आएगी।

सब को उपदेश दो

लोगों को विचारों द्वारा न कि चीजे देकर हाथ मे लिया या हाथ से खोया जाता है। विचार मे बड़ी भारी शक्ति है। आप किसी के विचारों को बदल दीजिए, उस के विचारों को अपने नियन्त्रण मे कर लीजिए, वह व्यक्ति सर्वथा बदल जायगा, वह पूर्णरूप से आप के नियन्त्रण मे हो जायगा। आप संसार मे घृणा, विद्वेष और कटुता के विचार फैला दीजिए। संसार मे सब कही गड़बड़ और अशांति फैल जायगी। लोग आपस मे लड़ने लगेंगे। इस के विपरीत दया, प्रेम तथा सहानुभूति के विचार फैलाने से जनता मे सुख-शान्ति फैल जाएगी। लोग भाई-भाई की भाँति मिल कर प्रेम से रहने लगेंगे। जर्मनी के हिटलर और इटली के मुसोलिनी का उदाहरण हमारे सामने है। रूस के कम्यूनिस्ट भी क्या कर रहे है? वे अपनी सेना भेज कर किसी देश मे गड़बड़ नहीं मचाते। वे अपने प्रचारक भेजते हैं। वे प्रचारक निरन्तर कम्यूनिस्ट विचारों का प्रचार करते हैं। बस, उस देश के लोग अपने आप कम्यूनिस्टों के चुङ्गल मे आ जाते हैं। साधारण मनुष्य मानसिक रूप मे उतना

जागरूक तथा प्रबुद्ध नहीं होता जितना ये विशेष रूप से सधे हुए प्रचारक होते है। ये प्रचारक अपनी सच्ची झूठी बातें सुना कर जनसाधारण को साथ मिला लेते है। ये दृढ़तापूर्वक अपने मत का प्रचार करते है। ये प्रचार कार्य से न उकताते है और न हताश ही होते है। इस लिए इन को सफलता हो जाती है।

राष्ट्र और व्यक्ति के बुरे विचारो को दबाने या दूर करने का एकमात्र उपाय उन के स्थान मे अच्छे विचारो का प्रचार करना है। किसी को बुरा-भला कहने या कोसने से कुछ अधिक लाभ नहीं होता।

बुद्ध ने अपने भिक्षुओ को उपदेश करते हुए कहा था—"हे भिक्षुओ, सर्वसाधारण के हित के लिए, लोगों को सुख पहुँचाने के लिए, उन पर दया करने के लिए तथा देवताओ और मनुष्यो का उपकार करने के लिए घूमो। भिक्षुओ! आरम्भ, मध्य और अन्त सभी अवस्थाओं मे कल्याणकारक धर्म का, उस के शब्दो तथा भावो सहित, उपदेश करके सर्वांग मे परिपूर्ण ब्रह्मचर्य का प्रकाश करो।" (महावग्ग विनय पिटक)

इसी प्रकार ईसा कहता है कि धर्मोपदेश सब को करो। सारे संसार मे सब के पास जाओ। दूसरो से प्रेम करने मे साहसी बनो। वह यह भी कहता है कि गहरी मझधार मे नाव डाल दो, इस विश्वास के साथ कि मै तुम्हारे अंग-संग हूं।

सब मनुष्यों पर, उन पर भी जो तुम से घृणा करते हैं,

सुनिश्चित व्यक्तिगत प्रेम करना नितान्त आवश्यक है। शिकायत करने से तथा छिद्रान्वेषण करते रहने मे बहुत कम काम होता है, वरन् बिलकुल ही नहीं होता।

सच्चा लोक-सेवक अपना समय सुधार करने मे लगाता है न कि नापसन्द करने मे। कारण यह कि वह जानता है कि अँधेरे को कोसने के स्थान मे एक बत्ती जला देना कहीं अच्छा है।

यदि एक लाख भी मनुष्य सच्चे लोक-सेवक बन कर जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे जाएँ, तो जहाँ घृणा है वहाँ प्रेम हो जायगा, जहाँ भूल और अंधकार है वहाँ सच्चे सिद्धान्तों का प्रकाश हो जायगा, जहाँ अनाचार तथा अनीति है वहाँ सदाचार और सुनीति हो जाएगी।

लोक-सेवक पृथक्-पृथक् बहुत सी संस्थाएँ खड़ी करने के स्थान में व्यक्तिगत दायित्व, व्यक्तिगत सूत्रपात और नेतृत्व पर बल देता है। वह सब के कल्याण के लिए काम करता है। वह इस बात की चिन्ता नहीं करता कि वह व्यक्तिगत रूप से कार्य कर रहा है या किसी एक संस्था या एक व्यक्ति के अधीन। कारण यह कि लोक-सेवक अनुभव करता है कि वह केवल व्यक्ति ही नहीं, वरन् इस के साथ ही एक सामाजिक प्राणी भी है। वह एक ओर अलग खड़ा नहीं हो पाता। वह शेष सब मनुष्यों के साथ अपनी अल्पता का अनुभव करता है।

ऐसे लोक-सेवक जगत् के कल्याण कार्य मे लगे होने की दृष्टि

न भाई-बहन है। वे व्यक्तिगत दायित्व का अनुभव
ज के संगठित मंगल के लिए काम करते हैं। इसके
कितना भी त्याग करना पड़े, वे उसके लिए तैयार रहते
। धन-सम्पदा की दृष्टि से सफल बनने का प्रयास
जीवन की प्रत्येक ऐसी चीज़ की जिसका सम्बन्ध
के मंगल के साथ है गहराई में उतरने का प्रयास
सी स्थिति में हो सकते हैं जो अपने आप में तुच्छ
होती है परन्तु जो बड़ी महत्त्वपूर्ण हो जाती है.
प्रचारक के रूप में भगवान् की सचाई तथा प्रेरणा
करते है।

पुस्तक का उद्देश्य

विशेषज्ञों के लिए नहीं लिखी गई. न ही यह कोई
ा है, वरन् यह औसत मनुष्य के लिए क, ख, ग,
क गुटका है। यह उन लोगों के लिए लिखी गई
, पूंजी और श्रम के झगड़े. छूत छात. साम्प्रदा-
ो. भाई-भतीजों की जेबें भरना आदि देशव्यापी
कर अशान्त हो रहे है और इन बुराइयों को दूर
ा मानव समाज की सच्ची सेवा करना चाहते हैं।
ो बताएगी कि वे तुच्छ या असमर्थ प्राणी नहीं.
शक्ति निहित है जिस से वे बहुत बड़ा महत्त्वपूर्ण
है। उनको हताश तथा निरुत्साह होने की

सुनिश्चित व्यक्तिगत प्रेम करना नितान्त आवश्यक है। शिकायत करने से तथा छिद्रान्वेषण करते रहने से बहुत कम काम होता है, वरन् बिलकुल ही नहीं होता।

सच्चा लोक-सेवक अपना समय सुधार करने मे लगाता है न कि नापसन्द करने मे। कारण यह कि वह जानता है कि अँधेरे को कोसने के स्थान में एक बत्ती जला देना कहीं अच्छा है।

यदि एक लाख भी मनुष्य सच्चे लोक-सेवक बन कर जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे जाएँ, तो जहाँ घृणा है वहाँ प्रेम हो जायगा, जहाँ भूल और अंधकार है वहाँ सच्चे सिद्धान्तों का प्रकाश हो जायगा, जहाँ अनाचार तथा अनीति है वहाँ सदाचार और सुनीति हो जाएगी।

लोक-सेवक पृथक्-पृथक् बहुत सी संस्थाएँ खड़ी करने के स्थान मे व्यक्तिगत दायित्व, व्यक्तिगत सूत्रपात और नेतृत्व पर बल देता है। वह सब के कल्याण के लिए काम करता है। वह इस बात की चिन्ता नहीं करता कि वह व्यक्तिगत रूप से कार्य कर रहा है या किसी एक संस्था या एक व्यक्ति के अधीन। कारण यह कि लोक-सेवक अनुभव करता है कि वह केवल व्यक्ति ही नहीं, वरन् इस के साथ ही एक सामाजिक प्राणी भी है। वह एक ओर अलग खड़ा नहीं हो पाता। वह शेष सब मनुष्यों के साथ अपनी अल्पता का अनुभव करता है।

ऐसे लोक-सेवक जगत् के कल्याण कार्य मे लगे होने की दृष्टि

से सब आपस में भाई-बहन है। वे व्यक्तिगत दायित्व का अनुभव करते हैं। वे सब के संगठित मंगल के लिए काम करते हैं। इसके लिए उन्हें चाहे कितना भी त्याग करना पड़े, वे उसके लिए तैयार रहते हैं। वे जीवन में धन-सम्पन्न की दृष्टि से सफल बनने का प्रयास नहीं करते। वे जीवन की प्रत्येक ऐसी चीज की जिसका सम्बन्ध मनुष्य-समाज के मंगल के साथ है गहराई में उतरने का प्रयास करते हैं। वे ऐसी स्थिति में हो सकते हैं जो अपने आप में तुच्छ तथा महत्त्व-हीन होती है परन्तु जो बड़ी महत्त्वपूर्ण हो जाती है, क्योंकि वहाँ वे प्रचारक के रूप में भगवान् की सचाई तथा प्रेरणा का साधन हो सकते हैं।

पुस्तक का उद्देश्य

यह पुस्तक विशेषज्ञों के लिए नहीं लिखी गई, न ही यह कोई साहित्यिक रचना है, वरन् यह औसत मनुष्य के लिए क, ख, ग, अर्थात् प्रारम्भिक गुटका है। यह उन लोगों के लिए लिखी गई है जो जात-पांत, पूंजी और श्रम के झगड़े, छूत-छात, साम्प्रदायिकता, घूसखोरी, भाई-भतीजों की जेबें भरना आदि देशव्यापी बुराइयों को देख कर अशान्त हो रहे हैं और इन बुराइयों को दूर करके राष्ट्र की तथा मानव समाज की सच्ची सेवा करना चाहते हैं। यह पुस्तक उनको बताएगी कि वे तुच्छ या असमर्थ प्राणी नहीं, वरन् उनमें ऐसी शक्ति निहित है जिस से वे बहुत बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य कर सकते हैं। उनको हताश तथा निरुत्साह होने की

आवश्यकता नहीं। यह पुस्तक समाज-सेवक को बताएगी कि जनता की कुप्रवृत्ति तथा भ्रष्टता को कैसे सुधारा जा सकता है।

यह पुस्तक ऐसी नहीं कि इसे एक बार बैठ कर उपन्यास या कथा-कहानी की तरह पढ़ डाला जाए। यह एक रेफ्रेन्स-बुक (संकेत-पुस्तक) है। इसके विभिन्न प्रकरण विविध लक्ष्य तथा विभिन्न उद्देश्य रखने वाले लोगों के लिए ही लिखे गए है। ये किसी विशेषज्ञ के लिए नहीं लिखे गये। बहुत से काम करने वालो की आवश्यकता है। फसल तो बहुत है पर काटने वाले बहुत थोड़े है।

किसी पारिवारिक सम्मेलन, किसी मित्र-मण्डली, किसी समाज या सभा मे इस पुस्तक का प्रवचन करना एक प्रकार से समाज-सेवको के लिए विद्यालय खोलना है। उदाहरणार्थ, सिलाई का काम या खाना पकाना या धाय का काम सीखने के लिए स्त्रियॉ किसी जगह मगल या शनिवार इकट्ठी होती है। वहॉ से सीख कर जहॉ जहॉ भी वे जाती हैं और जिस जिस भी क्षेत्र मे काम करने लगती हैं, वहॉ वहाँ ये अपने सीखे हुए सिद्धान्त का प्रचार करती हैं। उनकी वह मंगल या शनिवार कक्षा कोई निश्चित विद्यालय नहीं होती, फिर भी वहॉ सीखे हुए तत्त्व उन स्त्रियों के द्वारा दूर दूर फैल जाते है। इसी प्रकार इस पुस्तक के पाठ और वचन सुनने से कोई भी मनुष्य इस पुस्तक का या लोक-सेवा के पुनीत कार्य का सदेश-वाहक बन सकता है।

प्रत्येक व्यक्ति अपने लिए सोच कर आप पसद कर सकता

है कि वह सर्वोत्तम रीति से लोक-सेवा का काम कैसे कर सकता है और कि वह व्यक्तिगत रूप से अकेला ही काम करेगा या किसी संगठन के अधीन हो कर।

इस पुस्तक में लिखी प्रत्येक बात पर अक्षरशः चलने को हम नहीं कहते। इस से तो लोक-सेवक को उस उपायज्ञता को तरोताजा तथा प्रोत्साहित करने का काम लेना चाहिए जो भगवान् ने उस में धर रखी है। यह पुस्तक साहस, गति, वेग और उत्साह प्रदान करती है। यह उदारता पर आधारित है। यह मनुष्य मात्र का कल्याण चाहती है उनका भी जिन के जीवन की पृष्ठभूमि ने उन को सत्य शांति और पुण्य का विरोधी बना दिया है।

यह प्रेम-पूर्ण नियन्त्रण में सब को लेने और किसी को भी न छोड़ने के लिए आप को बाध्य करती है।

प्रत्येक व्यक्ति भगवान् की अमृत सन्तान है। वह रचना द्वारा भगवान् के निमित्त कम-से-कम एक काम कर सकता है। वह उसके नाम का, उसके गुणों का, उस की दया और महिमा का प्रचार कर के संसार के सुख में वृद्धि कर सकता है।

ऐसे लोक-सेवा के काम कोई सभा, कोई समाज या कोई संगठन बना कर ही नहीं किए जा सकते। उल्टा ऐसी सोसाइटियाँ बनाने से लोग उन के मेम्बर बन कर, उनका चन्दा दे कर और उन की बैठकों में सम्मिलित हो कर ही सन्तुष्ट हो जाते हैं। वे स्वयं कोई कार्य नहीं करते। वे सदा एक दूसरे का मुख देखते

रहते हैं। यह पुस्तक लाखों लोगों को उत्साहित करके व्यक्तिगत रूप से काम करने को प्रेरित करती है।

भगवान् करे कि यह पुस्तक मेरे देशबंधुओं को निःस्वार्थ भाव से लोक-सेवा के पुनीत कार्य के लिए प्रेरित कर सके, जिससे मानव-समाज में सुख शान्ति की वृद्धि हो।

सच्चे लोक-सेवक का सदा दृढ़ विश्वास रहता है कि उस के द्वारा भगवान् अपना कार्य करा रहा है और कि वह अकेला नहीं वरन् प्रभु सदा उसके अंग-संग रहता है। इस प्रकार के लोक-सेवक तथा प्रचारक ही देश में शान्ति तथा स्वतंत्रता को बनाए रख सकते हैं।

पुरानी बसी, होशियारपुर सन्तराम बी. ए.

विषय-प्रवेश

एक समय की बात है, भगवान् बुद्ध श्रावस्ती नगरी मे ठहरे हुए थे। एक दिन भगवान् के प्रिय शिष्य आनन्द श्रावस्ती मे भिक्षा मांगने के लिए गये। उनको प्यास लगी। एक कुएँ पर एक भङ्गी की लड़की पानी भर रही थी। लड़की का नाम प्रकृति था। आनन्द ने प्रकृति से पानी माँगा। प्रकृति बोली—"हे भिक्षु, मैं भंगी की लड़की हूँ। मैं आप को कैसे पानी दे सकती हूँ?"

आनन्द ने कहा—"बहन, मै जाति या कुल नहीं पूछता। मुझे पानी दो।"

प्रकृति ने आनन्द को पानी दिया। पानी पी कर आनन्द चल दिए। प्रकृति को आनन्द के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई। कोई उच्च वर्ण का हिन्दु एक भंगी-कन्या को बहन कह कर उसके हाथ का पानी ग्रहण कर सकता है, यह देख वह आश्चर्य-चकित रह गई। वह आनन्द को ढूढ़ँती ढूढ़ँती वहाँ जा पहुँची जहाँ भगवान् बुद्धदेव ठहरे हुए थे। भगवान् के उपदेश से प्रकृति का हृदय निर्मल हो गया। वह उनकी शिष्या बन गई। महापुरुप बुद्ध ने उसे दीक्षा दे कर बुद्ध-धर्म की प्रचारिका बना दिया।

इधर जब राजा प्रसेनजित तथा ब्राह्मणों ने सुना कि भगवान् ने एक चाण्डाल-कन्या को धर्म-प्रचारिका बनाया है तो वे बहुत क्रुद्ध हुए। वे भगवान् के पास शिकायत करने पहुँचे। भगवान् ने जाति-भेद-सम्बन्धी उनके सब भ्रम दूर कर दिए। भगवान् ने उनको समझाते हुए कहा—

"हे भिक्षुओ, जितनी बड़ी बड़ी नदियाँ हैं, यथा गंगा, यमुना अचर्वती, सरयु और मही (गण्डक), वे सब महासागर को प्राप्त हो कर अपने पहले नाम तथा गोत्र को छोड़ देती है और महासागर के नाम से प्रसिद्ध, होती हैं, वैसे ही भिक्षुओ, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र चारों वर्ण तथागत (बुद्ध) के बताए धर्म-विनय में गृहत्याग-पूर्वक प्रव्रजित हो पहले के नाम और गोत्र को छोड़ देते है। वे शाक्य-पुत्र श्रमण के ही नाम से प्रसिद्ध होते हैं।" (विनय-पिटक, चुल्ल वग्ग-४) थेर गाथा में एक थेर (अछूत) ने अपने मुँह से अपना जीवन-वृत्तान्त इस प्रकार कहा है—

'मेरा जन्म नीच-कुल में हुआ था। मैं अत्यन्त दरिद्र था। मेरा व्यवसाय भी बुरा था। लोग मेरा अपमान करते थे। मैं सिर झुका कर सबका संमान करता था। इसके बाद मैंने महानगरी मगध में भिक्षुओं के साथ महापुरुष बुद्धदेव का दर्शन किया। उनका दर्शन पाते ही मेरा चित्त भक्ति से झुक गया। मैंने सिर का बोझ फेंक कर उनके चरण-कमलों में आत्म-समर्पण किया। जब उन लोक-मान्य ने मुझ पर दया की तो मैंने उनका

अनुचर शिष्य होना चाहा। करुणामय प्रभु ने तुरन्त मुझे शरण दे कर कहा—"आओ, साधु, मेरे साथ चलो।"

बुद्ध का जीवन-वृत्तान्त पढ़ने से ज्ञात होता है कि उन्हों ने बेधड़क हो कर भ्रष्टाचारिणी आम्रपाली वेश्या के घर भोजन किया था। इस पर लिच्छिवि राजाओं ने असन्तोष प्रकट किया था। परन्तु बुद्धदेव ने कुछ परवाह नहीं की। महापुरुष की करुणा के विशद किरणजाल से पतिता स्त्री का चित्त पल-भर में शतदल कमल की भाँति खिल गया था और उस के मनोहर सुगन्ध ने बौद्ध-समाज को विकसित कर दिया था।

सभी मनुष्यों के माननीय महागुरु बुद्धदेव अनर्थकारी जाति-भेद, धन-गौरव एवं उच्चपद के महत्त्व को तुच्छ समझते थे। इसी से छोटे-बड़े, धनी-दरिद्र, आर्य-अनार्य सभी के मन में उन का उपदेश बेरोक प्रवेश करता था। उनका उपदेश सर्वप्रिय तथा सर्वमान्य था। इस कारण सब से पहले भारत की पतित जाति ने उसे ग्रहण किया था।

प्रभु ईसा ने पापियों और पतितों को गले लगाया था। उन्होंने आने वाले कष्टों तथा विपत्तियों की परवाह नहीं की थी।

'हम इस संसार को पहले की अपेक्षा बहुत अच्छा बना सकते हैं," इस अनुभूति में एक रोमांचकारी चुनौती है। हमारी त्रुटियाँ कितनी ही बड़ी क्यों न हों, तो भी हम संसार के कष्टों को कम करने के लिए बहुत कुछ कर सकते हैं। "भगवान् तेरी

इच्छा पूर्ण हो," इस कथन का आश्रय ले कर हम इस थके-मांदे तथा अशांत संसार को स्वर्ग बना सकते है।

इस समय लग कर काम करने की बड़ी आवश्यकता है। इस दुनिया को सब प्राणियों के वास-योग्य बनाने में हम ने जो श्रम किया है, वह श्रम तथा काम चाहे कितना ही तुच्छ या छोटा क्यों न हो, उस से हमें सन्तोष तथा सान्त्वना मिल सकती है।

लोक-विजय

लोक-राज का स्वरूप

गंगा जब गंगोत्री से निकलती है तब उस का जल बहुत निर्मल रहता है। ज्यों ज्यों वह आगे बढ़ती है इस का पानी गंदला होता जाता है। इसी प्रकार बहुत प्राचीनकाल में मनुष्य-समाज अपेक्षाकृत बहुत निर्मल था। उस में लड़ाई-झगड़े, मार-काट, चोरी-डकैती, झूठ, अन्याय इत्यादि दोष बहुत कम थे। मनुष्यों की संख्या कम थी और खाने-पीने की वस्तुएँ प्रचुर। धरती अधिक थी और बसने वाले कम। इसलिए लोग सुख-शांति से रहते थे। उन को आपस में लड़ने झगड़ने की आवश्यकता न होती थी।

उस समय कोई राजा न था, कोई पुलिस न थी, कोई न्यायालय न था, कोई जेल न था और कोई सेना न थी। लोगों में लोभ भी कम था। उन की प्रकृति शांत एवं सात्त्विक थी। उस युग में सभी मनुष्य काम करते थे और सभी को खाने को मिलता था।

धीरे-धीरे जब जन-संख्या बढ़ने लगी तो इस के साथ ही खाने-पीने तथा ओढ़ने की वस्तुएँ प्राप्त करने में भी कठिनाई होने लगी। मनुष्यों की प्रकृति में भेद-भाव बढ़ा। वे धन, धरती और

स्त्रियों के लिए आपस में लड़ने लगे। सबल निर्बल को सताने लगा। तब समूह बनाकर रहने की आवश्यकता का अनुभव हुआ।

कुछ लोग मिलकर एक समूह बना लेते थे और वह समूह अपना एक नेता या मुखिया चुन लेता था। इस मुखिया या कुलपति की आज्ञा का पालन करना समूह के प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य होता था। यदि किसी दूसरे समूह का कोई व्यक्ति इस समूह के किसी मनुष्य पर आक्रमण या अत्याचार करता था तो यह सारा का सारा समूह अपने इस सदस्य की रक्षा करता था।

इस प्रकार समूहों के आपस में युद्ध होने लगे। इस से देश में अशांति रहने लगी। इस अशांति को रोकने के लिए अनेक समूह मिल कर अपना एक शासक चुनने लगे। यह शासक राजा कहलाता था। इस का काम बाहरी शत्रुओं से स्वदेश की रक्षा करना और अपनी प्रजा के आपसी झगड़ों को मिटाना होता था।

प्रजा पर राजा का आतंक बैठाने और उस के प्रति पूज्य-बुद्धि उत्पन्न करने के लिए नाना प्रकार के उपाख्यान गढ़े जाते थे। प्रजा में वाणी और लेखनी द्वारा प्रचार किया जाता था कि राजा ईश्वर का रूप होता है। उस का वध या द्रोह करना महापाप है। राज्य-प्रबंध चलाने के लिए राजा मन्त्री आदि राजपुरुष और सेना रखता था। इन के खर्च के लिए वह प्रजा से कर लेता था।

इस शासन-प्रणाली में कई दोष थे। एक बड़ा दोष तो यह था कि प्रजा के मन से योग्यतम एवं लोक प्रिय व्यक्ति को राजा

चुनने की प्रथा बहुत दिनों तक प्रचलित न रह सकी। राजपद शीघ्र ही वंश-परम्परागत हो गया। जो मनुष्य एक बार राजा बन जाता था या बना दिया जाता था, फिर उस के अत्याचारी, अन्यायी एवं निरंकुश प्रमाणित होने पर भी प्रजा के लिए उसे राजपद से च्युत करना कठिन हो जाता था। उस के सिर पर किसी प्रकार का अंकुश न रहने से वह प्रायः स्वेच्छाचारी और प्रजापीड़क हो जाता था। दूसरे, उस के मरने पर उस के पुत्र को ही राजा बनाया जाता था, चाहे वह कितना ही अयोग्य क्यों न हो।

इस पद्धति मे तीसरा दोष यह था कि जिस व्यक्ति को राजा बनाया जाता था यद्यपि वह दूसरे लोगों जैसा ही एक मर्त्य मानव होता था तो भी वह अपने को अपने दूसरे मानव बंधुओ से श्रेष्ठ तथा ईश्वर का प्रतिनिधि समझ कर अहंकार से अकड़ने लगता था। दूसरे लोग अकारण ही अपने को निकृष्ट एवं नीच और अपने ही बनाए हुए इस राजा के दास समझने लगते थे। राजा कोई भी पाप करे उसे निष्पाप तथा निष्कलङ्क समझ कर दण्डित नहीं किया जाता था। सामान्य मनुष्य राजा के सामने सिर उठा और छाती तान कर नहीं चल सकता था। अपने आप को हीन समझने के भाव से वह सदा दबा रहता था। वह जीवन का पूर्ण आनन्द नहीं ले सकता था। मानवी समता, बंधुता और स्वतंत्रता पूरी तरह से कुचल दी जाती थी। राजा और उसके वंशज कुछ भी काम न करके जनता की गाढ़ी कमाई पर गुलछर्रे उड़ाते थे। वे चार-चार सौ स्त्रियाँ रखते थे।

दूसरी ओर सामान्य मनुष्य रक्त-पसीना एक करने पर भी भरपेट अन्न और जीवन की दूसरी सुख-सुविधाएँ प्राप्त न कर सकता था। इस लिए इस शासन-पद्धति को बदल कर प्रजातंत्रात्मक शासन-प्रणाली चलानी पड़ी।

लोक-राज का आधार समता, बंधुता और स्वतंत्रता होती है। इसमे किसी व्यक्ति को उसके जन्म के कारण ऊँचा-नीचा या श्रेष्ठ-निकृष्ट नहीं समझा जाता। इसमे प्रत्येक व्यक्ति के प्राणों का मूल्य एक समान समझा जाता है। लोक-राज की प्रजा मे बंधु-भाव का होना परम आवश्यक होता है। इसके अतिरिक्त लोकराज मे एक व्यक्ति स्वतंत्र और दूसरा उसका दास नही होता। वहाँ एक मनुष्य जन्म से ही पवित्र एवं श्रेष्ठ और दूसरा जन्म से ही अस्पृश्य एवं नीच नहीं माना जाता। वहाँ मनुष्यता के नाते सब लोग बराबर माने जाते है। वे एक दूसरे को अपना बराबर का भाई समझते है। दासता और लोक-राज परस्पर-विरोधी बातें है। लोक-राज मे कोई किसी का दास नही होता है।

"जनता का राज, जनता द्वारा राज और जनता के लिए राज," यही लोकराज की परिभाषा है। इस मे जनता शासन करती है। शासन जनता के हित के लिए होता है और जनता के द्वारा होता है।

लोकराज मे मनुष्य अपना शासक आप होता है। वह सभी ऐसे काम करने मे स्वतंत्र होता है जो उसके दूसरे राष्ट्र बंधुओ की स्वतंत्रता मे बाधा नहीं डालते। इस मे 'आप जियो और दूसरों को

जीने दो' के सुनहले नियम पर आचरण करना आवश्यक होता है।

लोक-राज में और किसी एक राजा के राज्य में एक बड़ा अन्तर है। किसी एक राजा की प्रजा परावलम्बी और प्रत्येक बात में दूसरों का मुँह ताकने वाली बन जाती है। वह अपनी रक्षा तथा सुख-सुविधा का सारा दायित्व राजा पर छोड़ कर आप पराधीन हो जाती है। नगर में गन्दगी फैल रही हो, डाकू और चोर जनता को तंग कर रहे हों, वन के हिंसक जन्तु लोगों की हानि कर रहे हों, कोई सरकारी कर्मचारी भ्रष्टाचार फैला रहा हो, गाँव में स्कूल या अस्पताल न हो, समय पर पानी न बरसे या अति वृष्टि से फसल की हानि हो जाय या कोई महामारी फैल जाय तो राजा की प्रजा अपने राजा को कोसने लगती है। वह बुराइयों को दूर करने के लिए आप कुछ भी हाथ-पैर नहीं हिलाती।

इस के विपरीत, लोक-राज का प्रत्येक नागरिक अपने देश का अपयश अपना अपयश और अपने राष्ट्र का सुयश अपना सुयश समझता है। वह अपना राजा आप होता है। इस लिए वह अपने कष्टों को दूर करने का प्रयत्न आप करता है। वह स्वावलम्बी बनना पसंद करता है। जो काम वह आप अकेला नहीं कर सकता उसी के लिए वह राज्य से या दूसरों से सहायता लेता है।

लोक-राज के नागरिक नगर को आप साफ रखते हैं। वे अपने यहाँ स्कूल या अस्पताल खोलने के लिए राज्य को विवश करते और इस काम में उसे पूरी-पूरी सहायता देते हैं।

लोक-राज में प्रत्येक गाँव और नगर का राज-प्रबन्ध वहाँ के लोगों के अपने हाथ में रहता है। वे अपना नम्बरदार और चौकीदार आप चुनते है।

लोक-राज में राजकर्मचारी अपने को जनता के स्वामी नहीं, सेवक समझते है। लोक-राज मे लोग पुलिस का सम्मान करते है। वे उसे अपना मित्र एवं सहायक समझते है। वे उस से डरते या घृणा नहीं करते। चोरी-चकारी और समाज-विरोधी कुकर्म करने वालों को पकड़वाने में वे पूरी-पूरी सहायता देते हैं।

लोक-राज का नागरिक राष्ट्र की भलाई मे ही अपनी भलाई और राष्ट्र के अहित में अपना अहित समझता है। इस लिए वह चोर-बाजारी, खाद्य पदार्थों मे मिलावट और घूसखोरी आदि को बुरा समझता है। वह राष्ट्र की हानि कर के आप लाभ उठाना भारी पाप समझता है।

भारत मे बसने वाले सभी लोग, क्या हिंदु, क्या मुसलमान, क्या सिक्ख, क्या ईसाई और क्या पारसी सब आपस में भाई-भाई है।

किसी भाई को उस के जन्म-जाति या धर्म के कारण नीच या अपवित्र समझ कर उस से खान-पान और व्याह-शादी करने से इन्कार करना भारतीय राष्ट्र की जड़ पर कुल्हाड़ा चलाना है, उस की एकता को नष्ट करना है। इस लिए इस पाप से सदा बचना चाहिए।

सहस्रों वर्ष की दासता के कारण भारतीय जनता में उच्च चरित्र का अभाव-सा हो गया है। जनता के चरित्र को ऊँचा उठा कर उसे लोक-राज के योग्य बनाने के लिए बहुत से तपस्वी और त्यागी लोक-सेवकों की आवश्यकता है। ये लोक-सेवक जनता में आटे में खमीर की भाँति मिल कर उसे अपना राजा आप बनने में समर्थ कर सकेंगे। यह काम केवल विदेशियों के यहाँ से चले जाने से ही न हो जायगा।

हमें क्या !

एक समय की बात है, मैं एक छोटीसी मित्र-मण्डली में खड़ा जात-पॉत की हानियॉ बता रहा था। मैं कह रहा था कि राष्ट्रीय एकता के लिए जात-पाँत का मिटाना परम आवश्यक है। मेरी बात सुन कर मण्डली मे से एक सज्जन बोल उठे—"अजी, जिन लोगों को शूद्र या अछूत कहा जाता है उनको तो जात-पॉत मिटा कर ऊँचा बनने की इच्छा हो सकती है, हम उच्च वर्ण के ब्राह्मणों को क्या आवश्यकता है कि जात-पाँत तोड़ कर अपना रक्त बिगाड़ें और नीच बनें ? हमे इससे कोई कष्ट नहीं, जिनको कष्ट या हानि है वे जात-पॉत मिटाने का यत्न करते फिरें। उनको कष्ट है तो हमे क्या ?"

यह सज्जन उन लाखों-करोड़ो अदूरदर्शी तथा स्वनिष्ट नर-नारियों का एक नमूना है जो इस भारत महादेश मे भरे पड़े है, जो इतने स्वार्थान्ध हैं कि उनकी दृष्टि कभी उनके अपने आप से बाहर निकल कर दूसरों तक नहीं जाती। ये लोग सभी दुष्ट या दुर्भावना वाले ही नहीं। इनमे अनेक लोग, दूसरी कई दृष्टियों से, बडे धर्मात्मा, पूजा-पाठ करने वाले तथा सदाचारी हैं। दोष केवल उनके दृष्टिकोण में है। वे केवल अपने आप मे या अधिक से

अधिक अपने भगवान् से प्रेम करते है। वे किसी दूसरे को, अपने पड़ोसी को, अपने देशवासी को अपने प्रेम का अधिकारी नहीं समझते। वे अपने आप मे मस्त रह कर सन्तुष्ट है। इसी को वे धार्मिक-जीवन की पराकाष्ठा तथा जीवन का साफल्य समझते है। इस 'हमे क्या ?'' की वृत्ति ने हमारे समाज की जितनी हानि की है उतनी शायद ही किसी दूसरी चीज ने की हो।

इसके विपरीत जिन लोगो ने ससार का काया पलट किया है, जो जगत के मुख मण्डल को वदल डालते है, वे ऐसे लोग होते है जो अपने आप से वाहर आकर, अपने संकीर्ण क्षेत्र से वाहर निकल कर सारे संसार पर दृष्टि डालते है, जो शताब्दियों तक निरन्तर कार्य करते रहते है। वे "हमे क्या" नहीं कहते। उनको दूसरों का दु:ख अपना दुःख और दूसरो का सुख अपना सुख जान पड़ता है। अपने या अपने भगवान् तक ही सीमित रहने वाले लोग सदा हानि उठाया करते है।

परन्तु सौभाग्य तथा हर्ष की वात है कि हमारे देश मे सभी लोग उपर्युक्त सज्जन जैसे अहंनिष्ठ नहीं। यहाँ ऐसे भी सहस्रो लाखों नर नारी हैं, जो विशाल दृष्टि-कोण रखते हैं, जो, कथित उच्च वर्ण के ब्राह्मण होते हुए भी शूद्रो तथा अछूतो तक को अपना ही रूप समझते है। यह वड़ा आशा-जनक लक्षण है। उनको केवल प्रोत्साहन देने का प्रयोजन है—उनके कार्य से देश का भाग्य उदय हो जायगा।

लोगों को अभी यह बात भूली न होगी कि हाल मे अमेरिका के लोगों ने इटली को चिट्ठियाँ लिखने की एक भारी मुहिम जारी की थी। उन चिट्ठियों मे उन्हों ने इटलीवालों को बताया था कि अमेरिका मे लोक-तंत्र से क्या क्या लाभ हुए हैं? यदि इटली वाले भी उन्हीं अधिकारों को प्राप्त करने के लिए बल लगाएँ तो उनको भी क्या लाभ होंगे? अमेरिका में बसने वाले इटालियनों ने इटली मे अपने बंधु-बांधवों को पत्र लिखें।

यह मुहिम अपने आप जारी नहीं हो गई थी। इसे किसी एक ही व्यक्ति ने चलाया था। और वह मनुष्य एक नाई था जो साउथम्पटन मे रहता था। वह सन् १९१३ में इटली से आ कर अमेरिका मे बस गया था। वह जीवन भर के लिए अमेरिकन लोक-राज का सजीव अंग बन गया था। उसने अमेरिका में विवाह किया, बच्चे उत्पन्न किये और जीवन को अच्छा पाया। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया उसे अनेक बातों की चिन्ता सताने लगी। उनमें से एक बात तो यह थी कि अनेक स्थानों से कटु आलोचना की बौछार आने लगी थी कि अमेरिकन शासन-प्रणाली में क्या क्या बुराइयाँ आ गई हैं, और कि शेष व्यापक ससार मे भी क्या क्या दोष प्रगट हो गए हैं।

दूसरी बात जो उसे पहली से भी अधिक कष्ट देती थी वह यह थी कि जो लोग शिकायत करते थे वे अवस्थाओं को सुधारने के लिए कभी कुछ करते हुए नहीं देखे जाते थे। दूसरे महायुद्ध के पश्चात् जब अमेरिकन लोगों मे यह समाचार पहुँचा कि लाखों

इटालियन कम्यूनिज्म की ओर झुक रहे हैं तो उसके धैर्य का प्याला भर गया। उसने इस संबंध मे व्यक्तिगत रूप से कुछ करने का संकल्प किया। पहले उसने अपने संबंधियों को दक्षिण इटली में पत्र लिखे। फिर उसने अपनी पत्नी के सम्बन्धियो को लिखा कि अमेरिका मे लोकतंत्र से जनता को कैसी स्वतंत्रता प्राप्त है। तब उस ने अपने पुत्र तथा पुत्री से पत्र लिखने को कहा। इसके बाद उसने समाचार-पत्रों तथा राष्ट्रपति को लिखा कि इस काम में वे उसका समर्थन करे।

इस विचार की प्रतिक्रिया सदा ही अच्छी होती थी। परन्तु इसके साथ सदा ही यह भी कहा जाता था कि खेद है कि यह काम इतना बड़ा है कि इसे सँभालना कठिन है। जिन जिन संस्थाओं तथा सभाओं के पास वह सहायतार्थ गया वे सब मुस्करा दीं और उसके लिए केवल मंगल-कामना करके ही रह गईं। इस से बढ़ कर उन्हों ने उसकी कोई सहायता नहीं की। पर इस प्रकार की निराशा से वह हतोत्साह नहीं हुआ। उसने दिल नहीं छोड़ दिया। धीरे धीरे उसने उन मित्रों से सम्पर्क बढ़ाया जिन के सम्बंधी तथा बंधु-बान्धव पीछे इटली में रहते थे, ताकि वे उसे इस काम मे सहायता दें। अपने सारे विचार को मिट्टी मे मिलते देख भी वह हताश नहीं हुआ।

धीरे धीरे उसका यह विचार इटली के एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त मे आग की भाँति फैलने लगा। व्यापारियों, घरवालियों, नौकर-नौकरानियों, रण-कुशल सैनिकों, नागरिक समितियों और

धर्म-नेताओं ने इस युद्ध को अपनाया। शीघ्र ही इटली से हार्दिक धन्यवाद से भरी चिट्ठियों की धारा अमेरिका की ओर बहने लगी। इन चिट्ठियों में वचन दिया गया था कि हम इटली में जीवन के लोकतंत्री भाव का प्रचार करेंगे। परिणाम यह हुआ कि अमेरिका में लाखों लोग वे काम करने लगे जो सम्भवतः दूसरी कोई बड़ी संस्था या सरकारी कर्मचारी ही कर सकते थे। वह काम था इटालियन लोगों के हृदयों में पहुंचना।

स्मरण रहे कि यह सारा काम अकेले एक ही पुरुष ने आरम्भ किया था। और एक ही पुरुष इस सारे के लिए व्यक्तिगत रूप से जिम्मेदार था, क्योंकि वह अपने छोटे से संसार में से, जिसमें छोटे विचार थे, बाहर निकल कर एक बड़े जगत में आ गया था। उसमें बड़े बड़े काम करने की सुप्त क्षमताएँ थी।

इसी प्रकार, कोई पचास-पचपन वर्ष की बात है, जालन्धर के एक आर्य समाजी वकील के मस्तिष्क में विचार आया कि वर्तमान शिक्षा-प्रणाली देश के नव युवकों को भारत के प्राचीन आदर्श, सभ्यता तथा धर्म से परे ले जा कर उनको "स्वार्थी, सरकारी नौकरियों के लोभी और काले अंग्रेज बना रही है। उसने इस शिक्षा-प्रणाली को बदलने का निश्चय किया। उस समय सभी बालक भविष्य में सरकारी नौकर बनने की आशा से ही स्कूलों में भरती हुआ करते थे। अच्छा पद पाने के लिए सरकारी विश्व-विद्यालय का प्रमाण-पत्र प्राप्त करना अनिवार्य था।

वकील महाशय ने अपना विचार अपने दूसरे आर्य समाजी

मित्रो पर प्रकट किया । उन्होने उनके विचार की प्रशंसा की, परन्तु उनकी सफलता मे संदेह प्रकट किया । वे कहते थे कि एक तो यह काम किसी एक व्यक्ति के करने का नहीं । इसे कोई सरकार ही कर सकती है । दूसरे, इस काम के लिए जितना रुपया चाहिए उतना मिलना कठिन है । तीसरे, सबसे बड़ी कठिनाई बालकों की थी । मित्रो की धारणा थी कि उस काल मे दस-बीस माता-पिता भी ऐसे न निकलेगे जो सरकारी शिक्षा-प्रणाली को छोड़ कर अपने बालकों को ऐसे शिक्षणालय मे भरती करने को तैयार होंगे, जहाँ से पढ़ कर वे सरकारी नौकरी न पा सकेंगे । परन्तु मित्रों की बातो से वकील महाशय हतोत्साह नहीं हुए। उन्होने अपनी वकालत छोड़ दी और स्थान-स्थान पर घूम कर वे व्याख्यानो द्वारा जनता को अपने विचार समझाने लगे । वे छः मास तक निरन्तर घूमते रहे और तब तक लौट कर घर नहीं आए जब तक उन्होने अपने शिक्षणालय के लिए ३५ सहस्र रुपया इकट्ठा नहीं कर लिया । इसके साथ ही उन्होंने अपनी सारी निजी सम्पत्ति भी अपने इसी शिक्षणालय के लिए दान कर दी ।

उनका ऐसा अदम्य साहस देख उनके मित्रों का भी उत्साह बढ़ गया । उन्होंने भी वकील महाशय को सहयोग देना स्वीकार कर लिया । फल यह हुआ कि २२ फरवरी १६०२ को पुण्य सलिला भागीरथी के तट पर कनखल के निकट नदी के पार एक वन मे जगत्-प्रसिद्ध गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना हो गई । वकील महाशय—महात्मा मुंशीराम—ने सब से पहले अपने दोनो लड़कों को गुरुकुल मे भरती किया । फिर कालांतर मे धीरे-धीरे प्रवेश

पाने के लिए बालकों के इतने आवेदनपत्र आने लगे कि स्थाना-भाव से बहुतेरों को भरती नहीं किया जा सकता था। इसके बाद तो इस गुरुकुल की देखा-देखी भारत के दूसरे भागों में भी ऐसी ही कई संस्थाएँ खुल गईं। गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली के मूल में केवल एक ही व्यक्ति महात्मा मुंशीराम, बाद को स्वामी श्रद्धानन्द, का ही हाथ था। वे भी यदि साधारण मनुष्यों की भाँति समझ बैठते कि मैं अकेला क्या कर सकता हूँ या अपने विचार को अपने भीतर ही बन्द रखते तो इतना बड़ा काम कभी न हो सकता।

पंजाब मे खत्री जाति के दो बड़े विभाग हैं। एक का नाम सरीन है और दूसरा बुँजाही कहलाता है। सरीन वे हैं जिन्होंने अकबर के शरअ आईन को स्वीकार कर विधवा-विवाह करना मान लिया था। इसके विपरीत बावन ऐसे व्यक्ति निकले थे जिन्होंने शरअ आईन को मानने से इन्कार कर दिया था। इन बावन के वंशज बुँजाही कहलाते हैं। बुँजाही अपने को सरीन से बड़ा समझते थे। वे सरीनों की लड़की तो ले लेते थे, पर उनको लड़की नहीं देते थे। उधर सरीन अपनी लड़की बुँजाही को देना बड़े गौरव की बात समझते थे। वे बड़े-बड़े दहेज दे कर भी बुँजाही लड़के ढूँढ़ते थे। इस ने बुँजाहियों मे बड़ा अभिमान उत्पन्न हो गया। वे सरीनों की लड़कियों के साथ दुर्व्यवहार करते थे। एक लड़की के मर जाने पर उनको झट दूसरी लड़की मिल जाती थी। साथ ही भारी दहेज भी आ जाता था।

जालन्धर के एक वैशाखीराम नामक सरीन की कन्या किसी

दुँजाही को ब्याही थी। सुसराल वाले उसके साथ बहुत बुरा व्यवहार करते थे ताकि वह मर जाए और नई दुलहिन के साथ उनको नया दहेज भी आए। लड़की ने अत्यन्त दुःखी होकर आत्म-हत्या कर ली। वैशाखीराम की वह एकलौती पुत्री थी। उसके आत्मघात से पिता के हृदय पर भारी चोट लगी।

वैशाखीराम ने इस रोग की जड़ को ही काट डालने का दृढ़ संकल्प कर लिया। वह एक लोटा और डोरी ले कर घर से अकेला निकल पड़ा और गाँव गाँव मे जा कर सरीन खत्रियों की सभाएँ करा कर प्रस्ताव पास कराने लगा कि जब तक वे लोग भी उन्हे अपनी लड़की देना स्वीकार न करें तब तक कोई सरीन अपनी लड़की उन को न दे। उस के प्रचार से सरीनों में जागृति आ गई। लोगों ने अँगूठे लगा कर शपथे उठाईं कि हम कभी अपनी लड़की किसी ढुँजाही को नहीं देंगे। फल यह हुआ कि ढुँजाहियो के होश ठिकाने आगए। उनका अपने को श्रेष्ठ समझने का भाव दूर हो गया और वे सरीनों को लड़की देने लगे। उस एक व्यक्ति के परिश्रम से सारी सरीन जाति का कष्ट दूर हो गया। उस पुण्यात्मा वैशाखीराम की समाधि अब तक जालन्धर में होशियारपुर की सड़क पर विद्यमान है।

देखिए, यदि वैशाखीराम भी यह कह कर कि "मुझे क्या, मेरी लड़की तो मर ही चुकी है; मुझे दूसरों की लड़कियों के सुख दुःख से क्या," तो आज न मालूम कितनी निरपराध कन्याएँ नरक की यातनाएँ भोग रही होतीं।

ऊपर के उदाहरण तो उन लोगों के हैं जिन्हें संसार में ख्याति मिल गई है, परन्तु दूसरे अनेक ऐसे स्त्री-पुरुष भी हैं जो कम दिखलावे की रीति से अपने अपने क्षेत्रों को अच्छा बनाने का यत्न कर रहे हैं।

कई लोग ऐसे हैं जो व्यापार-धंधे से बहुत धन कमा सकते हैं। पर जो व्यापार न करके अध्यापक बन गए हैं क्योंकि वे अनुभव करते हैं कि अध्यापन कार्य से वे क्लास-रूम में अधिक भलाई का काम कर सकते हैं।

एक व्यक्ति किसी समय अध्यापक था पर उसने अध्यापकी छोड़ दी थी, क्योंकि वह व्यापार से अधिक धन कमा सकता था। व्यापार में उस ने रुपया अवश्य कमाया परन्तु उसे मानसिक शांति प्राप्त न हुई। इससे वह दुःखी हो गया। वरन् इससे भी बढ़ कर वह घबरा गया। व्यापार में उसे सब सुख-सुविधाएँ और पदार्थ प्राप्त थे जिनकी कल्पना मनुष्य कर सकता है। परन्तु वह सुखी न था। इस बात पर आप विश्वास न करेंगे।

उसे अपनी मानसिक अशान्ति का कारण नहीं सूझता था। दैवयोग से उसके हाथ एक पुस्तिका पड़ गई। उसके अध्ययन से उसे ज्ञात हुआ कि संसार में आगे बढ़ने और केवल अपने ही विषय में सोचते रहने से वह दूसरों की भलाई की उपेक्षा कर रहा था, विशेषत. उन नवयुवकों की जिनको पढ़ाने की ट्रेनिङ्ग उसने प्राप्त की थी। इस लिए वह फिर अध्यापक बन गया और उसे पुनः वह सन्तोष प्राप्त हो गया। कारण यह कि उस ने

अनुभव किया कि वह अपने मानव बन्धुओं के लिए, उस सर्वोत्तम रीति से जिसका उसे ज्ञान है, जितना भी अधिक से अधिक वह कर सकता है, कर रहा है।

एक ही बात से यह मनुष्य व्यापारी से बदल कर फिर अध्यापक बन गया। वह अपने आप के साथ प्रयोग कर रहा था। वह एक समस्या के सम्बन्ध मे अपनी प्रतिक्रिया की जॉच कर रहा था। नि:स्वार्थ भाव से दूसरो की सेवा करने की अपेक्षा अपने ही सकुचित निजी स्वार्थ मे फॅसे रहने के सूत्र को उसने असन्तोषजनक पाया था। उसने अपने प्रयास को तभी सफल समझा जब उसे अपने और अपने पड़ोसियो के बीच के संबंध का उचित ज्ञान हुआ। जब तक वह अपने आप मे ही डूबा रहा, जब तक वह अपनी दृष्टि को दूसरों की भलाई तक नहीं ले गया, तब तक उसे मानसिक अशान्ति से छुटकारा नहीं मिला।

बात असल मे यह है कि जब कोई व्यक्ति अपने निज के संकीर्ण स्वार्थ को छोड़ कर बहुजन समाज के हितार्थ कार्य करने लगता है, जब वह समझने लगता है कि मैं आप कुछ नहीं कर रहा, भगवान् मेरे द्वारा अपना कोई काम करा रहे हैं, तब उसमे असीम बल और निर्भीकता आ जाती है। फिर उसे अपने मार्ग में आने वाला कोई भी कष्ट कष्ट नहीं प्रतीत होता। जन-कल्याण के उस पुण्य कार्य के लिए भगवान् के हाथ मे अपने को एक साधन मात्र समझता हुआ वह हँसता हँसता सूली पर लटक जाता है, प्रचण्ड अग्नि-कुण्ड मे कूद पड़ता है।

वीर वैरागी को पकड़ कर जब दिल्ली लाया गया और गरम गरम जम्बूरों से उसकी बोटियाँ नोच कर उसे मृत्यु-दण्ड देने की आज्ञा फर्रुखसियर ने सुनाई, तो मुहम्मद अमीन नामक एक राज-कर्मचारी ने वैरागी से पूछा—"तुम्हारे जैसे दूरदर्शी ने ऐसा कृत्य क्यों किया जिसका परिणाम आज तुम इस प्रकार के भीषण मृत्यु-दण्ड के रूप में भोगने जा रहे हो ?"

इस पर वैरागी ने निर्भीक भाव से उत्तर दिया—"मैं तो प्रजा-पीड़कों के निर्मूलन के लिए जगन्नियन्ता के हाथ में एक शस्त्र मात्र था। क्या तुमने नहीं सुना कि जब अन्याय और अत्याचार अपनी सीमा का उल्लंघन कर जाते हैं, तो मेरे जैसा दण्ड-दाता उत्पन्न होता है ?"—

वैरागी की बोटियाँ नोचने के बाद उसे हाथी के पाँवतले कुचलवा कर मरवा डाला गया। परन्तु इसी दृढ़ विश्वास के कारण कि मैं एक जन-सेवा का पुण्य कार्य कर रहा हूँ उसके मुख से आह तक न निकली। वह पूर्ण रूप से शांत बना रहा।

सच तो यह है कि जो मनुष्य अपने को इस प्रकार भगवान् के अर्पण कर देता है, जो बहुजन के हितार्थ कार्य करने लगता है उसे कोई संसारी वेदना वेदना ही प्रतीत नहीं होती। ईसा सूली पर लटक गया। सुकरात और दयानन्द ने विष का प्याला पिया। वे मृत्यु से बिलकुल भयभीत नहीं हुए। इसका रहस्य यही था कि वे अपने निजी स्वार्थ के लिए नहीं, वरन् जनता जनार्दन की सेवा के लिए कार्य कर रहे थे।

थोड़े दिन की—भारत के विभाजन के बाद की—बात है। होशियारपुर ज़िले के पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट ने कई ग्रामों के लोगों को एक स्थान पर बुलाया, ताकि उन्हें शासन-व्यवस्था में सहयोग देने केलिए उपदेश दें। गाँवों के चौकीदारों ने लोगों को सूचना दी कि सुपरिण्टेण्डेण्ट महाशय जहानखेलाँ नामक स्थान पर आ रहे हैं; कल सब लोग सवेरे आठ बजे वहाँ उपस्थित हो जाएँ। पुलिस का डर प्रसिद्ध है। सभी लोग आठ से भी पहले साढ़े सात बजे ही वहाँ पहुँच गए। परन्तु सुपरिण्टेण्डेण्ट महाशय आठ बजे तो क्या तीसरे पहर के चार बजे तक भी वहाँ न पहुँचे। लोग घर से भूखे ही चले आए थे। वे अपने पशुओं के लिए चारे का भी कोई प्रबंध न कर सके थे। उनकी धारणा थी कि आठ बजे जाकर १० बजे तक घर लौट आएँगे। पर वहाँ जाकर उन्हें दिन भर बैठना पड़ा। वे आप तो भूखे-प्यासे थे ही, पीछे उनके पशु भी भूखे खड़े थे। सायंकाल जब पाँच बजे तो सुपरिण्टेण्डेण्ट महाशय भी वहाँ आ गए। उन्होंने लोगों से बहुत सी अच्छी अच्छी बातें कहीं। उन्होंने यह भी कहा कि अब अपना राज हो गया है। हम सरकारी कर्मचारी आपके नौकर हैं। आपके सहयोग के बिना पुलिस ठीक तौर पर काम नहीं कर सकती। आप सहयोग दें तो चोरी-चकारी और डकैती बहुत घट सकती है और पुलिस को आपकी सेवा के दूसरे कामों के लिए समय मिल सकता है। इन बातों के अतिरिक्त उन्होंने यह भी कहा कि अब आपको अपना समय व्यर्थ नष्ट नहीं करना चाहिए। सदा कोई न कोई कार्य करते रहना चाहिए। इस प्रकार रचना-कार्य

में लगने से ही हम अपने लोकराज को समृद्धिशाली बना सकेंगे।

सभी लोग चुप-चाप बैठे पुलिस अधिकारी का भाषण सुन रहे थे। पुलिस के पिट्ठू—लम्बरदार, हेडकाँस्टेबल, थानेदार—थोड़ी थोड़ी देर बाद भाषण की प्रशंसा में करतल-ध्वनि करते थे। भाषण की समाप्ति पर सुपरिण्टेण्डेण्ट महोदय ने कहा कि किसी को कुछ प्रश्न करना हो तो पूछे। और लोग तो डर के मारे कुछ नहीं बोले, परन्तु एक व्यक्ति साहस करके प्रश्न करने के लिए उठ कर खड़ा हो गया। इस पर पुलिस के चापलूसों ने उसे बैठा देने का यत्न किया। परन्तु वह डरा नहीं। उसने सुपरिण्टेण्डेण्ट महाशय से कहा कि आप ने उपदेश दिया है कि ग्रामीण लोगों को अपना समय व्यर्थ नष्ट नहीं करना चाहिए। आप का उपदेश शिरोधार्य है। परन्तु सरकारी अधिकारियों को भी जनता के समय का ध्यान रखना चाहिए। हम सवेरे सात साढ़े सात बजे से आये बैठे हैं। हम में से बहुतों ने कुछ खाया पिया भी नहीं। लोगों के पशु भूखे खड़े हैं। आप ५ बजे आए हैं। लोग किस समय पर जाकर पशुओं के लिए चारा काट कर लाएंगे ?

वह व्यक्ति मेरा छोटा भाई, श्री तुलसीराम, ही था। उसकी बातें सुन कर पुलिस के चापलूस बहुत विचलित हुए। वे चापलूसी करते हुए बोले—"नहीं जी, हमें कोई कष्ट नहीं हुआ है। ऐसा हो ही जाता है। अफसरों को सौ काम हो जाया करते हैं, कुछ देर हो गई तो क्या हुआ ?" पर सुपरिण्टेण्डेण्ट महोदय भले

व्यक्ति थे। वे बोले, मैं ने तो यहाँ ५ बजे ही पहुंचने का समय दिया था। आप को किस ने ८ बजे सवेरे आने को कह दिया ?

श्री तुलसीराम ने कहा, इन चौकीदारो से पूछिए। चौकीदारो ने कहा, हमे थानेदार ने कहा था कि सब लोग सवेरे ८ बजे इकट्ठे हों। इस पर सुपरिण्टेण्डेण्ट ने थानेदार को डॉटा कि इस प्रकार जनता को कष्ट देना अनुचित है। इसका प्रभाव जनता तथा पुलिस कर्मचारियो पर बहुत अच्छा रहा।

यदि तुलसीराम के मन मे यह भाव काम न कर रहा होता कि मैं बहुजन समाज के हितार्थ पुलिस अधिकारी को सजग कर रहा हूं तो उसे खड़े हो कर ऐसा प्रश्न करने का कभी साहस न होता।

इसी प्रकार एक ब्राह्मण-सभा हो रही थी। स्वर्गीय राजा नरेन्द्रनाथ को उन्होंने अपना सभापति बनाया था। राजा नरेन्द्रनाथ ने ब्राह्मणों की एक अलग सभा बनाने की निन्दा करते हुए इस प्रकार की जाति-सभाओं को राष्ट्रीय एकता के लिए घातक बताया। सभा के संचालक उनके साथ सहमत तो न हो सके, पर राजा साहब के इस साहस से ब्राह्मणों मे भी बहुत से लोग जात-पॉत छोड़ने के पक्ष मे हो गये।

इसी प्रकार से क्षत्रिय-सभा के प्रधानपद से बोलते हुए विजय नगरम् के महाराजकुमार ने भी राजपूतों को इस प्रकार के पृथक्-पृथक् जातिगत संगठन बनाना बंद कर देने को कहा था।

इससे क्षत्रिय-सभा को जात-पाँत की हानियों पर विचार करना पड़ा था। यदि वे एक जाति-सभा में जात-पाँत की निन्दा करने का साहस न दिखाते तो क्षत्रिय सभा वालों को अपने राष्ट्र-विरोधी कर्म पर विचार करने की आवश्यकता का अनुभव ही न होता।

राजा नरेन्द्रनाथ तथा महाराजकुमार विजयनगरम् दोनों बात की गहराई में पहुँच गए थे। वे अपनी अपनी सभा में अकेले थे। उनको प्रोत्साहित करने के लिए कोई मित्रोचित कर-तल-ध्वनि न होती थी। तो भी उन्हों ने दूसरों से उस बात का सम्मान करा लिया जिसमें उनका अपना विश्वास था। उनका साहस बड़ा ही दुर्दान्त था।

परन्तु साहस का केवल यही एक प्रकार नहीं। कई दूसरे भी कुछ कम साहस नहीं कर रहे हैं। दूसरों के लिए त्याग करना भी एक भारी साहस का काम है।

भारत में सरकारी नौकरों को भारी भारी वेतन मिलते हैं। इसी लिए यहाँ सभी लोग सरकारी नौकरी के लिए लालायित रहते हैं। परन्तु अमेरिका की दशा इसके बिलकुल विपरीत है। वहाँ लोग सरकारी नौकरी में जाना पसन्द नहीं करते। वहाँ व्यापार से कहीं अधिक रुपया कमा लिया जाता है। वहाँ अच्छे लोगों को सरकारी नौकरी में जाने के लिए त्याग और देश-सेवा के नाम पर दुहाई देकर प्रेरणा करनी पड़ती है।

न्यूयार्क में एक दलाल था। उसका काम ही ऐसा था जिससे उसे राष्ट्र की नाड़ी को पहचानने का अच्छा सुयोग मिलता था। उसने अनुभव किया कि कम्यूनिस्टों ने अमेरिका पर, विशेषतः शासन-क्षेत्र पर धावा बोल रखा है। इससे वह चौंक उठा। उसके दूसरे व्यापारी साथी इस भय का अनुभव नहीं करते थे। परन्तु उस व्यापारी ने खतरे को देख लिया था। इस लिए इस खतरे को रोकने के लिए कुछ न कुछ करना उसका कर्त्तव्य हो गया था।

अमेरिका का शासन-विभाग वालस्ट्रीट वाशिङ्गटन में है। उस विभाग में जा कर खतरे को रोकने के लिए यह आवश्यक था कि उसमें शासन-पटुता हो। इस लिए उसने अपना फला-फूला व्यापार छोड़ कर वाशिङ्गटन के राज्य-विभाग में कोई नौकरी पाने के लिए यत्न करने का संकल्प किया। परन्तु उसे अपनी पत्नी तथा बच्चों का ध्यान आ गया। वे बड़े ऐश्वर्य में पले थे। उसकी पत्नी निहायत नफीस तथा बहुमूल्य वस्त्र पहना करती थी। यदि वह वाशिङ्गटन में सरकारी नौकरी करेगा तो उसे वहाँ उनसे बहुत कम रुपये मिलेंगे जितने कि वह व्यापार से कमाता था। कई सप्ताह तक पति-पत्नी इस विषय में बात-चीत करते रहे। अन्त में उन्हों ने निश्चय किया कि निर्वाह हो या न हो, हमें काम अवश्य बदल लेना चाहिए। तब उसने व्यापार छोड़ कर सरकारी नौकरी कर ली। पर इसके लिए उसे कभी पछताना नहीं पड़ा।

भूतपूर्व दलाल कोई उच्चपदाधिकारी नहीं। वह सरकारी कार्यालय में केवल काम कर रहा है। परन्तु काम ऐसा है कि

उसकी पत्नी अब उतने बढ़िया कपड़े नहीं पहनती। उसके वस्त्र उतने नवीन तथा भड़कीले नहीं होते जितने पहले हुआ करते थे। वास्तव में वे बहुत घिसे हुए देख पड़ते हैं। परन्तु उसे इसकी कुछ परवाह नहीं। "कपड़े ही स्त्री का शृङ्गार है", यह पुरानी कहावत उसकी दशा में उल्टी हो गई है। उसके चेहरे पर अब ऐसी कांति है जो उस समय नहीं हुआ करती थी जब वह नगर की एक बहुत ही शौकीन रमणी समझी जाती थी।

अपने मानव बंधुओं के प्रेम से प्रेरित हो कर काम करने से मनुष्य में ऐसा हो जाता है।

इस समय लोकराज शासन-पद्धति और कम्यूनिज्म या साम्यवाद के बीच भारी टक्कर हो रही है। लोक-राज का प्रतिनिधि अमेरिका है और साम्यवाद का रूस। दोनों राष्ट्र एक दूसरे को मात करने का यत्न करते हैं। लोक-राज अच्छा है या कम्यूनिज़म, इस बात को अलग रख कर भी, यह बात सर्वविदित है कि अमेरिका कम्यूनिस्ट विचारों को अपने देश में फैलने नहीं देना चाहता। फिर भी उचित-अनुचित, वैध-अवैध, गुप्त-प्रकट रूप से कम्यूनिस्ट लोग अमेरिका में घुस कर अपना प्रभाव-क्षेत्र बढ़ाने की चेष्टा करते हैं। उनके इस प्रयास को विफल करने के लिए अमेरिकन लोक-सेवक कैसा-कैसा त्याग करते हैं, इसका उदाहरण लीजिए। ऐसे त्यागी, तपस्वी लोक-सेवक ही अपने राष्ट्र को सुखी और समृद्ध बनाया करते हैं।

एक अमेरिकन वकील गत महायुद्ध के समय गुप्तचर-विभाग में कप्तान था। युद्ध की समाप्ति पर जब उसने देखा कि कम्यूनिस्ट लोग अमेरिका को खोखला करने के लिए चेष्टाएँ कर रहे हैं, तो वह क्रोध से पागल हो गया।

एक दिन उसकी भेंट एक सज्जन से हुई। उसने वकील महाशय से पूछा कि क्या आप उस मौलिक सिद्धांत में विश्वास रखते हैं, जो हमारे पूर्वजों ने लोकतंत्र की घोषणा में रखा था, अर्थात् मनुष्य परमात्मा की संतान है, वह अपने सब अधिकार परमेश्वर से प्राप्त करता है, राज्य का कर्त्तव्य उन ईश्वर-प्रद अधिकारों की रक्षा करना है ? वकील ने उत्तर दिया कि हाँ, मैं इस सिद्धांत में विश्वास रखता हूँ। तब उस सज्जन ने पूछा कि क्या आप इस संबंध में कुछ रचनात्मक कार्य करने को तैयार हैं ?

"मैं अवश्य तैयार हूं। इसे करने के लिए मैं अपनी आधी कानूनी प्रेक्टिस भी छोड़ने को तैयार हूं। इससे पता लग सकता है कि मैं इस कार्य को कितना महत्त्व देता हूं।"

उस सज्जन ने वकील महाशय को केवल इतना सुझाव दिया कि आप इधर उधर घूमिए। सभा, समाज, बैठक, संघ, समारोह आदि में, जितने भी सामाजिक और नागरिक सम्मेलनों में हो सके जाइए। जितने भी अधिक वार्तालाप या व्याख्यान आप दे सकते हैं दीजिए। और सुयोग मिलने पर अच्छे विचारशील लोगों को प्रोत्साहित कीजिए कि वे

निम्नलिखित चार बड़े क्षेत्रों में घुस कर कम्यूनिस्टों की कुचेष्टाओं को विफल बनाने का प्रयत्न करें :—

१. राज्य अर्थात् शासन व्यवस्था। २. शिक्षा, ३. श्रम-प्रबंध और ४. समाचार पत्रों में लिखना, रेडियो, सिनेमा, पुस्तक-निर्माण और टेलीवीयन।

उस गृहस्थ ने वकील महाशय से यह भी कहा कि जिस भी मनुष्य को वे अपना संदेश दें उसे यह भी कहें कि वह भी आगे कम से कम एक और व्यक्ति को यही काम करने के लिए प्रेरित करे, वह भी उन आदर्शों को उन अमेरिकन क्षेत्रों में उसी प्रकार फैलाने का यत्न करे जिस प्रकार कि कम्यूनिस्ट लोग इनको उखाड़ने का यत्न कर रहे हैं।

अंधेरे को कोसने की अपेक्षा एक दियासलाई जलाना कहीं अधिक अच्छा है।

जो लोग केवल शिकायत ही करते रहते हैं, जो देश में फैली हुई बुराइयों के लिए सरकार को गालियाँ देना ही अपना काम समझते हैं, वे जनता की कुछ भी भलाई नहीं कर सकते। उपर्युक्त वकील महाशय ने उस सज्जन की बात मान ली। वे कम्यूनिस्टों की चालों पर कुढ़ना छोड़ कर प्रचार-कार्य में लग गये।

यदि लोक-सेवक अपने कार्य में लीन हो जाए और उसकी बात सुनने वाले लोग उसी के अनुकरण में वैसा ही करने लग जाएँ तो कम से कम जगत के उस भाग में तो बुराई, गड़बड़

तथा अंधकार दूर हो जायगा। वह एक ऐसा प्रकाश उत्पन्न कर देगा जो न बुझाया जा सकता है और न बुझेगा ही। बुराई की शिकायत के स्थान मे लोग भलाई कर रहे होंगे। एक चीनी कहावत मे यही बात एक बहुत सुन्दर तथा प्रभावशाली ढंग से कही गई है। वहाँ कहावत है कि अँधेरे को कोसने की अपेक्षा एक बत्ती जलाना कहीं अच्छा है।

एक छोटी लड़की को बराबर मिरगी के दौरे पड़ते थे। उसकी दशा इतनी शोचनीय हो गई थी कि उसे अस्पताल में रखना पड़ा था। वहाँ भी वह पीड़ा के मारे अपने जीवन से ही ऊब रही थी। वह सब समय अपनी व्याधि पर ही विचार करके दुःखी रहती थी। उसे खाट पर घंटों लेटी रहने से अपने भविष्य पर विचार करने के लिए बहुत समय मिल गया। उसे अपने आप पर खेद हुआ। परन्तु कुछ समय उपरांत आत्म-दया से भी वह ऊब गई। रोग का ध्यान छोड़ कर अपने समय को किसी भिन्न कार्य में बिताने के लिए उसे एक विचार सूझा। उसे खयाल आया कि शायद इससे मैं अपने कष्टों को भूल जाऊँ और दूसरो की सहायता कर सकूँ। इससे कदाचित् उसके अपने कष्ट कम महत्त्वपूर्ण और कम निराशाजनक देख पड़ें। यद्यपि वह कोई साहित्यिक प्रतिभाशाली व्यक्ति न थी, पर उसमें लिखने के लिए कुछ स्वाभाविक सूक्ष्मदर्शिता अवश्य थी। इसलिए उसने अस्पताल के अधिकारियों से कहा कि मुझे नगर के समाचार-पत्रों के संचालकों से मिला दीजिए। मैं किसी एक समाचार-पत्र मे नियमित

निम्नलिखित चार बड़े क्षेत्रों में घुस कर कम्यूनिस्टों की कुचेष्टाओं को विफल बनाने का प्रयत्न करें:—

१. राज्य अर्थात् शासन व्यवस्था। २. शिक्षा, ३. श्रम-प्रबंध और ४. समाचार पत्रों में लिखना, रेडियो, सिनेमा, पुस्तक-निर्माण और टेलीवीयन।

उस गृहस्थ ने वकील महाशय से यह भी कहा कि जिस भी मनुष्य को वे अपना संदेश दें उसे यह भी कहे कि वह भी आगे कम से कम एक और व्यक्ति को यही काम करने के लिए प्रेरित करे, वह भी इन आदर्शों को उन अमेरिकन क्षेत्रों में उसी प्रकार फैलाने का यत्न करे जिस प्रकार कि कम्यूनिस्ट लोग इनको उखाड़ने का यत्न कर रहे है।

अंधेरे को कोसने की अपेक्षा एक दियासलाई जलाना कहीं अधिक अच्छा है।

जो लोग केवल शिकायत ही करते रहते है, जो देश मे फैली हुई बुराइयों के लिए सरकार को गालियाँ देना ही अपना काम समझते हैं, वे जनता की कुछ भी भलाई नहीं कर सकते। उपर्युक्त वकील महाशय ने उस सज्जन की बात मान ली। वे कम्यूनिस्टों की चालों पर कुढ़ना छोड़ कर प्रचार-कार्य मे लग गये।

यदि लोक-सेवक अपने कार्य मे लीन हो जाए और उसकी बात सुनने वाले लोग उसी के अनुकरण में वैसा ही करने लग जाएँ तो कम से कम जगत के उस भाग में तो बुराई, गड़बड़

तथा अंधकार दूर हो जायगा । वह एक ऐसा प्रकाश उत्पन्न कर देगा जो न बुझाया जा सकता है और न बुझेगा ही । बुराई की शिकायत के स्थान मे लोग भलाई कर रहे होंगे । एक चीनी कहावत मे यही बात एक बहुत सुन्दर तथा प्रभावशाली ढंग से कही गई है । वहाँ कहावत है कि अँधेरे को कोसने की अपेक्षा एक बत्ती जलाना कहीं अच्छा है ।

एक छोटी लड़की को बराबर मिरगी के दौरे पड़ते थे । उसकी दशा इतनी शोचनीय हो गई थी कि उसे अस्पताल में रखना पड़ा था । वहाँ भी वह पीड़ा के मारे अपने जीवन से ही ऊब रही थी । वह सब समय अपनी व्याधि पर ही विचार करके दुःखी रहती थी । उसे खाट पर घंटों लेटी रहने से अपने भविष्य पर विचार करने के लिए बहुत समय मिल गया । उसे अपने आप पर खेद हुआ । परन्तु कुछ समय उपरांत आत्म-दया से भी वह ऊब गई । रोग का ध्यान छोड़ कर अपने समय को किसी भिन्न कार्य में बिताने के लिए उसे एक विचार सूझा । उसे खयाल आया कि शायद इससे मैं अपने कष्टों को भूल जाऊँ और दूसरों की सहायता कर सकूँ । इससे कदाचित् उसके अपने कष्ट कम महत्त्वपूर्ण और कम निराशाजनक देख पड़ें । यद्यपि वह कोई साहित्यिक प्रतिभाशाली व्यक्ति न थी, पर उसमें लिखने के लिए कुछ स्वाभाविक सूक्ष्मदर्शिता अवश्य थी । इसलिए उसने अस्पताल के अधिकारियों से कहा कि मुझे नगर के समाचार-पत्रों के संचालकों से मिला दीजिए। मैं किसी एक समाचार-पत्र मे नियमित

रूप मे एक स्तम्भ लिखना चाहती हूँ। उसमें मै ऐसी बातें लिखना चाहती हूँ जिन से लोग अपने इर्द-गिर्द के कल्याण पर मन को एकाग्र करने लगेंगे।

सौभाग्य से एक संपादक ने उसे मौका देना स्वीकार कर लिया। कारण यह कि वह किसी बड़े नगर का कोई बड़ा पत्र न था। तीन चार बार लेख छपने के बाद चिट्ठियाँ आना आरम्भ हो गया। उनमे उस लड़की को धन्यवाद दिया गया था। उनमे उसे मानसिक थपकी दी गई थी, उस काम के लिए जिसे कि वह करने का यत्न कर रही थी। उस दिन से फिर कचित् ही कभी उसे मिर्गी का दौरा हुआ। अस्पताल के डाक्टर ने भी स्वीकार किया कि अपने आप से बाहर निकलने और अपने संकीर्ण जगत से बाहर आने से उस लड़की को अपने जीवन का उद्देश्य मिल गया था। इसने उसकी मानसिक तथा भावगत हताशा को दूर कर दिया। वह निराशा ही उसकी गम्भीर व्याधि का प्रधान कारण थी।

अनेक अवस्थाओं में रोग का उपचार उतना बाहरी औषधों मे नहीं जितना कि अपने मन के भीतर होता है।

प्रत्येक के लिए जीवनोद्देश

हम में से कुछ को तो इस सत्य का अनुभव सरलता से हो जाता है, परन्तु दूसरों को इसका ज्ञान तभी होता है, जब कोई अति दारुण अनुभव उन्हें हिला कर आत्म-तुष्टि तथा आत्म-संतोष से बाहर लाता है।

एक अमेरिकन सागर-सेनाधिकारी ने साढ़े चार वर्ष गत महायुद्ध मे लगाए थे। वह आर्थिक युद्ध तथा सशस्त्र सेना के टेकनिकल फोटोग्राफ विभाग मे काम करता था। उसका टेकनिकल ज्ञान बहुत बढ़ा-चढ़ा था। युद्ध की समाप्ति पर जब वह नागरिक जीवन मे पुनः लौट आया तब उसने अनुभव किया कि जिस काल मे वह बाहर रहा उस काल मे उसे कुछ हो गया है। जिन दिनों वह सेना मे काम करता था उन दिनो उसके जीवन मे एक उद्देश्य था। और वह था अपने देश के लिए विजय तथा शांति प्राप्त करना। मृत्यु का भय, सैनिक जीवन की कठोरता, गरमी-सरदी की प्रचण्डता, सब को वह सहर्ष सहन करता था। कारण यह कि उसके सामने एक उद्देश्य था।

अब नागरिक जीवन में लौटने पर वह चाहता था कि उसे कोई ऐसा उद्देश्य मिल जाए जो इस योग्य हो कि उसके लिए काम किया जाय, कोई ऐसा क्षेत्र मिल जाय जिसमे वह अपनी और दूसरों की भलाई कर सके। वह केवल कमाने वाला काम नहीं चाहता था। उसे आठ सहस्र वार्षिक का काम एक बैंक में मिला। उसे उसको लेने का लोभ तो हुआ, परन्तु वह लोभ इतना तीव्र न था जो उसे उस काम को स्वीकार करने पर तैयार कर सके। काम मिलने से उसकी चिंता तो दूर हो जाती थी, परन्तु इस काम से डर था कि वह सारी आयु के लिये ही धन तथा नाम कमाने मे फँसा रहे और वह उस धन के लोभ को छोड़ कर फिर परोपकार का कोई काम ही न कर सके। इसलिये उसने निर्णय

किया कि यह काम मेरे लिये नहीं। और इस निर्णय के लिए उसे कभी पश्चाताप नहीं हुआ।

उसने यूरोप में सिनेमा के अनेक निर्देशकों तथा टेकनीशियनों के साथ काम किया था। शायद उसके लिए वहाँ स्थान था। परन्तु फिर सामने बन्द दीवार थी। आगे जाने का मार्ग बंद था। उसे काम मिल रहे थे और अच्छे काम मिल रहे थे। परन्तु उन कामों में से एक के सिवा शेष सब में केवल रुपया ही कमाया जा सकता था और कुछ नहीं। उस अपवाद स्वरूप काम के उसे पसंद आने की सम्भावना थी। परन्तु वह काम केवल निकटवर्ती भविष्य के लिए ही था।

एक भीतरी मित्र ने कहा कि इस बात का कोई मुआयका नहीं कि आप कितने अच्छे हैं, परन्तु दो वर्ष बाद आप बाहर से खड़े भीतर की ओर झाँक रहे होंगे, और एक बार बाहर निकल जाने पर आप के सब विचार और वह सब चीज जिसके लिए आप ने काम किया है, किसी अफसर की रद्दी की टोकरी में बंद हो कर रह जाएँगे। यदि आप कोई ऐसा काम चाहते हैं जिसका कुछ भविष्य हो तो यह काम आप के उपयुक्त नहीं।

क्या यह काम निरुत्साहित करने वाला है? है, निश्चय ही। पर उसके मन में अभी तक भी एक बात बसी हुई थी। वह समझता था कि चल-चित्रों का रचनात्मक मूल्य है। उनमें लाखों लोगों तक भलाई को पहुँचाने की क्षमता है।

एक दिन वह एक मित्र के साथ अपनी कार में बैठ कर घूमने निकला और उससे अपनी दुविधा का समाधान पूछने लगा। संक्षेप में मित्र का उत्तर यह था—

"चल-चित्र दिखाने वाले के रूप में अर्थात् एक स्वतंत्र प्रदर्शक के रूप में, वह एक ऐसी स्थिति में होगा जहाँ वह उत्तम तथा मनोरञ्जक फिल्मों को प्रोत्साहित और गन्दी तथा निकम्मी फिल्मों को दबा तथा बंद कर सकेगा।"

यह भूतपूर्व सेनाधिकारी फिल्म-उद्योग के सबंध में कुछ भी नहीं जानता था। परन्तु उस ने इसे सीखने का निश्चय कर लिया। उसने ३८ शिलिङ्ग साप्ताहिक वेतन पर इस उद्योग को आदि से सीखना आरम्भ कर दिया। याद रहे कि उसका एक उद्देश्य था। उसने अठारह मास में अपना काम इतनी अच्छी तरह सीख लिया कि एक बैङ्क से ऋण ले कर उसने अपनी एक रंगशाला मोल ले ली। संयोग देखिए कि अब वह उससे कहीं अधिक रुपया कमा रहा है जितना कि वह उसे पहली मिलने वाली नौकरी से कमा सकता था।

एक चलचित्र चलाने वाले अधिकारी ने उसकी प्रगति को देख कर कहा था कि समूचे देश में ऐसी लाखों रङ्ग-शालाओं का जाल सा बिछ जाना चाहिए जो गन्दी फिल्में रोक कर केवल उत्तम, मनोरञ्जक तथा शिक्षाप्रद चित्रों को ही प्रोत्साहित करती है। फिल्मों में उपयोगी तथा शिक्षादायक चीजें दिखा कर इस व्यक्ति ने लाखों व्यक्तियों के जीवनों को प्रभावित कर दिया है।

थोड़े दिन हुए उस ने घोषणा की थी कि यदि कोई फिल्म दिखाने योग्य नहीं होगी तो मैं उसे बिलकुल नहीं दिखाऊँगा, चाहे उस के स्थान में मेरे पास दिखाने केलिए और कोई चित्र न भी हो, चाहे मेरी रंगशाला सूनी ही पड़ी रहे। ऐसी दशा में मैं अपनी रंगशाला को दो दिन के लिए बंद कर देना पसंद करूँगा, और बाहर नोटिस लगा दूँगा कि मैंने रंगशाला क्यों बंद की है। अपने फ़ुरसत के समय में उस प्रचारक ने कानून का कोर्स पूरा कर लिया है। यह उसने नौकरी में जाने के पहले आरम्भ किया था। वह अनेक ऐसे कामों से अपना संबंध स्थापित कर चुका है जिनसे बहुजन-समाज का हित होता है। उन कामों में से एक यह था—

उन दिनों समाचार आया कि जेकोस्लोवेकिया पर रूस ने आक्रमण कर के उसे दबा लिया है। अमेरिकन पत्रों ने इस समाचार को मोटे अक्षरों में छापा। समूचे देश में यह समाचार आग की भाँति फैल गया। लोग बहुत दुःखी हुए। पर वे कर ही क्या सकते थे? सर्वत्र निराशा छा गई। परन्तु इस सैनिक अधिकारी ने साहस किया। वह अमेरिका-प्रवासी जेकोस्लोवेकिया के लोगों की बस्ती में गया। उसने उनसे प्रतिवाद करने को कहा। उन्हों ने उत्तर दिया, हम क्या कर सकते हैं? उसने परामर्श दिया कि अमेरिकास्थित रूसी दूतावास पर धरना मार कर बैठ जाओ और प्रदर्शन करो।

उनमें से एक बोला—"इस काम के लिए हम इतने मनुष्य कहाँ से लाएँ ?"

अधिकारी ने कहा—"आप पाँच-सात टिकट दें, शेष काम मैं स्वयं कर लेता हूँ।"

वह साइनबोर्ड तैयार करने वालों के पास गया। उस ने इस प्रदर्शन के लिए प्लेकार्ड बनवाए। फिर उनको लेकर उसने बाजार में घुमाया। देखते ही देखते सैकड़ों-सहस्रों व्यक्ति इकट्ठे हो गये और उन्होंने रूसी दूतावास को घेर लिया। इस प्रदर्शन को देखने के लिए समाचार-पत्रों के संवाद-दाता, न्यूज-एजंसियों के प्रतिनिधि और सिनेमा कम्पनियों आदि के लोग आए। इस प्रतिवाद का समाचार समूचे अमेरिका तथा यूरोप महादेश में फैल गया। यूरोप से अमेरिका में पत्र आने लगे कि हमारी इस विपत्ति में आप की सहानुभूति से बड़ा उत्साह तथा प्रेरणा मिली है। हम अपने देश की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए कटिबद्ध हो गये हैं। इस प्रकार रूस के साम्राज्यवाद के विषाक्त प्रोपेगण्डा का भण्डा फोड़ कर इस एक व्यक्ति ने संसार की सहानुभूति जेकोस्लोवेकिया के प्रति उत्पन्न कर दी।

इस लोक-सेवक ने एक और भी काम किया। लोक-सभा में रूसी प्रतिनिधि ग्रोमाइको ने अमेरिका पर दोषारोपण करते हुए कहा था कि संसार में रूस नहीं, अमेरिका ही अशांति फैला रहा है। वही आक्रामक है और यह बात प्रत्येक ग्वाला और प्रत्येक टैक्सी चलाने वाला जानता है। इस पर इस सैनिक अधिकारी ने कुछ

ग्वाले तथा कुछ टैक्सी ड्राइवर इकट्ठे किये। उनको उसने उनकी वर्दियाँ पहना कर लेकसकसेस्स में उनका प्रदर्शन कराया। प्रदर्शन करने वालों ने साइनबोर्ड पर लिखा था—"श्री प्रोमाइको, हमें तो इसका ज्ञान नहीं। आप कैसे जानते हैं?"

एक छोटे से व्यक्ति का महत्त्व

जो मनुष्य कोई सचमुच की लोक-सेवा करना चाहता है, उसे इस सैनिक अधिकारी के उदाहरण से शिक्षा मिल सकती है।

जब उस जैसे दस लाख भी स्त्री-पुरुष इस समय देश में फैली हुई गड़बड़, भूल, बुराई और भ्रष्टता रूपी अंधकार में अपने छोटे-छोटे दीपक ले जाएँ तब यह हमारी अँधेरे में ठोकरें खाती हुई बूढ़ी दुनिया सचमुच उस जग-जीवन के आलोक को प्रतिफलित करने लगेगी जो समूचे संसार की ज्योति है।

अमेरिका के एक बड़े सिनेमा-हाल में गत महायुद्ध में वीरों का सत्कार करने के लिये लाखों लोग एकत्र हुए थे। हाल खचाखच भरा हुआ था। उसमें सचमुच के युद्ध का दृश्य दिखाया गया था। उसमें सुरंगे, टारपीडो, तोपें, टैंक आदि चलते दिखाए गए थे। ऊपर बम्बर मँडरा रहे थे। उद्देश्य यह दिखलाना था कि इतने बड़े विनाशक शस्त्र-अस्त्रों के सामने मनुष्य कितना तुच्छ और असहाय है। तब एकदम सारा कोलाहल बंद हो गया। प्रबंधकर्ता मंच पर आकर कहने लगा—"शायद आप अपने मन

मे सोचने लगते हों कि आपका काम उतना महत्त्वपूर्ण नहीं, क्योंकि यह इतना छोटा काम है। परन्तु ऐसा समझना आपकी भारी भूल है। सुयोग से अप्रसिद्ध मनुष्य भी बहुत महत्त्वपूर्ण हो सकता है। यहाँ जो लोग बैठे है उनमे से जो भी चाहे दूर तक पहुँचने वाली शक्ति का प्रयोग कर सकता है। मेरा क्या अभिप्राय है, यह मैं आपको दिखलाता हूँ।

इस पर वे सब महान् ज्योतियाँ जो सिनेमा-हाल को विद्युत् प्रकाश से प्लावित कर रही थीं सहसा बुझा दी गईं। दिन के ऐसे प्रकाश के स्थान मे समूचा हाल घने अंधकार मे डूब गया। तब वक्ता ने एक छोटी सी दियासलाई जलाई। उस छोटी सी टेम को सब कोई देख सकता था। तब उसने कहा. अब आप एक छोटी सी ज्योति के महत्त्व का भी अनुभव कर सकते हैं। अब आप में से प्रत्येक व्यक्ति एक-एक दियासलाई जलाए। बस उसका ऐसा कहना था कि सारे सिनेमा-हाल मे दियासलाई जलाने का शब्द उठा और आँख झपकते ही दस सहस्र स्थानों पर छोटी छोटी ज्योतियाँ जग उठीं, जिनसे वह अंधकारमयी रजनी आलोकित हो गई। प्रत्येक व्यक्ति आश्चर्य से सिहर उठा। इस प्रकार शीघ्रता तथा प्रभावशाली रूप से उनको एक-एक व्यक्ति की शक्ति का चमत्कार दिखला दिया गया।

सिनेमा-हाल से निकल कर बाहर बाजार मे आते हुए लोग अनुभव कर रहे थे कि दुःखी संसार में शान्ति लाना कितना सुगम हो जाय, यदि इस में रहने वाले आश्चर्य जनक लोग सचाई का

प्रकाश फैलाने के लिए निरन्तर प्रयास करें और बुराई तथा भूल-रूपी अंधकार के विरुद्ध युद्ध करें।

संसार के सभी स्थानों के लोग इस बात का अनुभव करने लगे हैं कि सचाई और स्वतंत्रता के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध है। गत युद्ध को देख कर भी लोगों ने अनुभव किया है कि सचाई ही मनुष्य को स्वतन्त्र बना सकती है।

यदि एक बार लोगों की पर्याप्त संख्या इस बात का अनुभव करले कि झूठ सचाई के अभाव का ही नाम है—ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि अंधकार प्रकाश का अभाव मात्र है, घृणा प्रेम का अभाव है और रोग स्वास्थ्य का अभाव है—तब बड़ी आशा हो सकती है कि हमारा पुराना संसार एक दिन सच्ची तथा स्थिर शक्ति का सुख जान सकेगा। इस पुण्य कार्य मे मैं और आप कोई भी सहायता कर सकता है। हम जितना अधिक भगवान् के निकट होंगे उतने ही अच्छे लोक-सेवक होंगे। कोई भी मनुष्य भगवान् से इतना दूर नहीं कि वह संसार को सुखी बनाने के इस भारी काम मे कुछ भी भाग न ले सके।

आज हम देखते है कि अपने दु:खों के लिए सब कोई राज्य को कोसना है। कुछ लोग तो यहां तक कह देते है कि यह स्वतंत्रता नहीं विनाश है। वे सरकारी कर्मचारियों की भ्रष्टता, घूसखोरी, और भाई-भतीजों की जेबे भरने के उदाहरण प्रस्तुत करके मरोड़ खाते

और मंत्रि-मण्डल को बुरा-भला कहते नहीं थकते। पर उनका यह कृत्य अँधेरे को कोसने के समान है। वे इस देशव्यापी बुराई को दूर करने के लिए आप न कुछ करते हैं और न करना ही चाहते हैं। इनसे कुछ करने को कहा जाय तो कह देते हैं कि हमारी कौन सुनता है, इतना बड़ा काम मेरे अकेले के किए कैसे हो सकता है? एक तार टूटा हो तो कोई जोड़ भी दे। जहाँ सारी तानी टूटी पड़ी हो वहाँ मेरे जैसा एक तुच्छ प्राणी क्या कर सकता है? ऐसे लोगों को अमेरिका के उपर्युक्त सैनिक अधिकारी से बहुत कुछ प्रोत्साहन और शिक्षा मिल सकती है। बहुत से व्यक्तियों के थोड़ा थोड़ा काम करने से भी बड़ा भारी काम हो जाता है।

जात-पाँत

हम पहले कह चुके हैं कि लोकराज का आधार समता, बंधुता और स्वतंत्रता पर होता है। इसलिए जो चीज इनमें से किसी एक बात के भी विरुद्ध है उसे दूर कर देना आवश्यक है। यदि उसे नष्ट नहीं किया जायगा तो लोकराज नष्ट हो जायगा।

इस दृष्टि से जब हम जात-पाँत की प्रथा पर विचार करते हैं तो वह हमें लोकराज के लिए हलाहल विष प्रमाणित होती है। जात-पाँत को मानने वाले समाज में किसी व्यक्ति की योग्यता का आदर नहीं होता। वहाँ सारा महत्त्व जन्म को ही दिया जाता है। वहाँ निरक्षर का नाम विद्यासागर, कायर का नाम महावीर, पाजी का नाम धर्मात्मा और कंगाल का नाम करोड़ीमल रख कर उन्हें सचमुच विद्वान्, वीर, धर्मात्मा और धनाढ्य मान लिया जाता है। वहाँ बिना गुण-दोष का विचार किए किसी को नीच और किसी को उच्च समझा जाता है।

इसके विपरीत प्रजातंत्र में जन्म को नहीं कर्म को ही महत्त्व दिया जाता है। वहाँ जन्म से सब मनुष्य समान माने जाते हैं। लोकराज के सभी नागरिक अपने को एक दूसरे का बराबर का भाई समझते हैं। वहाँ धनी और निर्धन का, भंगी और वकील का घसियारे और जज का एक ही वोट होता है।

लोकराज में खान-पान और व्याह-शादी की सब किसी को स्वतंत्रता रहती है। वहाँ सभी लोग अपनी रुचि, स्थिति और इच्छानुसार चाहे जहाँ रोटी-बेटी-व्यवहार कर सकते हैं। प्रजातंत्रिक देश में जो व्यक्ति आज भंगी का काम करता है वह कल हलवाई या रोटी की दुकान भी खोल सकता है। वहाँ जूते सीने वाला अपनी योग्यता को बढ़ा कर एक दिन राष्ट्रपति बन सकता है। वह पादरी या सेठ की लड़की से विवाह कर सकता है। वहाँ मेहनत-मजदूरी के किसी भी काम से और उस काम को करने वाले से घृणा नहीं की जाती। वहाँ ईमानदारी के सभी कामों का आदर होता है। वहाँ श्रम की प्रतिष्ठा होती है।

इसके विपरीत जात-पाँत को मानने वाले देश में श्रम-जीवियों और शिल्पकारों का तिरस्कार किया जाता है। उनको नीच ठहरा कर श्रम की प्रतिष्ठा को गिरा दिया जाता है। विदेशी शासन में तो एक अछूत और शूद्र के शरीर का ही रक्त चूसा जाता था, पर घर, बाहर, गली, बाजार में सब समय अपने ही देश बंधुओं द्वारा होने वाला सामाजिक तिरस्कार उनकी आत्मा मे जोंक की भाँति लग कर उनको स्वाभिमान से रहित कर देता है। जो लोग अपने स्वदेशी अत्याचारियों से अपनी मान-मर्यादा की रक्षा नहीं कर सकते, वे विदेशी आक्रामकों के सामने भी देश-रक्षा के लिये छाती तान कर खड़े नहीं हो सकते। कारण यह कि वे समझते हैं—

कोउ नृप होउ हमहिं का हानी।
चेरि छाँड़ि अब होब कि रानी॥

वे समझने लगते हैं कि हमें क्या, देश का शासक कोई तातारी हो, मुगल हो, अँगरेज़ या हिंदू राजपूत हो, हमारे लिये एक सी बात है। हम तो सदा भंगी, चमार और नीच ही बने रहेंगे। हम ब्राह्मण और क्षत्रिय के समान स्वाभिमान-पूर्वक सिर उठा कर जीवन न बिता सकेंगे।

स्वतंत्रता एक ऐसी वस्तु है जो आपको तब तक प्राप्त नहीं हो सकती जब तक आप इसे दूसरों को नहीं देते। एक ब्राह्मण एक नाई या भंगी को अपनी सामाजिक दासता में जकड़े रख कर आप भी देर तक स्वतंत्रता का उपभोग नहीं कर सकता। यही कारण था जिससे भारत पहले एक सहस्र वर्ष तक मुसलमानों का और फिर ढाई सौ वर्ष तक अंग्रेजों का गुलाम बना रहा।

राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त कर लेने से ही किसी व्यक्ति को सामाजिक स्वतंत्रता भी नहीं प्राप्त हो जाया करती। मनुष्य के सामाजिक रूप से स्वतंत्र होने के लिए उसका राजनीतिक रूप से भी स्वतंत्र होना आवश्यक है। पर यह आवश्यक नहीं कि जो मनुष्य राजनीतिक रूप से स्वतंत्र है उसे सामाजिक स्वतंत्रता भी प्राप्त हो। हिंदू राजाओं के राजत्वकाल में देश स्वतन्त्र था पर शूद्र और अछूत सामाजिक रूप से ऊँचे वर्णों के दास ही थे। वह देश की स्वतंत्रता न थी, थोड़े से उच्च वर्ण के लोगों की ही स्वतंत्रता थी। फलतः वह चिरस्थायी न हो सकी।

जाति-भेद नीच समझी जाने वाली जातियों को पढ़ने-लिखने का निषेध करता है। इससे देश की साठ प्रति सैंकड़ा से भी

अधिक प्रजा निरक्षर रहती थी। और जिस लोकराज की प्रजा निरक्षर है वह अधिक काल तक बना नहीं रह सकता।

मनुष्य में प्रेम और भक्ति की मात्रा अमित नहीं होती। जिन देशों में जात-पाँत नहीं, वहाँ के लोग भी अपने-आप पर, उसके बाद अपने बाल-बच्चों पर, और तत्पश्चात् अपने सगे संबन्धियों पर, प्रेम करते हैं। परन्तु अपने सगे-सहोदरों के पश्चात् राष्ट्र के सभी लोग उनके लिए एक समान होते हैं। वे सब को एक जैसा समझते हैं। इसके विपरीत जात-पाँत में फँसे हुए देश में मनुष्य पहले तो अपने प्राणों से प्रेम करता है, उसके बाद उसके बाल-बच्चों की बारी आती है। बाल-बच्चों के बाद सगे-संबंधियों का नम्बर आता है। सगे-संबंधियों के बाद अपनी उपजाति और उसके बाद अपनी जाति की बारी आती है। जाति वालों को देने के बाद जो थोड़ा-बहुत प्रेम-भाव शेष बचता है वह उसके सम्प्रदाय वालों के भाग में आता है। इन सब के बाद देश या राष्ट्र की बारी आती है। और वहाँ तक पहुँचते पहुँचते मनुष्य का सारा प्रेम चुक जाता है। राष्ट्र को देने के लिए जात-पाँत को मानने वाले मनुष्य के पास प्रेम और भक्ति रह ही नहीं जाती। उसका ब्याह-शादी, खाना-पीना, उठना-बैठना, जीना-मरना सब अपनी छोटी सी जात-बिरादरी के संकीर्ण क्षेत्र तक ही सीमित होता है। इस लिए उसका सारा संसार कार्यतः उसकी छोटी सी उपजाति या जाति ही होती है। राष्ट्र के दूसरे लोगों से वह आत्मीयभाव का अनुभव ही नहीं कर पाता। जात-पाँत को मानने वाले देश की प्रजा का खान-पान और ब्याह-शादी की दृष्टि से आपस में उतना भी संबंध नहीं रहता जितना कि

चिड़िया-घर के जीव-जन्तुओं का आपस में होता है। इस लिए चुनाव मे उम्मीदवार की योग्यता और अयोग्यता का विचार न करके सब कोई अपने जाति वाले को ही वोट देता है।

जात-पाँत के कारण देश में बसने वाले सभी जन-समूहों का विकास समरूप से नहीं हो पाता। भारत मे ही देखिए। यहाँ ब्राह्मण, जातिरूप से विद्या में बढ़े चढ़े हैं। इसके विपरीत कहार जातिरूप से विद्या में बहुत पिछड़े हुए हैं। बनिए जातिरूप से बहुत धनवान् है। इसके विपरीत भंगी, जातिरूप से अति दरिद्र हैं। स्वच्छता की भावना ब्राह्मणों मे इतनी बढ़ गई है कि वे लकड़ी भी धो कर जलाते है। इसके विपरीत भगी में स्वच्छता का इतना अभाव हो गया है कि वह एक हाथ से टट्टी साफ करता हुआ साथ-साथ दूसरे हाथ से रोटी भी खाता जाता है। एक दूसरे के विरोधी समाज के ऐसे विभाग, जो विकास की दृष्टि से विभिन्न स्तरों पर बैठे है, लोक-राज को विफल बना देते है।

समजवादी नेता डा० राममनोहर लोहिया ने ठीक ही कहा है कि जब तक तेली, कुम्हार, ब्राह्मण, नाई, खत्री, कुर्मी, अहीर इत्यादि जातियाँ बनी हुई हैं तब तक देश का उद्धार असंभव है। आज भी सारी शासन-सत्ता इनी-गिनी जातियों के हाथों मे निहित है और ८० प्रतिशत जनता ज्यों की त्यों पददलित तथा सत्ताहीन है। यह स्थिति हमारे समाज और देश के लिये भयावह है। इससे भयानक कटुता और अविश्वास का प्रसार हो रहा है। यदि पिछड़े और दलित वर्गों का उद्धार न हुआ और देश

इस तरह जाति-पाँतियों मे बँटा रहा तो उसके उद्धार की आशा कोरी कल्पना है। यह स्थिति किसी दिन भयंकर संघर्ष और पतन का रास्ता पकड़ायेगी।

जात-पाँत को मानने वाला व्यक्ति अपनों को भी पराया बना देता है और जात-पाँत के रोग से मुक्त व्यक्ति खान-पान और व्याह-शादी द्वारा पराए को भी अपना बना लेता है। भारत मे छोटी जातियों के हिन्दुओं के इतनी बड़ी संख्या मे मुसलमान और ईसाई हो जाने का मुख्य कारण भी जात-पाँत ही हुआ है।

जात-पाँत को मानने वाला व्यक्ति किसी के साथ बराबर का भाई बन कर नहीं रह सकता। वह या तो उससे बड़ा बन कर रहेगा या उससे छोटा। जात-पाँत में समता का पूर्ण अभाव है। यहाँ पानी और हुक्का तक भी जाति पूछ कर पिया जाता है।

आत्म-संमान

लोक-राज के अधिवासियों मे आत्म-संमान का होना परम आवश्यक है। आत्म-संमान से शून्य मनुष्य कभी लोक-राज को स्थिर नहीं रख सकते। लोकराज कोई ऐसा लबादा नहीं जो घोड़े-गधे किसी को भी पहनाया जा सकता हो। लोकतंत्र शासन-पद्धति उन्हीं लोगों मे सफल होती है जो सामाजिक एवं वैयक्तिक रूप से लोकतंत्रिक हैं। कुत्ते को घी नहीं पचता। उसी प्रकार आत्म-सम्मान रहित, पर-पदलेही, परावलम्बी, क्षुद्राशय, स्वार्थी और अपने स्वार्थ के लिए राष्ट्र के हित का घात करने वाले लोग लोकराज जैसे अमृत फल को पचा नहीं सकते। अनायास प्राप्त

हो जाने पर भी लोकराज उनके पास बहुत दिन तक स्थिर नहीं रहता।

संसार में अपने प्राणों से बढ़ कर प्यारी दूसरी कोई वस्तु नहीं। परन्तु वीर पुरुष आत्म-सम्मान और स्वतंत्रता की रक्षा के लिए अपने प्राणोंको भी न्योछावर कर देता है।

कोई परावलम्बी व्यक्ति कभी आत्म-संमान की रक्षा नहीं कर सकता। इसी प्रकार आत्म-संमान की रक्षा के लिए राष्ट्र का भी स्वावलम्बी होना आवश्यक है। इसलिए हमें चाहिए कि हम अपने राष्ट्र को अपने-आप में भरा-पूरा बनाने का भरसक यत्न करें, जिससे हमें अन्न, मशीनरी, औषध इत्यादि जीवन के लिए परम उपयोगी वस्तुओं के लिए किसी दूसरे राष्ट्र का मुँह न ताकना पड़े। हमें उच्च कोटि के कारीगर, कृषक, वैज्ञानिक, निर्माता, विद्वान्, डाक्टर, इंजनियर और व्यापारी बनने का यत्न करना चाहिए। ऐसा बने बिना हम स्वाधीन और स्वाभिमानी न रह सकेंगे।

जात-पॉत की घातक रूढि ने हमारे बहु संख्यक राष्ट्र-बन्धुओ के आत्म-सम्मान को घोर हानि पहुँचाई है। हम ने श्रम की प्रतिष्ठा को नष्ट कर डाला है। जो लोग कपड़ा बुनते, बर्तन बनाते, तेल निकालते, जूता बनाते, सफाई करते, मकान बनाते, बढ़ई या लोहार का काम करते, खानें खोदते, पत्थर गढ़ते, या इसी प्रकार का कोई दूसरा श्रम का काम करते हैं उनको समाज मे नीच और इन कामों को बुरा समझा जाता है। इसी कारण हमारे देश मे कला-कौशल की वह उन्नति नहीं हो पाई जो पाश्चात्य देशों मे

हुई है। चिरकाल से इस कुत्सित भाव का प्रचार रहने से उन कारीगर लोगों की आत्मा कुचली सी गई है। वे आप भी अपने को नीच समझने लगे हैं। फलतः जिस प्रकार एक ब्राह्मण या राजपूत सब के सामने अपने को अभिमान से ब्राह्मण या राजपूत कह देता है उसी प्रकार एक जुलाहा या तेली अपने को नहीं कह सकता। सामाजिक तिरस्कार के भय से वह अपनी जाति और काम बताने से घबराता है। वह सदा दबा रहता है। जनता के स्वास्थ्य की रक्षा के लिए गंदी नाली साफ करने वाला भंगी देवालय मे घंटी बजाने वाले ब्राह्मण को प्रणाम करता है। पर वह ब्राह्मण पुजारी उस के प्रणाम के उत्तर मे प्रणाम करने को भी अपना अपमान समझता है। इससे कथित शूद्र और अस्पृश्य स्वाभिमान-शून्य हो गये है। लोकराज की रक्षा के लिए जनता की इस मनोवृति को ठीक करने की आवश्यकता है। जो लोग अपने राष्ट्र-बंधुओं को इस प्रकार दुत्कार और दबा कर रखते हैं उन्हें दूसरे राष्ट्रों का दास और पर-पदलेही बना रहना पड़ता है। लोकराज के सभी अधिवासियों का यह अनुभव करना आवश्यक है कि हम अपने राजा आप हैं, हम सब बराबर हैं, हम में कोई जन्म से ऊँचा या नीचा नहीं, और हम सब राजनीतिक रूप से ही नहीं सामाजिक रूप से भी स्वतंत्र हैं।

लोकराज मे सब लोग समान समझे जाते हैं। वहाँ लोग अपनी शान या वैभव दिखाने के लिए नौकर नहीं रखते। जिस काम को दो हाथ नहीं कर सकते उसी को करने के लिए चार

हाथ लगाए जाते हैं। वहाँ नौकर को अलग करने के लिए उस पर कोई आरोप लगा कर उसे अपमानित नहीं किया जाता, वरन् यह कह कर उसे अलग कर दिया जाता है कि खेद है कि अब हम आपकी सेवाओं से लाभ नहीं उठा सकते, यह लीजिए अपना वेतन। आप ने जितने दिन हमारा काम किया उसके लिए हम आपके कृतज्ञ हैं। इसके विपरीत हमारे यहाँ चिरकालीन दासता से, नौकर को गाली-गलौज करके, उस पर कोई झूठा आरोप करके, उसको अपमाननित करके, उसके आत्म-संमान को ठेस पहुँचा कर, सब के सामने उसका तिरस्कार करके, उसका वेतन मार कर हटा देने की एक कुप्रथा सी हो गई है। यह बहुत ही बुरी बात है।

लोकतन्त्रवादी देश मे जब तक कोई व्यक्ति अपनी मजिस्ट्रेट की कुरसी पर बैठा है वह मजिस्ट्रेट है। न्यायालय से निकल आने के बाद वह दूसरे नागरिकों जैसा ही नागरिक होता है। लोग उससे थर-थर कॉपते नहीं। अमेरिका के एक गवर्नर के संबंध मे कहा जाता है कि एक दिन वह सड़क पर जा रहा था। रास्ते मे एक मजदूर ने उसे पुकारा—"गवर्नर महाशय, तनिक इधर आ कर मेरी गठरी उठवा देने की कृपा कीजिए।" गवर्नर ने झट जाकर उसका बोझा उठवा दिया। इसके विपरीत भारत में जो मजिस्ट्रेट या थानेदार है वह अपनी ड्यूटी के समय तो है ही, पर घर मे, हट्टी मे, चौके मे, क्लब मे, बिरादरी की सभा में सब कहीं अपने को मजिस्ट्रेट या थानेदार ही समझ कर बर्ताव करता है। वह

मानवी समता को भूल जाता है। यह विदेशी दासता का ही दुष्परिणाम है। इससे जन-साधारण के आत्म-संमान को भारी ठेस पहुँचती है। श्रीमती शकुन्तला परांजपे ने "आस्ट्रेलिया में मेरे तीन वर्ष" नामक एक पुस्तक लिखी है। उसमे वे लिखती हैं कि मानवी समता लोकराज का पहला लक्षण है। लोकराज का प्रत्येक अधिवासी स्वाभिमानी होता है। आस्ट्रेलिया मे राव-रङ्क, उच्च पदाधिकारी और श्रमजीवी सब के बच्चों की रक्षा-शिक्षा पर एक सा ध्यान दिया जाता है। वहाॅ सेठ और उसकी रिक्षा खैंचने वाला एक साथ मेज़ पर बैठ कर भोजन करते हैं। वहाॅ का गवर्नर जरनरल पहले रेल का इंजन-ड्राईवर और राष्ट्र-पति एक खटीक था। जो ब्राह्मण अपने चौके मे एक चमार को नहीं जाने देता, या जो सेठ अपनी गाड़ी मे अपने नौकर को बराबर बैठने नहीं देता, वह लोकराज मे वसने योग्य नहीं। उसे किसी दूसरे स्थान मे भेज देना चाहिए।

यह समझना भारी भूल है कि भारत मे झगड़े का मूल कारण रुपये-पैसे की छीना-झपटी है, इसका जात-पाॅत के कारण होने वाले सामाजिक तिरस्कार के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। देखिए, सभी ब्राह्मण विद्वान् एवं धनी नहीं, और न सभी नाई कंगाल तथा निरक्षर हैं। ब्राह्मणों मे ऐसे भी व्यक्ति है जिन को दो जून पेट भर कर अन्न और तन ढकने के लिए वस्त्र तक नहीं मिलता, इस पर भी समाज में वे पूज्य समझे जाते हैं—

पूजिए विप्र शील-गुन-हीना।
शूद्र न गुन-गन-ज्ञान-प्रवीना॥ (रामचरितमानस)

इसके विपरीत नाई जाति में उच्च कोटि के विद्वानों तथा धनियों का सर्वथा अभाव नहीं। पर नाई जाति में जन्म लेने वाला एक विद्वान् तथा धनाढ्य व्यक्ति भी कथित उच्च वर्णों के सामाजिक तिरस्कार का शिकार बनने से नहीं बच पाता।

स्पृश्य शूद्रों को अपनी निर्धनता उतनी नहीं खलती जितना कि अपना सामाजिक तिरस्कार। जात-पाँत की दृष्टि से जिन लोगों को ऊँचा समझा जाता है वे अनुभव नहीं कर सकते कि जिन लोगों को नीच या छोटी जाति कहा जाता है उनके हृदय पर इस सामाजिक तिरस्कार से कितनी गहरी चोट पहुँचती है। इसी दुःख से तंग आकर लिङ्गायत और मराठा आदि कई जातियाँ अपने को हिंदू ही कहलाने को तैयार नहीं। हिंदुओं की विभिन्न जातियों तथा उपजातियों मे पाई जाने वाली कटुता का प्रधान कारण भी यही जात-पाँत है।

देश के विभाजन के पहले की बात है, लाहौर मे एक विवाद सभा हुई थी। उस मे मुस्लिम लीग की ओर से बोलने वाले श्री बरकतअली और हिन्दुओं की ओर से श्री गुलशनराय थे। प्रो. गुलशनराय पाकिस्तान की माँग को अनुचित बताते हुए कह रहे थे कि यह केवल सरकारी नौकरियो और धन-सत्ता को हथियाने के लिए ही माँग हो रही है और कि पाकिस्तान आर्थिक रूप से कभी सफल तथा स्वावलम्बी न हो सकेगा। इसके उत्तर में बैरिस्टर बरकतअली ने कहा था कि इस माँग में रुपये पैसे या राजसत्ता हथियाने का कोई भाव नहीं। सभी मुसलमान भूखों

नहीं मर रहे हैं। यदि पाकिस्तान सफल नहीं हो सकेगा, तो हिन्दुओं को इससे क्या हानि है? हम स्वयं ही झक मार कर पुनः मिल जाने के लिए आप से अनुनय-विनय करने लगेंगे। हमें तो दुःख यह है कि आप की जात-पाँत के कारण हम आप के साथ रहते हुए आत्म-संमान का जीवन नहीं बिता सकते। आप के द्वारा सब कहीं हमारा सामाजिक तिरस्कार होता है। यही बात श्री जिन्ना तथा श्री जफरुल्ला खाँ प्रभृति दूसरे मुस्लिम नेता भी बार-बार कह चुके है। परन्तु शूद्र और अछूत क्योंकि उच्चवर्ण के हिन्दुओं का तिरस्कार चुपचाप सहन करते रहे हैं, इसके विरुद्ध उन्हों ने कभी प्रबल आन्दोलन नहीं किया, इसलिए उच्च वर्ण का हिन्दू, मुसलमान के इस भाव को भली भाँति समझ नहीं सकता और इसे एक बहाना मात्र मानता है। जात-पाँत का यदि अन्त नहीं कर दिया जायगा तो न केवल हिन्दू और मुसलमान की ही, वरन् कायस्थ और भूमिहार की, जाट और बनिए की, द्विज और शूद्र की समस्या भी भारत के भविष्य को अंधकारपूर्ण बनाए रखेगी।

परन्तु जात-पाँत का यह पुराना रोग दूर कैसे हो? यह लेख लिखने, व्याख्यान देने या सहभोज करने से दूर नहीं होगा। इसे दूर करने के लिए जात-पाँत तोड़ कर विवाहों का होना परम आवश्यक है। विभिन्न जातियों और सम्प्रदायों के बीच होने वाले विवाह संबंध ही इस महारोग की अमोघ औषध हैं।

यह बात ठीक है कि जिन लोगों का कुल और शील ज्ञात न हो उनके साथ विवाह प्रायः सफल नहीं होता। परन्तु यह कैसी हास्यजनक बात है कि एक राजपूत वकील के पड़ोस में पंजाबी बोलने वाला जो कहार-वकील रहता है उसके शील को राजपूत वकील नहीं जानता, परन्तु पंजाब से बाहर उड़ीसा के उड़िया बोलने वाले एक राजपूत दुकानदार के कुल-शील को भली भाँति जानता है और उसके साथ बेटी-व्यवहार करने में उसे झिझक नहीं होती?

बात वास्तव में यह है कि जिनके साथ हम बेटी-व्यवहार कर सकते हैं वे ही हमें अपने भाई या बिरादरी लगते हैं। यदि हम जात का बंधन छोड़ कर दूसरे ऐसे लोगों के साथ बेटी-व्यवहार करने लगें जिनको हम भली-भाँति जानते हैं, पर जिन पर जाति का वही लेबल नहीं लगा, जो हम पर लगा है, तो वे भी हमें अपने भाई-बंधु ही लगने लगेंगे।

आरम्भ में इस काम में कुछ कठिनाइयाँ अवश्य आयेंगी, शायद कुछ जोड़ों के जीवन कटु भी हो जायँ, परन्तु सच्चे लोक-सेवक को उन सब कष्टों और असुविधाओं को समूचे राष्ट्र के कल्याण की पुन्य भावना से प्रेरित हो कर सहन करना चाहिए। ऐसे जोड़ों के त्याग और तप के प्रताप से देश शीघ्र ही जात-पाँत के महारोग से मुक्त हो कर राष्ट्रीय एकता का सुख भोगने लगेगा।

जात-पाँत तोड़क विवाहों के अतिरिक्त स्कूलों और कालेजों की

पाठ्यपुस्तकों में भी जात-पॉत के विरुद्ध पाठ दिये जाने चाहिए। इससे एक ही पीढ़ी मे सारे राष्ट्र की मनोवृत्ति बदल जायगी। देश के लिए मरना उतना कठिन नहीं, जितना कि देश के लिए जीना। ब्रिटिश शासन काल में पंद्रह-पंद्रह रुपये मासिक वेतन पर सेना में भरती हो कर भारतीय नवयुवक रण-क्षेत्रों में प्राण देने चले जाते थे। भावुकता मे आकर बहुतेरे युवक अँगरेजों पर बम भी फेंक देते थे। पर ये ही युवक किसी प्रकार का सामाजिक सुधार का काम करते कॉपने लगते थे। उनमे बिरादरी के भय से जात-पॉत छोड़ कर बेटी-व्यवहार करने का साहस न होता था। जात-पॉत छोड़ कर विवाह करना या किसी छोटे से गॉव मे बैठ कर ग्रामोत्थान मे जीवन-व्यतीत करना एक प्रकार से जीते जी चिता मे जलना है। ऐसा त्याग सब कोई नहीं कर सकता। इस लिए सच्चे लोक-सेवक को अपने जीवन से उदाहरण प्रस्तुत कर के जनता को संमार्ग दिखाना चाहिए।

धर्म

लोकराज धर्म-निरपेक्ष या सर्वधर्म समभावी होता है। अर्थात् लोकराज में किसी धर्म या सम्प्रदाय को कोई विशेषता नहीं दी जाती है, राजनीतिक बातों में सभी धर्मों, सम्प्रदायों और मत-मतान्तरों के साथ एक समान व्यवहार किया जाता है।

धर्म-निरपेक्ष राज्य का अर्थ यह नहीं कि उस राज्य में किसी व्यक्ति को पूजा-पाठ करने या किसी धर्म को मानने की अनुमति नहीं रहती। धर्म-निरपेक्ष राज्य में सब किसी को छुट्टी रहती है कि वह चाहे जैसा धर्म-विश्वास रख सकता और स्वेच्छानुसार पूजा-पाठ कर सकता है। बात केवल इतनी होती है कि लोकराज में धर्म-विश्वास एक व्यक्तिगत या निजू वस्तु होती है। उसका समाज या सरकार के साथ कोई संबंध नहीं रहता। इंग्लेण्ड और अमेरिका में धर्म-विश्वास की दृष्टि से बहुतेरे लोग बौद्धमत के हैं, कई इस्लाम को मानते हैं, कई हिन्दू धर्म में आस्था रखते हैं। पर खान-पान, ब्याह-शादी, वस्त्र-परिधान, रहन-सहन और भाषा की दृष्टि में वे वहाँ के ईसाई मतावलम्बी लोगों से अलग नहीं। वहाँ कोई मनुष्य घर में बायबिल पढ़े, कुरान पढ़े, वेद पढ़े, धम्मपद पढ़े, पारसी धर्म को माने पर आपस में सब का रोटी-बेटी का व्यवहार है। विवाह में वर-वधू की धन-विद्या, संस्कृति, रुचि,

और शारीरिक अवस्था पर ही ध्यान दिया जाता है, धर्म-विश्वास पर नहीं।

जात-पाँत को मानने वाले लोगों मे धर्म-परिवर्तन के साथ मनुष्य को समाज-परिवर्तन भी करना पड़ता है। परन्तु लोक-राज में इसकी आवश्यकता नहीं होती। वहाँ चार भाई चार विभिन्न धर्म-विश्वास रखते हुए भी एक घर में इकट्ठे रह सकते हैं।

केवल आत्मा और परमात्मा के संबंध का नाम ही धर्म नहीं। जिन नियमों के पालन करने से समाज मे सुख-शांति रह सकती है वे सभी धर्म के अंतर्गत ही हैं। भाई को भाई से, पुत्र को माता-पिता से, छोटे को बड़े से, पति को पत्नी से, पड़ोसी को पड़ोसी से, नौकर को मालिक से और स्वदेशी को विदेशी से कैसे व्यवहार करना चाहिये, ये सब बातें भी धर्म का विषय हैं।

सब लोग बुद्धि, योग्यता, रुचि, प्रकृति, संस्कृति आदि सभी बातों मे समान नहीं। इसलिए किसी एक विषय मे—चाहे वह विषय आत्मा-परमात्मा, स्वर्ग-मुक्ति, पूजा-उपासना ही क्यों न हों—मतभेद होना स्वाभाविक है। अब यदि इस मतभेद को लेकर लोग आपस मे सिर फुटौवल करने लगे तो समाज मे शांति न रह सकेगी। इसलिए हमें एक दूसरे के विचारों को सहन करना सीखना चाहिए। धार्मिक सहिष्णुता लोकराज के लोगों की एक बड़ी विशेषता होती है। इसके बिना लोकराज चल ही नहीं सकता। हाँ, किसी व्यक्ति को ऐसा आचरण करने नहीं दिया जा

सकता जो दूसरों की स्वतंत्रता मे बाधक या उनके लिए हानि-कारक हो ।

सजीव पदार्थ का लक्षण यह है कि वह बाहर से आहार लेता और उसे पचा कर आत्मसात् कर सकता है। दूसरे, वह अपने भीतर के कचरे को बाहर निकाल सकता है और तीसरे, वह परिस्थिति एवं अवस्था के अनुसार अपने को बदल सकता है। इसके विपरीत, निर्जीव पदार्थ ये तीनों बाते नही कर सकता ।

जो बात सजीव पदार्थ की है वही एक सजीव राष्ट्र की भी है। जैसे कोई निर्जीव पदार्थ बाहर से आहार लेकर उसे आत्मसात् नहीं कर सकता, वैसे ही जो राष्ट्र बाहर के लोगों को पचा कर अपना अंग नही बना सकता वह निर्जीव है ।

हमारे सैकड़ो भारतीय इंग्लेण्ड और अमेरिका जाते है। वहाँ वे विवाह करके संतान उत्पन्न करते हैं। उनकी सारी संतान और वे आप इंग्लिश और अमेरिकन समाज मे दूध और पानी की भाँति मिल जाते है, उसका एक अभिन्न अंग बन जाते है। इसके विपरीत हमारे भारत मे कोई विदेशी रोटी-बेटी संबंध द्वारा भारतीय राष्ट्र का अंग नहीं बन सकता। अपनी धार्मिक संकीर्णता के कारण हम उसे पचा नहीं सकते ।

बहुत प्राचीन काल मे धरती पर हाथी से भी कई गुना बड़े आकार के जन्तु थे। वर्तमान मे मिलने वाले घोड़ों, बैलों और भैंसों से बहुत बड़े घोड़े, बैल और भैंसे थे। पर वे समय के

अनुसार अपने को बदल न सके—धरती पर होने वाले भारी परिवर्तनों के अनुसार अपने को ढाल न सके। इसलिए वह जीवित न रह सके। उनका वंशोच्छेद हो गया। इसके विपरीत जिन जीवों ने काल के अनुसार अपने रहन-सहन, खान-पान और चलने-फिरने मे परिवर्तन कर लिया वे अब भी जीते है। इसी प्रकार जो राष्ट्र नवीन अवस्थाओं के अनुसार अपने को नहीं बदलता वह धराधाम से लुप्त हो जाता है। इसलिए पुरानी रूढ़ियों को छोड़ने और नई हितकर बातों को ग्रहण करने के लिए हमे सदा उद्यत रहना चाहिए।

राष्ट्र-निर्माण के लिए यह आवश्यक है कि विभिन्नता एवं विषमता को दिखाने वाली बातों की अपेक्षा एकता एवं समता को दिखाने वाली बाते अधिक हों। वहाँ ऐसा न हो कि रामदास का नाम सुन कर झट पता लग जाय कि यह हिंदू है और अब्दुलकादिर नाम से मालूम हो जाय कि यह मुसलमान है। सभी धर्मावलम्बियों के नाम रखने की शैली, कपड़ो का ढंग और खान-पान की रीति यथासंभव एक जैसी हो।

लाला, पंडित, ठाकुर, चौधुरी, शर्मा, वर्मा, गुप्त, कायस्थ, राजपूत, खत्री, बनिया, इत्यादि जन्म-जाति-सूचक शब्दों का नामों के साथ प्रयोग भी इस दृष्टि से राष्ट्रीय एकता तथा संगठन के लिए घातक है।*

---

*जाति-भेद पर मेरी पुस्तक "हमारा समाज" साधु आश्रम होशियारपुर से मँगा कर देखिए।

वास्तव में देखा जाय तो संसार में मानव-धर्म एक ही है। इस्लाम, ईसाई, हिंदू, बौद्ध, पारसी, यहूदी आदि पृथक्-पृथक् धर्म मानना ठीक नहीं। धर्म के तीन भाग होते हैं–एक विश्वास, दूसरा कर्म-काण्ड और तीसरा सामाजिक व्यवहार। विश्वास निजी वस्तु है। कोई ईश्वर को निराकार माने या साकार; काला माने या पीला, इससे दूसरे लोगों का कोई संबंध नहीं। देश, काल तथा परिस्थिति के अनुसार विभिन्न देशों तथा जातियों में कर्मकाण्ड विभिन्न होता है। इसलिए धर्म का सब से महत्त्वपूर्ण अंग उसका सामाजिक रूप है और वह सब कथित धर्मों में एक जैसा है। सत्य बोलना, प्रेम करना, दीन-दुखियों की सहायता करना, हिंदू या बौद्ध धर्म ही नहीं इस्लाम और ईसाई धर्म भी है। वही सामाजिक-धर्म मानव-धर्म है। इसी पर बल देने की आवश्यकता है। यह मानव-धर्म ऐसा है जिसके बिना समाज में सुख-शांति नहीं रह सकती। इसलिये विश्वास तथा कर्मकाण्ड को गौण मान कर मानव-धर्म को ही प्रधान स्थान देना चाहिये। ऐसा करने से ही साम्प्रदायिक तथा दूसरे झगड़े शांत हो सकते हैं।

जो लोग जाति-भेद को अपना धर्म मानते हैं और वर्ण-भेद को बनाये रख कर अछूतपन को दूर करना चाहते हैं, वे नहीं जानते कि वे क्या कर रहे हैं। मूल रोग तो जात-पाँत है। अछूतपन तो उसका एक बाहरी लक्षण है। जब तक जात-पाँत है, अछूतपन कभी दूर नहीं हो सकता। जात-पाँत के कारण

प्रत्येक हिंदु दूसरे हिंदु के लिए अछूत है। अतर केवल इतना है कि कोई कम अछूत है और कोई अधिक। किसी के यहाँ आप भोजन कर सकते है पर बेटी-व्यवहार नहीं कर सकते। किसी के यहाँ आप पक्की रसोई खा सकते हैं, दाल-चावल नहीं। इसी प्रकार कई हिंदु ऐसे हैं जिनको आप छू भी नहीं सकते। छूत-छात का विष तो हिंदु-समाज के सारे शरीर मे व्याप्त है। जिन को अछूत समझा जाता है वे तो समाज का वह अंग हैं जहाँ अस्पृश्यता का कोढ़ नासूर बन कर बह रहा है। इसलिए जात-पांत को मानना धर्म नहीं अधर्म है।

भारत के बाहर के कम्यूनिस्ट धर्म को अफीम कहते हैं। वे जन्ममूलक ऊंच-नीच को ही नहीं पूंजीपति और श्रमजीवी का भेद भी मिटा देना चाहते हैं। पर कितने खेद का विषय है कि भारत के कम्यूनिस्ट शर्मा-वर्मा बने रह कर, माथे पर त्रिपुण्ड्र और सिर पर लम्बे केश रख कर और अपनी ही जात-बिरादरी से बेटी-व्यवहार करते हुए केवल डाके डालने को ही कम्यूनिज्म समझ रहे है। जात-पांत का तोड़ना क्योंकि लोहे के चने चबाना है, इसलिए वे कम्यूनिज्म के इस अग को छोड़ कर केवल धन की समता पर ही बल देते हैं।

सच्चे लोक-सेवक के लिये जाति-भेद को मिटाने मे देश-सेवा का बड़ा अवसर है। धन, राजसत्ता और कीर्ति के लोलुप लोग यह कठिन कार्य नहीं कर सकते।

इस पुस्तक में जहाँ-जहाँ धर्म की चर्चा की गई है वहाँ हमारा अभिप्राय किसी सम्प्रदाय विशेष की रूढ़ियों, आचरणों या अनुष्ठानों से नहीं। जिस धर्म को मानने की इस पुस्तक मे प्रेरणा की गई है वह वे नियम है जिनका पालन करने से समाज में सुख-शांति रह सकती है। यम-नियम प्रभृति हितकर बातों का पालन ही धर्म है। इसी प्रकार ईश्वर से अभिप्राय किसी ऐसे व्यक्ति को मानना नहीं जो इस जगत् से परे कहीं सातवे आकाश में रहता है, जिस के सिंहासान को देवदूत उठाए हुए है, या जो मनुष्य के अच्छे-बुरे कामों को लिखता रहता है, या जिस को प्रसन्न करने या जिस से पाप क्षमा कराने के लिए बकरियों, गौओं या भैसों का बलिदान देने की आवश्यकता है, या जो उसे गाली देने से कुपित और उस की चापलूसी करने से प्रसन्न होता है। ईश्वर से हमारा अभिप्राय उस सर्व-व्यापक और सज्ञान शक्ति से है जो विश्व-ब्रह्माण्ड का संचालन कर रही है, जो मनुष्य के अच्छे-बुरे कर्मों का फल देती है और जिस के नैसर्गिक नियमों का पालन करने से मनुष्य सुखी और जिनको भंग करने मे वह दुःखी रहता है।

संसार के सब मनुष्यों का बौद्धिक तथा चारित्रिक स्तर एक-सा नहीं। कुछ लोग ऐसे हैं जो इसलिए झूठ नहीं बोलते या बेईमानी नहीं करते, क्योंकि वे समझते हैं कि यदि उन्हीं की तरह दूसरे लोग भी झूठ बोलने या बेईमानी करने लग जाएँगे तो संसार का व्यवहार चलना असम्भव हो जायगा, सब कहीं गड़बड़ मच

जाएगी, कोई किसी पर विश्वास न करेगा। पर इतने उच्च चरित्र के मनुष्य अधिक नहीं हो सकते।

इन से कहीं अधिक लोग वे है जो पुलिस या दण्ड के भय से झूठ बोलने और बेईमानी करने से बचते हैं। परन्तु प्रत्येक गांव मे और प्रत्येक व्यक्ति के सिर पर सब समय पुलिस का दण्डा रखना संभव नहीं। इस लिए ईश्वर की सत्ता को सर्वत्र व्यापक मान कर पाप से बचने वाले लोगो की संख्या ही अधिक है। यदि वे किसी अदृश्य ईश्वरीय सत्ता को न माने और धर्माधर्म या पाप-पुण्य का विचार छोड़ कर मनमानी करने लग जायँ तो संसार मे सामाजिक जीवन असम्भव हो जाय। पुण्य और पाप कर्मो का फल देने वाली किसी महान् सत्ता मे विश्वास रखने से संसार मे सुख-शान्ति बनाए रखने मे बड़ी सहायता मिलती है।

किसी ऐसी सत्ता को न मानने से अधिकांश लोग एक-दूसरे के लिए दु:ख का कारण बन जाते है। इस समय भी संसार मे चार-पॉच प्रतिशत से अधिक मनुष्य दुष्ट और अनाचारी नहीं। फिर भी लोग दु:ख तथा अशांति से त्राहि-त्राहि कर रहे हैं। यदि सौ के सौ प्रतिशत मनुष्य ही धर्माधर्म का विचार छोड़ दें, तो आप अनुमान कर सकते हैं कि संसार मे कितना भारी उपद्रव मच जायगा। इस लिए धर्म और ईश्वर को मानने की आवश्यकता है।

दूसरों के लिए मंगल-कामना या ईश्वर की प्रार्थना करने से दूसरा कोई लाभ हो या न हो, परन्तु इतना तो निश्चित है, कि इस मे हमारा अपना मन पवित्र होता है और अपने को अच्छा बनाने का हमारा संकल्प दृढ़ होता है। पश्चात्ताप करने से हम आगे पाप करने से बचते है।

हम प्रार्थना कोई स्वर्ग-प्राप्ति की सकाम भावना से नहीं करते वरन इसी जीवन मे हमारी चित्तशुद्धि हो, समाज मे एकरसता आये, सब के सब आत्म-रूप में मग्न हो जाएँ, इस लिए करते हैं। यदि प्रार्थना का जीवन के साथ सम्बध नहीं रहा, तो वह तोता के जैसे बेकार बोलना हो जायेगा। इसलिए अर्थचिन्तन के साथ-साथ उसका जीवन मे आचरण करने का प्रयास भी होना चाहिए। चिन्तन, मनन, अध्ययन से प्राप्त अर्थ को जीवन मे उतारना यही निदिध्यासन है। तब प्रार्थना का रस प्रकट होता है, उस की शक्ति का अनुभव होता है।

समस्या का प्रतिकार

किसी विद्वान् का कथन है कि जो लोग भगवान् द्वारा शासित नहीं होते, उन पर उत्पीड़क शासन करते है। यह बात सत्य ही है। जो मनुष्य जगत्-कल्याण के नियमों का पालन नहीं करते, उनके लिए अत्याचारी शासकों के उत्पीड़न का शिकार बनना अनिवार्य होता है।

हम सब एक चौराहे पर खड़े है, जहाँ से एक मार्ग सुख-शान्ति का है और दूसरा दुःख तथा विनाश का। इन दोनों मे से किसी एक पर चल पड़ना हमारे लिए सभव है, हम संसार की सब से बड़ी शान्ति के तट पर, ऐसी शान्ति के तट पर खड़े हैं जिसका उपयोग अब से पहले कदाचित ही ससार ने किया हो। इसके साथ ही हम एक ऐसी अत्यन्त भयंकर विपत्ति तथा अस्त-व्यस्तता के किनारे पर भी खड़े है, जैसी कि मनुष्य-जाति ने आज तक कभी न देखी होगी।

लोक-राज का आधार सच्चे धर्म या सच्चे ईश्वर-विश्वास पर हो सकता है। इसका आधार मनुष्य को भगवान् का अमृत पुत्र समझने पर हो सकता है, उसे तुच्छ या नगण्य समझने पर नहीं।

हमारी अशान्ति का मुख्य कारण यह है कि हम अपने-आप

के साथ ईमानदार नहीं रहे हैं। हम एक-दूसरे के प्रति, ऐतिहासिक सचाइयो के प्रति और भविष्य के प्रति झूठे बने रहे है। यदि हमारे नेताओ ने हमे धोखा दिया है, तो इसका कारण यह है कि हमने धोखा खाने पर आग्रह किया है। उनके कपटी होने का कारण हमारी अपनी मानसिक तथा बौद्धिक गड़बड़ और घबराहट है। तथ्यो मे कोई दोष नही। दोष है उन तथ्यों से परिणाम निकालने में। वर्तमान तो स्पष्ट है। आगामी काल के विचार्य विषयो को धूमिल किया जाता है। यदि हम उन विषयो को चालाकी से खटाई मे डाल देगे, तो हम दस, बीस या तीस वर्ष तक कीचड़ मे ही सटपटाते रहेगे, और विध्वंस के महासागर मे हमारी नाव डगमगाती ही रहेगी।

संसार मे रुकावटे तथा बाधाएँ बहुत है। आधुनिक विज्ञान की उन्नति के साथ जगत भी बहुत सिकुड़ गया है। शब्द से भी अधिक गति वेग से चलने वाले इसके हवाई जहाज और ऐसे हाइड्रोजन बम्ब, जो समूची मानव-जाति का नाश कर सकते है, विज्ञान ने बना डाले है। पर इन सब से भयानक समस्या यह है, कि मनुष्यों का एक ऐसा दल उत्पन्न हो गया है जो पुण्य और पाप का कोई विचार नहीं करता, जो ईश्वर को धराधाम से मिटा देना चाहता है, जो कम्यूनिज्म तथा सोशलिज्म आदि का नाम ले कर बाते तो बहुत बनाता है पर जब उसे अपने देश के सब से बड़े एव पुराने रोग—जाति-भेद—को मिटाने के लिए कुछ करने को कहा जाता है तो कह देता है कि इसके लिए हमे कुछ अलग

करने की आवश्यकता नहीं। यह तो संसार की दूसरी समस्याओं का एक अंग है। कम्यूनिज्म के आगमन से जब उन समस्याओ का समाधान होगा, तो उनके साथ जात-पॉत भी अपने-आप दूर हो जायगी। सारांश यह कि वे आप हाथ पर हाथ धरे बैठे रह कर रूस की आशा पर सुख-स्वप्न देखना पसन्द करते है। वे यह नही देखते कि प्रत्येक राष्ट्र की स्थिति तथा समस्या अपनी-अपनी अलग-अलग है। सब दु:खी तो है, पर सब का रोग एक नहीं। यूरोप मे यदि पूञ्जीवाद दु:ख का कारण बन रहा है तो भारत मे वही अनिष्ट जात-पॉत कर रही है। जात-पॉत को दूर करने का कुछ उपाय न करके पूञ्जीवाद को ही, रूस के अनुकरण मे कोसना ऐसा ही है जैसे यक्ष्मा के रोगी का वही उपचार करना जो उसके पड़ोसी श्लेष्मा से पीड़ित रोगी का हो रहा है। भारत में वे सब बुराइयॉ है जो दूसरे देशो मे है। परन्तु उनके अतिरिक्त जात-पॉत की एक और व्याधि भी है जो किसी भी दूसरे राष्ट्र मे नहीं पाई जाती। इस भयंकर रोग की अवहेलना करके पश्चिम के अंधानुकरण मे पूञ्जीवाद और साम्राज्यवाद को ही कोसते जाना भारत के लिए हितकर नहीं हो सकता। हमे अपनेआप को मूर्ख नहीं बनाना चाहिए। संसार वही है, कुछ नया नहीं। अवस्थाऍ निःसंदेह बदल गई है। परन्तु मौलिक एवं मानसिक रूप से हम अब भी वही है।

यदि ससार का रूप बुरा है, तो इस का कारण यह है, कि हम में से बहुत से लोग मानसिक रूप से बुरी दशा मे है। लोग

कहते है, कि स्कूलों और कचहरियों के कागजों मे जात-पाँत न लिखने का आदेश हो जाने से जात-पॉत अपने-आप दूर हो जायगी। यदि जात-पॉत का नाम एक ही रात में भी लुप्त क्यों न हो जाय, तो भी जिन कारणों और अवस्थाओं ने जात-पॉत को जन्म दिया और स्थिर रखा है, वे अब तक भी विद्यमान हैं। इतना ही नहीं जात-पॉत का रोग रूप बदल कर और भी गहरा घुसता जा रहा है। इस का पता चुनाव मे मत-दान करते समय लगता है।

जो बात जात-पॉत की है, वही कम्यूनिज्म की है। जब तक ऐसी अवस्थाएँ तथा मनोवृत्तियॉ विद्यमान है, जो डिक्टेटरशिप को उत्पन्न करती है, तब तक कम्यूनिज्म को कोसने से कुछ लाभ नहीं। जाति-भेद और कम्यूनिज्म को दूर करने की सच्ची विधि यही है, कि इन अवस्थाओं तथा मनोवृत्तियों को ही बदल दिया जाय जिन के कारण ये उत्पन्न होते हैं।

जिस प्रकार मानव-देह मे भूख के कारण रक्त की कमी हो जाने से मूर्छा या बेरी-बेरी रोग हो जाता है, उसी प्रकार मानव-समाज मे भी कमी या न्यूनता राष्ट्रीय तथा अन्ताराष्ट्रीय रक्त-धारा को विषाक्त कर देती है। जाति-भेद के मानने वाले मानवी ममता को स्वीकार नहीं करते। वे मानव की प्रतिष्ठा को नहीं मानते। हमारे राष्ट्र की हानि इतनी किसी बाहरी शक्ति से नहीं हुई, जितनी कि हमारी भीतरी फूट अर्थात् जात-पॉत से हुई है। इसी से हम सदा

अपनों को पराया बनाते रहे हैं, पर किसी एक भी पराए को अपना नहीं बना सके।

कम्यूनिस्ट प्रचारक लोगों में घुल-मिल जाते हैं, उनकी भाषा में बात करते हैं। वे अपनी पहले से सोची-समझी बातों से सरल और अनभिज्ञ लोगों का मुँह बन्द कर देते हैं। उनके जाल में फँसने से बचना बहुत से लोगों के लिए कठिन हो जाता है। वे बहुत चिकनी-चुपड़ी बातें करते और सुख-स्वप्न दिखलाते हैं।

इसी प्रकार जात-पाँत के प्रचारक वैदिक वर्ण-व्यवस्था के गुण गा कर, वेद, ईश्वर तथा गीता का नाम ले कर, वर्ण-संकरता की दुहाई देकर लोगों को जात-पाँत में फँसाए रखते हैं। उन्हों ने संस्कृत के सारे पुराने ग्रन्थ-पुराण, स्मृति, रामायण, महाभारत, गीता आदि में जात-पाँत का विष भर दिया है। उन के इस गुप्त तथा सूक्ष्म प्रचार से राष्ट्र की सारी रक्त-धारा विषाक्त हो रही है।

लोक-सेवक का काम सब को प्रेम से समझाना और सब के पास जाना है। जिस प्रकार भूख से मरते हुए का उपचार उसे अच्छा भोजन देना है, उसी प्रकार लोगों के गंदे विचार निकाल कर उनको अच्छे विचार देना ही देश-व्यापी इस महारोग का इलाज है। इस संबंध में अपने मानव-बंधुओं के प्रति हमारा महान् दायित्व है। इस समय जब कि मनुष्य-जाति के संहार के लिए परमाणु तथा हाईड्रोजन बम्ब तैयार हो रहा है, 'सब मनुष्य भाई हैं, उनमें ऊँच-नीच नहीं', यही प्रचार सभ्यता की रक्षा कर सकता है। परमात्मा और मानव मात्र पर प्रेम करने

वाला ही इस भ्रातृभाव का सबसे अधिक प्रचार कर सकता है। दोष उन लोगो का नहीं जो जात-पॉत को मानते है या जो भ्रमता फैलाते है, वरन् दोष उन लोगों का है जो प्रेम तथा दृढ़ संकल्प के साथ उनके पास बार बार जाकर उन्हे नहीं समझाते। उन लोगो मे बहुत से व्यक्ति समझदार तथा ईमानदार हैं। उनको सन्मार्ग पर लाने के लिए सच्चे लोक-सेवकों की कमी है। नई दिल्ली मे एशियागेट पर ठीक ही लिखा है:—स्वतन्त्रता जनता पर आकाश से नहीं उतरा करती। जनता के लिए अपने को ऊपर उठा कर उस तक पहुँचना होता है। स्वतन्त्रता एक ऐसा वरदान है, जिस का उपभोग करने के लिए कड़ा परिश्रम कर के पहले अपने को उसका अधिकारी बनाना पडता है।—

लोकराज का सिद्धान्त यह है कि—१. सब मनुष्य समान उत्पन्न किये गये है। उनको उनके स्रष्टा ने कई ऐसे अधिकार दे रखे है जो उनसे छीने नहीं जा सकते।

उनमें से कुछ ये है—

१ जीवन अर्थात जीते रहने का अधिकार।

२ स्वतंत्रता।

३ सुख की खोज।

इन ईश्वर-प्रदत्त अधिकारों की रक्षा के लिये ही मनुष्यों ने राज्य या सरकारें बनाई है। राज्य जनता की अनुमति से ही अपनी न्यायसंगत सत्ता प्राप्त करता है।

सब मनुष्य बराबर है—बुद्धि या मुखाकृति में नहीं, वरन

मनुष्य-जाति के सार और स्वभाव की दृष्टि से। राजनीतिक अधिकार परमेश्वर की ओर से मनुष्य को मिले है, राज्य की ओर से नहीं। ये मनुष्य के स्वभाव मे गड़े है। जनता की अनुमति से ही राजा या राज्य बनाया जाता है।

बुराई को रोकने का एक मात्र उपाय यह है कि बुराई फैलाने वालों से भलाई फैलाने वालों की संख्या अधिक हो जाय। जितने अधिक व्यक्ति मशाल लिये होंगे उतना ही अधिक अधकार दूर होगा।

एक लेखक ने बहुत अच्छा कहा है। वह कहता है, कि सचाई का स्वरूप इतना प्रचण्ड है, कि वह केवल प्रकट होने की स्वतंत्रता ही चाहता है। देखिये, सूर्य को अंधकार से पहचानने के लिये किसी खुदे हुये शिलालेख का प्रयोजन नहीं होता।

बड़े हर्ष का विषय है कि जनता मे मानव की प्रतिष्ठा का भाव जागृत होने लगा है। लोग जात-पॉत की हानियों का अनुभव करने लगे हैं। जाति-भेद और वर्ण-व्यवस्था आदि बुराइयॉ ऐसी कब्रे है, जो ऊपर से सुन्दर दीखती हैं, परन्तु जिन के भीतर मृतकों की हड्डियॉ और गन्दगी भरी पड़ी है।

जो वाद या दल या धर्म व्यक्ति की पवित्रता की उपेक्षा करता है वह स्वार्थान्ध है। वह बहुजन-समाज के हितों को हानि पहुँचा कर थोड़े से लोगों को अनुचित लाभ पहुँचाने की कुचेष्टा करता है। वह व्यक्ति को नगण्य समझ कर राज्य को ही सर्वाधिकारी

बना देना चाहता है। ये लोग झूठी और अविश्वास्य बातें फैला कर भोली-भाली जनता को उल्लू बनाते है।

इस बुराई को कैसे रोका जाय? बुराई के विरुद्ध बुदबुदाने और भलाई के शत्रुओं के विरुद्ध अंधाधुन्ध चाबुक चलाने से कुछ नहीं बनेगा। यह तो एक प्रकार से अंधकार के विरुद्ध संग्राम करना होगा।

अंधेरे को कोसने की अपेक्षा तो एक बत्ती जला देना कहीं अच्छा होता है।

आप कहेंगे कि समस्या बहुत बड़ी है और इस को दूर करने वाले बहुत कम हैं। इतिहास बताता है, कि सदा थोड़े लोग ही बहुतों को बचाते रहे है। विध्वंस पर नहीं, वरन् रक्षा पर बल देने की आवश्यकता है।

इंग्लैण्ड के एक ईसाई पादरी ने अपने प्रचारकों को निर्देश किया था कि मूर्ति-पूजकों के मन्दिरों को गिराओ नहीं, वरन् उन्हीं को गिरजे बना दो। यथासंभव मूर्ति-पूजकों के अनुष्ठानों को ईसाईपर्व मनाने का साधन बनाओ।

कोई बुराई एक दम दूर नहीं हो जाया करती। किसी बुरे व्यक्ति का सुधार एक दिन में कर देना कठिन होता है। जो मनुष्य पर्वत की चोटी पर पहुँचना चाहता है, उसे पग-पग कर के चढ़ना चाहिए न कि छलांग मार कर। इसी प्रकार लोक-सेवक को भी सुधार-कार्य में पग-पग करके चढ़ना चाहिए, एक दम छलांग मार कर नहीं।

किसी महात्मा का उपदेश है, कि मनुष्य को सांप के सदृश चतुर और पण्डुक के सदृश सरल होना चाहिए। पर बहुत से अच्छे मनुष्य पण्डुक के समान सरल तो बन जाते हैं, किन्तु सर्प के सदृश चतुर बनना भूल जाते है। इसी से लोक-सेवक को अपने काम मे सफलता नहीं होती।

कम्यूनिस्ट लोग जब अपना जाल फैलाते है तो वे मनुष्य को एक दम सौ प्रति सैकड़ा ही कम्यूनिस्ट बनने पर बाध्य नहीं करते। वे जितनी दूरी के लिए कोई साथी मिले उतनी दूरी के लिए ही उसे साथ ले लेते हैं। हमे भी प्रचार मे सौ प्रति सैंकड़ा जात-पॉत तोड़क बनने वालों को ही लेने पर आग्रह नहीं करना चाहिए। जितने अश मे कोई जात-पॉत को तोड़ता है उतने ही अंश मे उसका सहयोग प्राप्त कर लेना चाहिये। हमे पहले चतुर और बाद को सरल होना चाहिए।

अच्छे-लोक सेवक के लिए बहुत तीव्र-बुद्धि, खूब सधा हुआ या उच्चपदस्थ होना आवश्यक नहीं। बायबिल में कहा है कि संसार की मूर्खता-पूर्ण बाते बुद्धिमानों को घबराहट में डालने के लिए परमेश्वर ने चुनी है। इसी प्रकार बलवानों को घबराने के लिए उस ने दुर्बल चीजे चुनी हैं।

परमात्मा उन छोटे छोटे लोगों पर बुद्धिमत्ता की वृष्टि करता है जो उसकी इच्छा को पूरा करना चाहते है। एक स्त्री, जनता मे प्रभु-प्रेम उत्पन्न करने के पवित्र भाव से एक स्थान से नौकरी छोड़ कर दूसरे स्थान मे चली गई, जहाॅ वह बहुत से लोगों के

बना देना चाहता है। ये लोग झूठी और अविश्वास्य बातें फैला कर भोली-भाली जनता को उल्लू बनाते हैं।

इस बुराई को कैसे रोका जाय? बुराई के विरुद्ध बुदबुदाने और भलाई के शत्रुओं के विरुद्ध अंधाधुन्ध चाबुक चलाने से कुछ नहीं बनेगा। यह तो एक प्रकार से अंधकार के विरुद्ध संग्राम करना होगा।

अंधेरे को कोसने की अपेक्षा तो एक बत्ती जला देना कहीं अच्छा होता है।

आप कहेंगे कि समस्या बहुत बड़ी है और इस को दूर करने वाले बहुत कम हैं। इतिहास बताता है, कि सदा थोड़े लोग ही बहुतों को बचाते रहे हैं। विध्वंस पर नहीं, वरन् रक्षा पर बल देने की आवश्यकता है।

इंग्लैण्ड के एक ईसाई पादरी ने अपने प्रचारकों को निर्देश किया था कि मूर्ति-पूजकों के मन्दिरों को गिराओ नहीं, वरन् उन्हीं को गिरजे बना दो। यथासंभव मूर्ति-पूजकों के अनुष्ठानों को ईसाईपर्व मनाने का साधन बनाओ।

कोई बुराई एक दम दूर नहीं हो जाया करती। किसी बुरे व्यक्ति का सुधार एक दिन में कर देना कठिन होता है। जो मनुष्य पर्वत की चोटी पर पहुँचना चाहता है, उसे पग-पग कर के चढ़ना चाहिए न कि छलाँग मार कर। इसी प्रकार लोक-सेवक को भी सुधार-कार्य में पग-पग करके चढ़ना चाहिए, एक दम छलाँग मार कर नहीं।

किसी महात्मा का उपदेश है. कि मनुष्य को सांप के सदृश चतुर और पण्डुक के सदृश सरल होना चाहिए। पर बहुत से अच्छे मनुष्य पण्डुक के समान सरल तो बन जाते हैं, किन्तु सर्प के सदृश चतुर बनना भूल जाते है। इसी से लोक-सेवक को अपने काम मे सफलता नहीं होती।

कम्यूनिस्ट लोग जब अपना जाल फैलाते है तो वे मनुष्य को एक दम सौ प्रति सैकड़ा ही कम्यूनिस्ट बनने पर बाध्य नहीं करते। वे जितनी दूरी के लिए कोई साथी मिले उतनी दूरी के लिए ही उसे साथ ले लेते है। हमे भी प्रचार मे सौ प्रति सैंकड़ा जात-पॉत तोड़क बनने वालो को ही लेने पर आग्रह नहीं करना चाहिए। जितने अश मे कोई जात-पॉत को तोड़ता है उतने ही अंश मे उसका सहयोग प्राप्त कर लेना चाहिये। हमे पहले चतुर और बाद को सरल होना चाहिए।

अच्छे-लोक सेवक के लिए बहुत तीव्र-बुद्धि, खूब सधा हुआ या उच्चपदस्थ होना आवश्यक नहीं। बायबिल मे कहा है कि संसार की मूर्खता-पूर्ण बाते बुद्धिमानों को घबराहट मे डालने के लिए परमेश्वर ने चुनी है। इसी प्रकार बलवानों को घबराने के लिए उस ने दुर्बल चीजे चुनी है।

परमात्मा उन छोटे छोटे लोगों पर बुद्धिमत्ता की वृष्टि करता है जो उसकी इच्छा को पूरा करना चाहते है। एक स्त्री, जनता मे प्रभु-प्रेम उत्पन्न करने के पवित्र भाव से एक स्थान से नौकरी छोड़ कर दूसरे स्थान मे चली गई. जहॉ वह बहुत से लोगों के

सम्पर्क मे आ सके। उसने एक छात्रावास में नौकरी कर ली। वहाँ वह बड़े प्रेम-भाव से एक-एक लड़की से मिलने लगी। वह बहुत बाते नहीं करती थी, परन्तु बहुत विश्वास के साथ लड़कियों से कहती थी, कि बहुत से लोग तुम्हे कहेंगे कि परमात्मा कोई वस्तु नहीं। परन्तु मै तुम्हे कहती हूँ कि वह है और हम पर प्रेम करता है। इस से उस ने अनेक लड़कियों को परमात्मा पर प्रेम करने वाला बना दिया।

एक कम्यूनिस्ट संस्था है। उस मे चार सहस्र लड़के चार वर्ष तक पढ़ते हैं। वहाँ आगे लिखे शब्द प्रति दिन दुहराए जाते हैं—

"जो कुछ हम तुम्हे देते हैं वह तुम्हारा नहीं। इसे तुम्हे अपने पास ही नहीं रखना चाहिए। ऐसा काम मत लो जिस मे तुम्हे दूसरे लोगों से मिलने का कम अवसर मिलता है। ऐसे काम मे ही घुसो जिस मे तुम बहुजन-समाज के सम्पर्क मे आ सकते हो।"

इसी प्रकार सच्चे लोक-सेवकों को भी कालेज मे, सरकारी नौकरी मे, ट्रेड-यूनियन मे, या किसी समाचार-पत्र मे जाना चाहिए, केवल प्रकाश को फैलाने के उद्देश्य से, जहाँ कि अंधकार है।

समूचे समाज को अपने विचारों से भर दो। हताश होने के स्थान मे हमे अनुभव करना चाहिए. कि काम करने के लिए यह बहुत ही अच्छा समय है।

बुद्ध, ईसा, नानक, कबीर, दयानन्द आदि महात्माओं ने अपने प्रचार से संसार मे प्रकाश फैलाया था। उनकी भारी

सफलता का कारण सब मनुष्यों के लिए, यहाँ तक कि अपने विरोधियों के लिए भी, अपने मे समा लेने वाला प्रेम था। अपने शत्रुओं मे भी वे भगवान की मूर्ति देखते थे। यह प्रेम की अगाध शक्ति हम मे से छोटे से छोटा भी प्राप्त कर सकता है। इसी प्रकार के उपचार और प्रेम के लिए मनुष्य-जाति तरस रही है।

सच्चे लोक-सेवक मे तप, त्याग, कष्ट एवं बेआरामी सहन करने की शक्ति होनी चाहिए। इन गुणों के बिना वह अपने पुनीत सेवा-कार्य मे सफल नहीं हो सकता। संदेह, भ्रान्ति तथा निराशा के पहाड़ उसके मार्ग मे बाधा बन कर खडे रहते है। ये बाधाएँ मानव आत्मा की परीक्षा लेती है।

इसी रीति से प्रेम से काम ले कर ही भारत पुनः जगत का पथप्रदर्शक बन सकता है। हम मे से छोटे से छोटे का प्रयास भी ऐसा फलीभूत होगा कि हमे उसकी आशा स्वप्न मे भी नहीं हो सकती।

उद्देश्य से अन्तर पड़ता है

जिन लोगों को उनके अपने आप के सिवा और किसी दूसरे में दिलचस्पी नहीं, वे धन निस्सन्देह कमा लें, पर संसार में उनका नाम नहीं रहता।

संसार मे जितने महात्मा हुए हैं उनका उद्देश्य यही रहा है कि यथा संभव अधिक से अधिक लोगों मे भगवान् की दीप्ति को फैलाया जाय, उनमें प्रेम, मैत्री, सत्य, सद्व्यवहार तथा सहानुभूति का पुनीत भाव जागृत किया जाय। वे लोगों के जीवनो मे ऐसा मधुर संगीत भर देते थे जिससे संसार मुग्ध हो कर प्रभु-भक्त बन जाता था। उनका उद्देश जन-सेवा था।

जिनके भीतर, उस काम के लिए, जो उनसे बड़ा है और जिसमें उनका कोई निजी स्वार्थ नहीं, खौलती हुई घृणा या धधकता हुआ प्रेम है, वे ही संसार को बुरा या अच्छा बना सकते हैं—संसार को बदल सकते है। बीच-बीच या मध्य मे रहने वाले लोग बहुत कम या कुछ भी नहीं कर पाते। जो लोग केवल अपने लिए जीते हैं उनके लिए भगवान् के हृदय मे भी थोड़ा अन्तर रहता है। "तुम ठण्डे बनो या गरम, कुनकुने नहीं।"

हम में से प्रत्येक मे समर्पण और त्याग का ऐसा भाव होना

चाहिए जो हमारे अपने आप से बाहर निकल कर दूसरों तक पहुँचता है।

अपना प्रचार करने के उद्देश्य से ही बहुत से कम्यूनिस्ट लोग थोड़ा-थोड़ा वेतन ले कर समाचार-पत्रों, कारखानों और दुकानों मे काम करते है। वे एक धुन के साथ काम करते है। इसी लिए उन्हे सफलता होती है। कोई काम अच्छा हो या बुरा उस मे सफलता तभी होती है जब उस के करने वालों में सच्ची धुन और त्याग होता है। असंगठित सत्य हार जाता है और संगठित झूठ जीत जाता है।

जनता के प्रति हमारे प्रेम की अकृत्रिमता तथा निष्कपटता स्कूली विवादो की तरह प्रस्ताव पास करने, महीने मे एक बार इकट्ठे हो कर संसार की अवस्थाओं के सम्बन्ध मे शिकायते करने और फिर दूसरे मास कुछ और शिकायते करने से नहीं मापी जा सकती। केवल ज़बानी जमा-खर्च "कुछ नहीं" के बराबर है।

"अपने पड़ोसी से वैसा ही प्रेम करो, जैसा तुम अपने आप से करते हो।"

यह एक सुनहला सिद्धांत है। पर इस का भाव यह है कि हम समय के व्यय तथा अपनी बे-आरामी की कुछ भी परवाह न करके अपने पड़ोसी के कल्याण के लिए भी उसी तरह काम करें जिस तरह कि हम अपने लिए करते हैं।

प्रसिद्ध ईसाई प्रचारक पाल जब एथन्स नगर में प्रचार करने

पहुँचा तब उस ने अपने साथियों के आने की प्रतीक्षा नहीं की। उस ने विश्राम नहीं किया। वह मूर्ति-पूजकों को देख कर दुःखी हुआ। वह लोगों की भीड़ में, बाजार में और व्यापारिक केन्द्रों मे गया। लोग उसे व्यर्थ हस्तक्षेप करने वाला समझते थे। वे उस की बात नहीं सुनते थे। परन्तु उसे इस प्रकार के स्वागत का अभ्यास था। उसके हृदय में प्रेम की ज्वाला धधक रही थी। इस लिए वह लोगों की घृणा, तिरस्कार तथा निरादर की कुछ भी परवाह न करता था। वह उनमें गहरा और गहरा घुसता गया, यहाँ तक कि उन्हे उसकी बातों पर ध्यान देना पडा। अन्ततः उन्हों ने उसे जनता में व्याख्यान देने के लिए निमन्त्रण दिया। उस ने जो शब्द पहले ही पहले मुँह से निकाले उनसे पाल के प्रेम करने वाले हृदय तथा विशुद्ध आत्मा का पता लगता है। उन लोगों के विश्वास उसके अपने विश्वास के विपरीत थे, तो भी उसने सिद्धान्त में उनके साथ किसी प्रकार का समझौता नहीं किया। कोई कम चतुर तथा कम दूरदर्शी मनुष्य होता तो वह उनको मूर्ति-पूजक होने के लिए फटकारता। परन्तु पाल ने वैसे नहीं किया। उसने आरम्भ मे ही उन्हे यह कह कर जीत लिया कि "हे एथन्स-वासियो, मैं जब भी तुम्हे देखता हूँ तुम्हे विवेकी सतर्क एवं धार्मिक पाता हूँ।"

मन्दिरों मे रखी हुई मूर्तियों की ओर संकेत करके उसने एक ऐसा उपयुक्त वचन कहा जो चुभता नहीं, जिसमे दुःख नहीं होता, पर जो अन्तर दिखाता है। उसने कहा—"आपने और सब

देवताओ के मन्दिर बनाए है—पर एक ऐसे विशेष देवता का मन्दिर नहीं बनाया जो आगे होने वाले सभी नये देवताओं के लिए उपयोगी होगा।"

पाल ने फिर कहा—"मैंने आप के स्मारको मे एक ऐसा मन्दिर भी देखा है जिस पर शिला-लेख है 'अज्ञात देवता के लिए।' मैं आप की भक्ति के उसी आज्ञात पदार्थ का आप पर प्रकाश प्रकट कर रहा हूँ।

"उसी देवता ने इस सारे संसार को और इसके भीतर की वस्तुओं को बनाया है। वह देव जो आकाश तथा पृथिवी का स्वामी है उन मन्दिरों मे निवास नहीं करता जिनको हमारे हाथों ने बनाया है। वही हम सब को जीवन, प्राण तथा दूसरी सब प्रकार की वस्तुएँ देता है। उसी ने संसार के सभी मनुष्यों को बनाया है।"

पाल ने एथन्स-वासियों के लिए अपने प्रेम के प्रकाश को एक वचन कह कर और भी बढ़ा लिया। वह उन बातो पर बल देता था जो एथन्स वालों की बातों से मिलती थीं। वह उन बातों पर बल नहीं देता था जिनमे उसका और उनका विश्वास-भेद था। पाल ने कहा कि वह अज्ञात देवता हम मे से किसी से भी दूर नहीं। उसी मे ही हम रहते, पलते, फिरते और जीते हैं। आपके अनेक कवियों ने भी यही बात कही है। पाल का काम था अपने को उनके अनुसार ढालना, न कि यह आशा करना कि वे उसके सदृश हो जाएँ। वह सदा बहुत यत्न नहीं करता था कि किसी प्रकार भी उनको अप्रसन्न न करे। वह यह प्रमाणित करने का यत्न

नहीं करता था कि मैं कितना सचाई पर हूँ और तुम कितने गलती पर हो। वह किसी भी प्रकार उनको मात करने या दुःखाने का यत्न नहीं करता था। इसके विपरीत, वह बहुत प्रयास करके भी उनके साथ मेल तथा अनुकूलता की कोई बात ढूँढ़ता था। वह उनके पास गया। उसने इस बात की प्रतीक्षा नहीं की कि वे कब मेरे पास आते है। जिस भी व्यक्ति मे बहुजन-समाज के लिए सच्चा प्रेम है वह ठीक यही करेगा।

उसने बहुत लोग ईसाई नहीं बनाए। परन्तु वह अपनी सफलता उन लोगों की संख्या से नहीं मापता था जो उसके साथ पूर्णतः सौ प्रति सैकड़ा सहमत हो। वह प्रत्येक व्यक्ति के निकट पहुँचना अपना कर्त्तव्य समझता था, चाहे वह उसके संदेश को सुने या न सुने। वह जानता था कि मैं ऐसे बीज वो रहा हूँ जो अंत को फूले-फलेंगे। वह बहुजन-समाज को रक्त-दान कर रहा था। इस प्रकार बहुसंख्यक लोगो के संपर्क मे आने से वह अगणित लोगों को ईसा के एक पग निकट ले आया।

सच्चा लोक-सेवक निरन्तर अनेकों के निकट पहुँचने का प्रयास करता है। वह केवल एक व्यक्ति के पास नहीं, वरन् बहुजन-समाज के पास पहुँचने का यत्न करता है। इसीलिए वह उन चार मुख्य क्षेत्रों मे प्रवेश करता है, जिनका जनता पर भारी प्रभाव है। वे क्षेत्र हैं—

१ शिक्षा २. शासन, ३. श्रम-प्रबंध और ४ समाचार-पत्र, पुस्तकें सिनेमाघर, रेडियो तथा टेलीवीयन।

वह अपने संकीर्ण संसार से बाहर निकल कर बड़े विशाल संसार में जाता है। वह विशाल जगत ऐसा है जिसे या तो वे लोग चलाते हैं जो दुष्टता फैलाते हैं या वे जो उसे सुखी देखना चाहते हैं, जो ससार में सचाई, प्रेम तथा सुख लाना चाहते हैं।

कुनकुने या मध्यमार्गी लोग, जो दूसरी दृष्टियों से भले मनुष्य हैं, अपनी उदासीनता के कारण संसार की आवश्यक समस्याओं को उपेक्षणीय धक्का देते हैं। वे अपनी आत्माओं को बचाने में इतने लीन होने का बहाना करते हैं कि वे अपने पड़ोसियों को बचाने के लिए कुछ भी न करने को न्याय-संगत प्रमाणित करते हैं। वे अपनी ही सुरक्षा के लिए सब कुछ चाहते हैं। उन को संसार के दूसरे लोगों की भूख-प्यास की कोई चिंता नहीं।

अच्छा घर, अच्छा खाना, अच्छा कपड़ा और दूसरे भौतिक लाभों में प्रत्येक व्यक्ति को युक्ति-संगत दिलचस्पी होना स्वाभाविक है। परन्तु लोग अपनी इस वासना को इतना बढ़ा लेते हैं कि वे कदाचित् ही अपने से बाहिर किसी बात की चिंता करते हैं।

वे जनता के लिए ऐश्वर्य तथा विलास की सामग्री जुटाना तो दूर वे उस के जीवन की कम-से-कम आवश्यकताएँ पूरा करने के लिए भी, जो परमेश्वर ने प्रत्येक मनुष्य का अधिकार मानी हैं, उन को दिलाने के लिए भी आगे नहीं आते हैं।

रक्षा पर बहुत अधिक बल

माता-पिता, अध्यापक और निर्देशक नवयुवकों की रक्षा के

लिए आत्म-रक्षा, आत्म-पवित्रता, आत्म-विकास तथा आत्मानन्द पर अमर्यादित बल दिया करते है। वे भूल जाते हैं कि वे इस प्रकार नवयुवकों के पंख काट कर उन के पूर्ण विकास को रोक रहे है। वे उन को जंगलो में बन्द कर देते है। वे उनको उस अधिक तथा आनन्द-दायक जीवन से वंचित कर देते हैं जो परमेश्वर चाहता है कि वे प्राप्त करे। अनेक अवस्थाओं मे इसका परिणाम, नीरसता, ऊबना, निराशा वरन् विध्वंस होता है। अपने आप की ही चिन्ता में लीन रहने का यह अवश्यम्भावी फल है। वे उन योग्यताओं तथा क्षमताओं को दफना देते है जो भगवान् ने उन्हे प्रदान की हैं। वे जीते है और मर जाते है। मरते समय भी वे कचित् ही अनुभव करते है कि परमेश्वर तथा अपने आप से ही प्रेम करना पर्याप्त नहीं, वरन् दूसरे सभी लोगो पर भी प्रेम करना आवश्यक है। इस संबंध में जर्मनी की दु:खांत तथा विध्वंसकारी कथा ऑखे खोल देने वाली है। नाज़ियो ने सत्तारूढ़ होने के उपरान्त दूसरो के हितो की चिन्ता करना छोड़ कर केवल अपने ही हितों की चिन्ता करना आरम्भ कर दिया। यदि अच्छे जर्मन दूसरो के हितो की भी उतनी ही चिंता करते जितनी कि वे अपने हितों की करते थे, तो हिटलर कभी राजसत्ता को हथिया न सकता। परन्तु जर्मनी मे बहुत थोड़े ऐसे अच्छे मनुष्य थे जो शिक्षा का काम ले कर अपने को बेआराम करना चाहते थे। कारण यह कि अध्यापक के काम मे बहुत कमाई न थी। अध्यापक को काम बहुत करना पडता था, पर लोभजनक सौदर्य कम था। वे गवर्नमेण्ट मे नहीं जाना

चाहते थे, क्योंकि वहाँ वेतन बहुत कम थे। सहस्रो अप्रसिद्ध पदो का अनिश्चित कार्यक्रम नीरस तथा अरुचिकर था। शेष सभी प्राणभूत क्षेत्रो के प्रति भी, जिन का प्रत्येक व्यक्ति के जीवन के साथ सबध था, उन के देश मे लोगो का वैसा ही मनोभाव था। सांसारिक दृष्टि से ऐसे काम कमाई के न थे।

दूसरी ओर, सभी जर्मन अच्छी शिक्षा, अच्छा शासन, श्रमजीवियो तथा मिल-मालिको के बीच अच्छे संबंध, अपने समाचार-पत्रो मे स्वास्थ्यकर लेख, पुस्तको, पत्रिकाओं और चल-चित्रो मे अच्छी चीजे चाहते थे। परन्तु जैसे कहावत है 'सब कोई खाना चाहता है, पकाना कोई नहीं चाहता', वे अपने को कष्ट देने को तैयार न हुए। ज्यो-ज्यो उन की उदासीनता जारी रही, त्यों-त्यो उन ा विषाक्त संक्रामक पदार्थ भी फैलता रहा। डिक्टेटरशिप या सर्वशक्ति सम्पन्न अधिनायक तंत्र के लिए रास्ता बनता गया। घृणा के प्रचारक भेड़ के वेश मे भेड़िए बन कर काम करते रहे। सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओं मे उन के स्वार्थों को दरिद्र एवं हताश लोग न भॉप सके कि यह नितान्त दम्भ है। वे अच्छे घरों, अधिक भोजन, सुन्दर स्कूल, बडे-बड़े वेतन और सुधरी हुई काम करने की दशाओ के प्रलोभन तथा हरे बाग हिटलर का नाम ले कर दिखलाते थे। फिर औसत मनुष्यों को मूर्ख बनाया गया। वे समझे कि ये नाज़ी अवश्य अच्छे मनुष्य होगे। वे इतने अधिक वचन देते थे कि भोली-भाली जनता न देख सकी कि यह तो मछली को पकड़ने के लिए चारा

है। इस के पीछे दासता का काँटा छिपा है। टोटलटेरियन या अधिनायक तंत्रवादी लोगों का विचार अपने वचनों को पूरा करने का बिलकुल नहीं था। यह अपने आप को धोखा देने का एक शिक्षादायक उदाहरण है।

सर्वशक्ति सम्पन्न अधिनायक तंत्रवादियों की सफलता का कारण यह था कि वे लोग जनता मे गये और उन्हों ने उन मे प्रचार किया। इस के विपरीत, दूसरे अच्छे जर्मन घर बैठे केवल बुदबुदाते ही रहे। यदि अच्छे मनुष्यों का प्रति सैंकड़ा थोड़ी सी संख्या में भी अपने जीवन के संकीर्ण क्षेत्र को छोड़ने की इच्छा तथा साहस होता और जो लोग भूल कर रहे थे और अंधकार मे थे उन के हाथ में सारा क्षेत्र छोड़ने के स्थानमे वे सत्य और पुण्य का प्रकाश फैलाने का कष्ट करते तो इतिहास की सारी गति ही बदल जाती।

बुराइयों को दूर करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति में प्रेम को पूर्ण-रूप से विकसित करना चाहिए। यह प्रेम केवल अपने आप और परमेश्वर के प्रति ही नहीं, वरन् दूसरों के प्रति भी होना चाहिए। प्रेम का कार्य पहले घर से ही आरम्भ करना चाहिए। इससे नवयुवकों में अपराध-वृत्ति, पति-पत्नी की खटपट तथा मानसिक दुर्बलता प्रभृति दोप बहुत कुछ दब जाएँगे।

एक दूसरे के प्रति जनता में प्रेम-भाव घट रहा है। परिवारों में प्रत्येक व्यक्ति अपने लिए ही है। परायापन का भाव बढ़ रहा है। इसके परिणाम बड़े घातक हो रहे हैं। इससे ससार में

पागलपन तथा मानसिक चिंता बढ़ रही है। समाचारपत्र पढ़िए, आपको नित्य मोटे अक्षरों मे लिखा मिलेगा भूख से तंग आकर एक मनुष्य ने अपने बाल-बच्चों की हत्या कर डाली। हताश प्रेमी ने नदी मे छलांग मार दी। माता ने बच्चे का गला घोट कर आप फाँसी लगाली।

यदि ऐसे लोगों को समझाया जाय और वे अपनी ही चिंताओ मे लीन रहने के स्थान मे दूसरों के हित मे दिलचस्पी लेने लगे तो ऐसे लोगो को मरने से बचाया जा सकता है। वे अपनी चिंताओं मे डूबे रहने के स्थान में दूसरों की भलाई के लिए काम करने लगेंगे।

सच्चे प्रेम की कोई सीमा नहीं

सच्चा प्रेम सर्वत्र फैलता है। सच्चा लोक-सेवक सब किसी पर प्रेम करता है। उसकी विद्यमानता के प्रताप से संसार पहले से अच्छा हो जाता है। दूसरों पर सच्चा प्रेम करने से हमे इस बात का सदा स्मरण होता रहता है कि हम उस मौलिक पुण्य के लिए काम कर रहे है जो स्रष्टा ने प्रत्येक मानव प्राणी के हृदय तथा आत्मा मे गहरा गाड़ रखा है। संसार मे बड़े से बड़ा घृणित मनुष्य भी चाहता है कि कोई उससे प्यार करे। बुरे से बुरा अपराधी भी बहुधा एक सम्भ्रांत नागरिक दिखाई देने के लिए भरसक यत्न करता है। वह इस बात पर भी आग्रह करता है कि

दूसरे लोग उसके साथ ईमानदारी का व्यवहार करें। दुराचारी से दुराचारी पुरुष भी अपनी स्त्री और बच्चों की प्रतिष्ठा की बड़ी सतर्कता से रक्षा करता है।

अपने मानव बंधुओं में से उस शिष्टता तथा शालीनता को जो मनुष्य का पशु से भेद करती है कोई दुष्ट उखाड़ फेंकने का कितना ही यत्न क्यों न करे उसमें उसे पूर्ण सफलता कभी न होगी। शिष्टता तथा शालीनता का कुछ न कुछ अंश अवश्य बचा रह जाता है। उस बचे हुए अंश को विकसित किया जा सकता है। बुरे से बुरे मनुष्य के सुधरने की भी आशा सदा रहती है। इसलिए किसी भी व्यक्ति को दु:साध्य रूप से बुरा समझ कर छोड़ नहीं देना चाहिए। प्रेम-मंत्र से बुरे से बुरे मनुष्य का भी सुधार करने का यत्न करना चाहिए।

अपने जीवन को सफल बनाने के लिए केवल इस बात की आवश्यकता है कि हम अपने आस पास के भौतिक जगत् के साथ अपने संबंध के आत्म-परीक्षण का छोटा सा प्रयोग करके देखें। ऐसा करने पर हमें पता लगेगा कि परमेश्वर का हाथ सारी मानव-जाति को प्रेममय चिंता के झूले में झूला रहा है। मनुष्य के विकास में प्रेम बड़ी शक्ति रही है। एक दिन लोगों को ज्ञान हो जायगा कि भौतिक पदार्थ सुख का कारण नहीं और वे स्त्रियों तथा पुरुषों को सृजनात्मक तथा शक्तिशाली बनाने में बहुत कम काम देते हैं। जो मनुष्य लोगों से प्रेम करता है वह तीन रीतियों से करता है—

१. वह उनके कल्याण के लिए भगवान् से प्रार्थना या मंगल कामना करता है।

२—वह उनके पास जाता है।

३—वह उनको उपदेश करता है।

सब के लिए मंगल-कामना या प्रार्थना करने से सब के लिए प्रेम बढ़ता है। ऐसे लोगों के लिए मंगल-कामना करो जिनके लिए बहुत कम लोग करते है या कोई भी नहीं करता। घबराए हुए लोगों के लिए और बुड्ढो तथा घृणा-जनक व्यक्तियो के लिए भी कल्याण-कामना कीजिए। बस मे, रेल मे तथा मेले मे, आप जहां भी जायें, वहां सब के कल्याण के लिए प्रार्थना कीजिए, समाचार-पत्र मे किसी की मृत्यु का समाचार पढ़कर उसकी आत्मा की सद्गति के लिए प्रार्थना कीजिए। इससे प्रेतात्मा को चाहे कुछ लाभ पहुंचे या न पहुंचे पर आप की आत्मा को अवश्य लाभ होगा। उसमे समवेदना तथा मानव-प्रेम का पुनीत भाव जागृत होगा। हम अपनों के लिए तो मंगल कामना करते हैं, पर परायों के लिए नहीं। यह बुरा है।

आप उन लाखो करोड़ों लोगों के मंगल के लिए प्रार्थना कर सकते हैं जो भूखों मर रहे है और जिनको अपने ईश्वर-प्रदत्त अधिकारों तथा स्वतंत्रता का उपभोग करना नहीं मिलता।

प्रति दिन अपनी सरकार के लिए प्रार्थना कीजिए। यह एक सन्मार्ग पर पग होगा। हम आप जब प्रार्थना करेंगे कि अपना कर्तव्य-पालन करने मे परमेश्वर हमारे प्रधानमन्त्री का पथ प्रदर्शन

करे, बुद्धिमत्ता तथा निर्भीकता पूर्वक अपना कर्तव्य पालन करने में उन्हें समर्थ बनाए, तो इससे आप दूसरी रचनात्मक बातों में दिलचस्पी लेने लगेंगे। आप इच्छा करने लगेंगे कि आप को यथासम्भव सर्वोत्तम सरकार मिले। आप अपने देश को तथा संसार को बचाने में तत्परता-पूर्वक भाग लेने लगेंगे, जिस प्रकार कि दूसरे कई इसे नष्ट करने के लिए भाग ले रहे हैं। आप चाहे अपने को कितना ही दुर्बल क्यों न समझ रहे हो, आप इस रीति से एक अव्यर्थ कार्य कर सकते हैं।

बुद्ध, शंकर, दयानन्द तथा नानक प्रभृति महात्मा किसी गुफा मे बैठ कर ही जनता की बुराइयों पर बुदबुदाया नहीं करते थे। वे स्वयं जनता के पास जा कर उनको अपना संदेश सुनाते थे। कारण यह कि वे जनता से घृणा नहीं, वरन् उस पर प्रेम करते थे और उससे मिलना अपना कर्तव्य समझते थे। महात्मा ईसा के चरण-चिह्नों पर चलते हुए प्राचीन काल के ईसाई प्रचारक गुलामों के रूप में रसोई-घरों मे, सेना मे, खेतों मे, दुकानों मे, सब कहीं और सब प्रकार की स्थितियों मे जाते थे। वे आसानी से कह सकते थे कि यहाँ के लोग हमे नहीं चाहते, या यह बहुत ही कठिन काम है, या इसके लिए मुझे अधिक वेतन मिलना चाहिए। पर उन्हो ने इसके बिलकुल विपरीत किया। वे कठिन मे कठिन दशाओं का सामना करते हुए भी जाते रहे। उन्हो ने इसके लिए सब प्रकार के कष्ट सहे। अन्त मे उन्हो ने उनको जीत लिया, जो उनका रक्त बहा रहे थे।

इसी प्रकार बौद्ध-धर्म के प्रचारक साठ-साठ सत्तर-सत्तर वर्ष की अवस्था में बीहड़ वनों और दुर्गम पर्वत-मालाओं को पार कर मध्य एशिया, चीन, कोरिया और सायबेरिया प्रभृति दूर देशों में प्रचारार्थ पहुँचे थे। उन्हों ने घर बैठे-बैठे ही संसार के एक तिहाई भाग को बौद्ध नहीं बना दिया था।

आज पर्यटन तथा प्रचार में पहले की ऐसी कठिनाइयाँ नहीं। जब बहुत से लोग ऐसे ही प्रचारक बन कर निकलेंगे, तभी संसार का आमूल रूपान्तर हो सकेगा।

एक मनुष्य पक्षाघात से पीड़ित है। फिर भी वह प्रति दिन एक दो जनों को जात-पाँत के विरुद्ध प्रचार सुना छोड़ता है।

इसी प्रकार एक खौंचे वाले को लोक सेवा में रुचि है। वह दो चार मनुष्यों से प्रति दिन ग्राम-सुधार पर बात-चीत करता है और बाद को पढ़ने के लिए उन्हें साहित्य दे देता है।

होशियारपुर ज़िले के अन्तर्गत बजवाड़ा नामक स्थान के रहने वाले श्री गंगाराम नाम के एक व्यक्ति मुज़फ्फ़र गढ़ ज़िले में सब ओवरसियर थे। वे बड़े ईमानदार, निरभिमान, सरल तथा मिलनसार थे। सरकारी काम के बाद उन्हें जो समय मिलता उसमें वे दीन-दुखियों, व्यापारियों, सरकारी नौकरों और किसानों

के पास जाते। उन से घुलमिल कर बातें करते। उनके दुःख में दुःखी होते और सुख में सुखी होते। वे बातों-बातों में उनको आर्य समाज का उपदेश सुनाते। उनके इस निःस्वार्थ तथा प्रेमपूर्ण सेवा-भाव से सारे का सारा ज़िला आर्यसमाजी हो गया था। वहाँ गाँव-गाँव में आर्यसमाज स्थापित हो गये थे। मुज़फ्फरगढ़ का बच्चा-बच्चा आज भी उनको भक्ति-भाव से याद करता है।

चीन में लोग कोढ़ियों से बहुत घृणा करते हैं। किसी व्यक्ति को कोढ़ हो जाने पर उसे लोग पीट-पीट कर घर से बाहिर निकाल देते हैं। एक समय की बात है, वहाँ लोग एक कोढ़ी लड़की को बहुत बुरी तरह से मार रहे थे। वह बेचारी असहाय चिल्ला रही थी। एक ईसाई प्रचारक ने इस दृश्य को देखा। वह लोगों की भीड़ में से निकल उस लड़की के ऊपर जाकर लेट गया। वह लोगों से बोला—'इस लड़की को न पीटो, इस के स्थान में मुझे पीट लो।

यह देख, लोगों को बड़ा विस्मय हुआ। वह लड़की उस प्रचारक से बोली—"हे पुण्यात्मा! आप मेरे लिए इतना कष्ट क्यों उठा रहे हैं? मरने के लिए मुझे अकेली छोड़ दीजिए।"

ईसाई प्रचारक बोला—"तुम भी उसी पिता की पुत्री हो, जिस का कि मैं पुत्र हूँ। इस लिए तुम मेरी बहन हो। बहन की रक्षा करना मेरा कर्त्तव्य है।"

प्रचारक के इन शब्दों का लड़की पर बड़ा प्रभाव हुआ। वह ईसाई बन गई और प्रचारक की सहायता से दूसरे कोढ़ियों की सेवा में लग गई। सच्चे प्रेम का ऐसा ही चमत्कार है!

जो मनुष्य अपने दूसरे मनुष्य-बन्धुओ को भी परमात्मा का अमृत पुत्र समझता है, और इस कारण उनकी सहायता करने का प्रयास करता है, वह अपने को उन लोगो मे पायगा जिनके लिए ईसा ने कहा था—"हे मेरे पिता का आशीर्वाद पाने वालो, आओ उस साम्राज्य पर अधिकार कर लो जो सृष्टि के आदि से तुम्हारे लिए तैयार किया गया है।" परन्तु जो व्यक्ति केवल अपने लिए ही जीता है वह इसके बिलकुल उलट सुनेगा—"हे शोषित अभागो! मुझ से परे हट जाओ। तुम उस नरक की भट्टी मे जलोगे जो पिशाचों और देवदूतो ने तैयार की है। कारण यह कि मैं भूखा था. तुमने मुझे खाने को नहीं दिया। मैं प्यासा था, तुमने मुझे पानी नहीं पिलाया। मै अतिथि था, तुमने मुझे घर मे स्थान नहीं दिया। मैं नगा था. तुमने मुझे ढका नही। मैं रोगी तथा बंदी था, और तुम मुझे देखने नहीं आए।"

इसके प्रतिवाद मे वे ईसा से कहेगे कि "यदि हम आप को भूखा, प्यासा, नंगा, रोगी या वंदी देखते तो अवश्य आप की सहायता करते।"

उनके लिये ईसा का उत्तर इतने उच्च स्तर का होगा कि जो प्रत्येक मानव-प्राणी को प्रतिष्ठित वना देता है।

वह कहेगा—"जव तक तुम इन लोगों मे से छोटे से छोटे के साथ भी वैसा व्यवहार नहीं करते, तव तक तुम मेरे साथ भी नहीं कर सकते।"

जो लोग अपने ही स्वार्थो की सिद्धि मे निमग्न रहते है वे

अपने मरने के बहुत समय पहले से ही उस अपराध के लिये तावान अदा करने लगते है। उनको कभी पूर्ण शांति नहीं मिलती। उनके पास ससार की धन-संपदा चाहे कितनी भी क्यो न हो, वे सदा अशांत एवं असंतुष्ट रहते है। वे उस इन्द्रधनुष को पकड़ नहीं पाते जिसके पीछे वे भाग रहे है। उनके जीवनो मे उनके अपने आप से बाहर किसी उद्देश्य का न रहना उन सब सद्गुणों को भी दबा देता है जो उनमें होते है। उनके मुख-मण्डलों तथा नेत्रों में कोई कांति नहीं होती। ऐसा दीखने लगता है मानो उनके भीतर कोई वस्तु मर गई है।

इसके विपरीत, जिनके जीवन मे दूसरों की सेवा का पवित्र भाव काम करता है, वे 'सच जानिए, पृथ्वी पर ही स्वर्ग मे रहने लगते है। उन्हे कोई भी वस्तु भयभीत नहीं कर सकती। उनके हृदय में एक ऐसा उल्लास विकसित हो जाता है जो अतीव कठिन अवस्थाओं मे भी उनको डगमगाने नहीं देता। उनकी मानसिक दशा सदा नवयुवकों की ऐसी बनी रहती है। उनका साहस कभी बूढ़ा नहीं होता। वे शीघ्र ही अनुभव कर लेते है कि दूसरों के प्रति सच्चा प्रेम ही सच्ची उदारता है। ईसाई साधु पाल ने कहा था—"दानी और उदार व्यक्ति का लक्षण धैर्य तथा दयालुता है।" उदार व्यक्ति ईर्षा नहीं करता, दुष्टता का व्यवहार नहीं करता और अभिमान से फूल नहीं जाता। वह महत्त्वाकांक्षी नहीं होता। वह केवल अपनी ही स्वार्थ सिद्धि के लिए काम नहीं करता। वह चिढ़ कर कोपायमान नहीं हो जाता। वह कोई बुरी बात नहीं

सोचता। वह दुष्टता मे आनन्द नहीं लेता। वह सचाई मे आनंद लेता है और फूलता है। वह सब बाते सहन कर लेता है। वह सब पर विश्वास करता है। वह सब वस्तुओं की आशा करता है। ज्यो-ज्यो दूसरो के प्रति आपका यह प्रेम बढ़ेगा आप अपने दिङ्मण्डल को फैलता हुआ और अपनी शक्ति को दिगन्त व्यापिनी पाएँगे। जब आप अपने पर कम और दूसरे पर अधिक गम्भीरता-पूर्वक विचार करने लगेगे, तो आप अरुचिकर हुए बिना ही मत-भेद रखना सीख जाएँगे। लोगों के लिए आपके पास पहुँचना अधिक सुगम हो जाएगा। लोग आपसे अधिक मिल सकेगे। आप उत्तम रीति से समझ जाएँगे कि क्यों सब कोई चाहता है कि उस पर सच्चा प्रेम हो, न कि उसे केवल सहन किया जाय।

यदि आप बुरे से बुरे मनुष्य के भी अच्छे अंश पर बल देगे तो इसका परिणाम यह होगा कि आप अनुभव करेगे कि आपका अभिप्राय बहुत दूर तक पहुँचता है।

"अपने शत्रुओ से प्रेम कीजिए" का अर्थ है, उनसे भलाई कीजिए जो आपसे घृणा करते है और उनके लिए कल्याण की कामना कीजिए जो आपको दु:ख देते है, जो आप पर अत्याचार करते हैं और आपकी निंदा करते हैं।

कुछ लोग इसलिए घृणा करते है कि उनमे प्रेम के बहुमूल्य गुण का अभाव रहता है। उनके उस अभाव को, उनकी उस शून्यता को आप अपने प्रेम से भर कर भारी सेवा कर सकते है।

यह प्रेममय उद्देश्य, यह पवित्र भाव आपको सच्चा लोक-सेवक बना देगा। जो पवित्र उद्देश्य आपके अंतर में उमड़ रहा है उसके प्रति सचाई एक ऐसी चालक शक्ति बन जाएगी जो सब विघ्न-बाधाओं में से आपको धैर्य तथा दयालुता के साथ पार निकाल ले जाएगी। आप मे वह आग अधिकाधिक भड़क उठेगी जो गरमी पहुँचाती है, परन्तु जलाती नहीं। जो भी बात आप कहेंगे, जो भी काम आप करेंगे, उससे वह भक्ति, श्रद्धा और चैन उत्साह प्रतिफलित होगा जो उन लोगों के भाग्य मे कचित् ही मिलता है जिनका एक मात्र उद्देश्य अपनी ही स्वार्थ-सिद्धि रहता है। इससे आप मे एक बडा रूपान्तर हो जाएगा और बहुधा आश्चर्य-जनक शीघ्रता के साथ होगा। आपकी उदासीनता, अपने आप पर आसक्ति और संकीर्ण एकांतता आप मे से निकल जाएगी। उनका स्थान सब लोगो की भलाई के लिए उत्तेजक, प्राणदायक दिल-चस्पी तथा चिंता ले लेगी। आप अपने आप तक सीमित, छोटे से संकीर्ण क्षेत्र मे बाहर निकल आएँगे। आप एक ऐसे लोक-सेवक बन जायेंगे जो जीवन की प्रधान धारा मे पॉव रखेगा और शिष्ट समाज मे प्रवेश करेगा। ईश्वर की कृपा से आप सदा प्रसन्न रहेंगे कि संसार पहले की अपेक्षा अब कुछ अच्छा है, क्योंकि आप उसमे वर्तमान है। यह बात आपको सदा प्रसन्न बनाए रखेगी।

आप व्यक्तिगत सुविधा पर विचार करने के स्थान मे कोई काम करने के पूर्व दूसरों के लिए प्रत्येक बात और सब जीवो पर

प्रेम करने मे लीन हो जाएँगे। जहाँ पहले थोड़ा-सा बहाना भी आप को निरुत्साह तथा पथ-भ्रष्ट कर देता था वहाँ अब कोई भी शक्ति आप को आप के किसी काम को पूरा करने के संकल्प से डरा कर न हटा सकेगी। आप मे हँसोड़पन, दिल्लगी एवं रसिकता का भाव विकसित हो जायगा। अत्यन्त से अत्यन्त कष्टदायक अवस्थाओ मे भी आप ऐसा काम करते रहेंगे जिस से सर्वभूतो की चिंता प्रतिफलित होगी। आप से स्वभावतः भूले होंगी। परन्तु उचित तथा अनुचित का ज्ञान पर्याप्त बढ़ जायगा। इस से आप अपने आप पर हँसेंगे। जिस मनुष्य का दिल बुझा है. जिस का उत्साह मर चुका है, वह कभी दूसरे मे उत्साह नहीं भर सकता। आप सदा आशावान् रहेंगे। इस लिए आप बहुधा उन लोगों के जीवनों मे नया प्रकाश तथा नवीन आशा भर देंगे जिन के पास उन के अपने आप से परे कोई उद्देश्य ही नहीं और जिन के पास परिणामतः, अपने लिए और न दूसरों के लिए, कोई चमक या चिङ्गारी हो है।

आप मे कितनी ही त्रुटियां क्यों न हों, आपका पवित्र उद्देश्य और आप का अगाध तथा संतोषकारी विश्वास कि आप भगवत्कृपा से मनुष्यों को भगवान् के निकट लाने मे साधन बन सकते है आप मे एक सदा बढ़ता रहने वाला साहस उत्पन्न कर देगा। वह आप को निरन्तर नई तथा बडी ऊँचाइयों पर ले जायगा। यह स्वस्थ तथा दिव्य सन्तोष आप के भीतर एक वृद्धि-शील चिन्तन-पटुता तथा स्फूर्ति उपन्न कर देगा। इस से आप में

पर्यवेक्षण की ऐसी तीव्रता, ऐसी सूझ और ऐसी कार्य-क्षमता प्रकट हो जायगी जो सुप्त या अविकसित ही पड़ी रह जाती यदि अधिक बड़ा उद्देश्य आप को इस सारी निरुत्साहित करने वाली लघुता और अपने आप पर ही मन को लगाए रखने की यंत्रणा से छुटकारा न दिला देता। जीने का सच्चा आनन्द जितना आप अनुभव करेंगे उतना कोई दूसरा न करेगा। जीवन का अर्थ ही आप के लिए बदल जाएगा। वह सजीव तथा उल्लसित करने वाला हो जायगा। आप को यह अनुभव कर के हर्ष तथा रोमांच होगा कि आप चाहे कितनी ही कम मात्रा में क्यों न हो रचना-कार्य कर रहे हैं विनाश-कार्य नहीं, प्रेम फैला रहे हैं घृणा नहीं, प्रकाश फैला रहे हैं अंधकार नहीं। जिस मतलब—परमात्मा तथा उस की सृष्टि से प्रेम—के लिए विधाता ने आप का सृजन किया है आप उसे पूरा कर रहे है।

शिक्षा

आज धन ही सब कुछ बना हुआ है। सभी लोग लक्ष्मी के पुजारी बनना चाहते है। स्कूलों और कालजों मे पढ़ने वाले छात्रो से पूछिए कि तुम किस लिए पढ़ रहे हो, तो १०० में से ९५ छात्र यही उत्तर देंगे कि धन कमाने के लिए। धन बुरी वस्तु नहीं। परन्तु धन का लोभ बहुत अधिक बढ़ कर जब पुण्य और पाप के विवेक को नष्ट कर देता है तो मनुष्य को घोर दुःख का मुंह देखना पड़ता है। इस मे संदेह नहीं कि स्वाभाविक जीवन बिताने के लिए धन का प्रयोजन है। परन्तु हमारे अस्तित्व का सब कुछ रुपया ही नहीं। धन तथा संसार की दूसरी सपदा पर अमर्यादित रूप से बल देने से जाति तथा व्यक्ति दोनों पतित हो जाते है। इस लिए शिक्षा का उद्देश्य केवल धन कमाना समझना बहुत भयावह है।

इस धन-लोलुपता के बढ़ जाने से देश मे नैतिक पतन के साथ-साथ डिक्टेटर शिप या अधिनायक तंत्र का भी आविर्भाव हो जाता है। जर्मनी मे इसी वृत्ति ने हिटलर के लिए मार्ग उन्मुक्त किया था। इसी जड़वाद को प्राप्त करने के लिए कार्लमार्क्स के अनुयायी प्रत्येक देश मे जहाँ उन का विष पहुँच सकता है, कार्य करते हैं। यह प्रक्रिया केवल एक ही स्थिर उद्देश्य रखती है और वह यह कि नवयुवकों को इस विचार का बनाना कि वे

पशु है, पशु से बढ़ कर वे कुछ नहीं। हिटलर ने अपनी पुस्तक "मेरा संघर्ष" मे लिखा है—

"युवक और युवतियों को देखो, मनुष्य जाति पहले जंगली पशुओं की तरह हिंसक थी। उसे पालतू बनाने मे सहस्रों वर्ष लगे हैं। इस पालतूपन को मुझे जड़ से उखाड़ डालना होगा। मैं जिस वस्तु को प्राप्त करना चाहता हूँ वह है निर्दय, हिंसक युवक। मैं एक बार इस युवक की आँखो मे शिकारी जन्तु की आँखों की चमक देखना चाहता हूँ। ऐसे युवकों के साथ मैं एक नया संसार और एक नई व्यवस्था तैयार कर सकता हूँ।"

हिटलर चाहता था कि मनुष्य मे जो परमात्मा का अमृत पुत्र होने का भाव तथा देवत्व का जो अंश है उसे उस मे से बिल्कुल निकाल दिया जाय। आध्यात्मिक मूल्यों के स्थान मे वह भौतिक मूल्य रखना चाहता था। ईश्वर तथा पड़ोसी से प्रेम के स्थान मे वह घृणा का उपदेश देता था।

यदि नैतिकता को नष्ट कर दिया जाय तो पाशविक बल के सिवा और कोई नियम या कानून नहीं हो सकता।

शिक्षा का उद्देश्य क्या है ?

शिक्षा विश्व के प्राकृतिक नियम या ईश्वरीय नियम पर आधारित होनी चाहिए। हमें नवयुवकों के मन पर यह बात अंकित कर देनी चाहिए कि उस नियम को भङ्ग करने से ऐसे भयानक परिणाम हो सकते हैं, जो मानवी दण्ड से बिल्कुल अलग है।

शिक्षा के लिए परम आवश्यक है कि वह मानवी इच्छा तथा मानवी बुद्धि को ट्रेण्ड करे अर्थात् सधाए और स्वतन्त्र मनुष्य उत्पन्न करे। लोक-तन्त्र की स्थिरता के लिए ऐसा होना आवश्यक है। अच्छी शिक्षा अतीव विश्वास जनक रूप से दिखलाए और सिखलाए कि मनुष्य केवल रोटी से ही नही जी सकता।

यदि मनुष्य सारे संसार को प्राप्त करले, पर उस की अपनी आत्मा उस से छिन जाय, तो इस से उसे क्या लाभ होगा ?

कर्म का नियम अटल है। कर्म करके कोई व्यक्ति उस के फल से बच नहीं सकता। हिन्दुओं ने करोड़ों मनुष्यों को जो शूद्र तथा अछूत बना दिया था उस का दण्ड-स्वरूप उन्हे सहस्रों वर्ष की दासता भोगनी पड़ी और देश का विभाजन अनिवार्य होगया। इसी प्रकार हिटलर ने जो घृणा का प्रचार किया उस का भयंकर दण्ड जर्मन जाति के विनाश के रूप मे हमारे सामने है। प्रकृति मे भूल या पक्षपात नहीं। निसर्ग की ओर से जो कुछ होता है, आप सोच कर देखेंगे तो पता लगेगा, वह ठीक ही होता है। शिक्षा को एक मौलिक सत्य पर अवश्य बल देना चाहिए। उस अकेले सत्य से ही हमारा सामाजिक जीवन सम्भव होता है। मनुष्य को उस के जीवन के चरम उद्देश के लिए ही उसे सुशिक्षित बनाना चाहिए। वह प्राणि-मात्र पर प्रेम, संसार को सुखी बनाने की इच्छा तथा मृत्यु के बाद अपने पुण्य कर्मों के फल-स्वरूप अच्छा जन्म पाने का प्रयास करे। शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिस से मनुष्य की स्वतन्त्रता की रक्षा हो ताकि मनुष्य उन अधिकारों का

उपभोग कर सके जो उसे ईश्वर की ओर से मिले है। यदि शिक्षा ऐसी नही होगी तो वह अत्याचार के सामने झुक जाएगी।

कहते हैं जब जर्मनी मे हिटलर ने नाजीवाद का प्रचार आरम्भ किया तो जनता ने उसे बुरा माना। पर उस का विरोध करने का साहस किसी को न हुआ। समाचार-पत्र और विश्व-विद्यालय ने हिटलर के सामने घुटने टेक दिये। एक चर्च अर्थात् धर्म-संघ ही ऐसा निकला जिसे उस के विरोध का साहस हुआ।

बुद्धि के साथ साथ आत्मा की भी शिक्षा होनी चाहिए।

बालकों को पढ़ाने वाला अध्यापक शाला में उन बड़े मार्गों मे से एक है जिन के द्वारा सभ्यता का दाय अर्थात परम्परागत रीति-रिवाज तथा ज्ञान-राशि नवयुवकों तक पहुँचती है। इन नवयुवकों के स्वभाव, विचार तथा जीवन-प्रणाली हमारा राष्ट्रीय तथा विश्व के भविष्य का निश्चय करती है। रोमन विद्वान् सिसरो का कथन है कि अध्यापक बनने से बढ़ कर किसी मनुष्य के लिए दूसरा बड़ा काम कोई नहीं हो सकता। उस मनुष्य के काम से श्रेष्टतर काम या राज्य के लिए अधिक बहुमूल्य काम दूसरा कौन हो सकता है जो उठती हुई पीढ़ी को पढ़ाता है। परन्तु खेद है कि हमारे देश मे अध्यापक के काम को बहुत निकृष्ट समझा जाता है। समाज मे अध्यापक का उतना संमान भी नहीं जितना कि एक तहसील के चपड़ासी का होता है। यहाँ तो लोग पटवारी,

पुलिस और ऐसे ही दूसरे लोगों से डरते तथा उनका सम्मान करते है जो जनता को हानि पहुँचा सकते है। भलाई करने वाले अध्यापक को वे किसी गिनती मे नहीं समझते।

युग-युगान्तर मे से हो कर मनुष्य ऊपर उठा है। ऊपर उठने मे उसे दीर्घ काल लगा है और कठिनाइयाँ आई है। पग पग पर उसने ईश्वरीय योजना के अनुसार मनुष्यों के पारस्परिक संबधो के विषय मे ज्ञान संचित किया है। हमारी उस सारी बुद्धिमत्ता का सर्व योग हमारा यह आज का संसार है। अध्यापक इस संसार की रखवाली का कार्य उन लोगों के हाथ सौंपता है जिन को वह पढ़ाता है। यह बात और भी महत्त्व पूर्ण है कि जो लोग आज छात्रो के विचार तथा चिन्ता का पथ-प्रदर्शन करते हैं और जो उन को आने वाले कल के दायित्व-पूर्ण नागरिक बनाते हैं वे निर्दोष विचारों के स्त्री-पुरुष होने चाहिएँ। इस बात को कभी नहीं भूलना चाहिए कि जो बात अध्यापक के मस्तिष्क तथा हृदय मे होती है वह युवको के मन मे चली जाती है।

अध्यापक बनना जीवन में एक बड़ा मिशन रखना है।

गणित-शिक्षक जो समीकरण को हल करना या किसी कोण को दो भागों मे बाँटना सिखाता है, रसायन शास्त्र का अध्यापक जो बताता है कि पानी को फाड़ कर उसे बनाने वाले घटक—आक्सीजन तथा हाईड्रोजन—अलग किए जा सकते हैं, गृह-विज्ञान की अध्यापिका जो लड़की को बताती है कि घर को अधिक आकर्षक या भोजन को अधिक स्वादिष्ट कैसे बनाया जाता

है—ये सब हमारे संचित ज्ञान की विशेष शाखाओं को अगली पीढ़ी तक पहुँचाते या प्रेषित करते है। ये सब और ऐसे ही दूसरे विषय या इन मे से कोई एक नैतिक तथा आध्यात्मिक चिन्तन पर प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं डालता। परन्तु अप्रत्यक्ष रूप से वे ऐसा करने का साधन बन सकते है। इन विषयो मे से किसी एक का अध्यापक बन कर सच्चा लोक सेवक एक ऐसे व्यक्ति का स्थान ले सकता है जो बच्चो के विचारों को बिगाड़ता और जात पांत का विष फैलाता है। यह बात बड़ी महत्त्वपूर्ण है।

अध्यापक को केवल पाठ पढ़ाते समय ही अपने विचार छात्रो के मन पर अंकित करने को अवसर नहीं मिलता। छात्रों की वाग्वर्धिनी सभाओं, माता-पिता और अध्यापकों के सम्मेलन मे, खेल-कूद मे सब कहीं वह जाति-भेद, नास्तिकता, स्वार्थपरता और आत्म-पोषण आदि बुराइयों के विरुद्ध प्रचार कर सकता है। हमारे स्कूलों मे ऐसे निकम्मे अध्यापक भी मिलते है जो केवल पैसा कमाने के लिए ही इस व्यवसाय मे आए है, जो क्लास रूम मे जात-पॉत और छूत-छात का कर्म द्वारा प्रचार करते है, और जिन का दृष्टिकोण बहुत संकुचित है। यदि इन का स्थान कोई सच्चा त्यागी और उदार-दृष्टि वाला लोक-सेवक ले ले तो वहॉ वह बड़ी भारी लोक-सेवा कर सकता है।

शुद्ध बौद्धिक पाठ के साथ साथ कक्षा के कमरे मे कई अवसर ऐसे भी आ जाते है जब अध्यापक बच्चो को नैतिक उपदेशों के अनुसार जीवन बिताने की शिक्षा दे सकता है। इस विषय मे

इतिहास के पाठ सब से अधिक तथा उत्तम सुयोग प्रदान करते हैं इतिहास का अध्यापक लड़ाइयों, औद्योगिक संघर्षों तथा ईश्वर-प्रदत्त मानवी समता के अधिकारों को ले कर नैतिकता की बहुत अच्छी शिक्षा दे सकता है। इसी प्रकार साहित्य का अध्यापक उन विचारों तथा आदर्शों की तृप्ति करा सकता है जो हमारे लोकतंत्री जीवन-प्रणाली को बनाने में सहायक होते हैं और मनुष्य को दासता से निकाल कर स्वतन्त्रता में लाए हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अनेक बड़े लेख तथा पुस्तकें दिखाई जा सकती हैं।

अर्थशास्त्र प्राकृतिक साधनों तथा उत्पादन के विकास का विवेचन करता है। वह धन की सुरक्षा तथा वितरण का और अच्छी तरह रहने का ढंग सिखाता है। यह शास्त्र राज्य, परिवार और व्यक्ति के लिए एक बहुत अच्छी पृष्ठ-भूमि है। यह न्यायोचित व्यवस्था की जाँच-पड़ताल करने में सहायक होता है। अर्थ-शास्त्र की यह व्यवस्था नौकर और मालिक दोनों पर समान रूप में लागू होती है।

दूसरे के साथ हमें वैसा ही व्यवहार करना चाहिए जैसा कि हम चाहते हैं कि दूसरे हमारे साथ करें, यह नागरिक शास्त्र का विषय है। राजनीति-विज्ञान, सापेक्ष रचनात्मक सभ्यता, दर्शन, भौतिक विज्ञान और मानसशास्त्र का अध्ययन मनुष्य को उस के पड़ोसी के उचित संबंध में प्रतिष्ठित करने में एक सुनिश्चित काम दे सकता है।

स्मरण रहे कि सब मनुष्य ईश्वर की सन्तान है। फिर यदि उपर्युक्त शास्त्र जनता को आपस मे प्रेम से रहने में सहायता नहीं देते या आपस मे लड़ाते हैं, तो तर्क संगत प्रश्न होता है कि ये विषय पढ़ाए ही क्यों जाते हैं ?

जो अधिकार तथा उत्तरदायित्व हम परमेश्वर से प्राप्त करते है, उन के स्वीकार, उचित उपयोग और रक्षा के लिए ही मनुष्यो में राज्य या सरकार बनाई जाती है। अध्यापक का काम है कि वह अपने विद्यार्थियो के मन पर यह बात अंकित करे कि नैतिकता को छोड़ देने, अपने सिवा किसी दूसरे के हित की चिन्ता न करने और केवल लक्ष्मी के उपासक बन जाने मे व्यक्ति तथा राष्ट्र दोनों को घोर हानि हो जाती है। वे डिक्टेटर-शिप और अशान्ति के गहरे गर्त मे गिर पड़ते है। इस के विपरीत पुण्य-पाप तथा जन-कल्याण का ध्यान रखने से संसार सुखी हो सकता है।

अध्यापक दिन के कई घण्टों तक बच्चो के लिये माता-पिता का स्थानापन्न सलाहकार और साथी होता है या उसे होना चाहिए। वह बच्चों के उत्तम सम्मान का पात्र होता है। इन कारणों मे अध्यापक एक ऐसी मूर्ति बन जाता है जिस का अनुकरण बालक करते है। वे उस के बराबर हो जाना या उस से बढ़ जाना चाहते है। इस लिए नगर-सभाओं, समितियों, पारस्परिक सहायता तथा सुधार के लिए बनाए गये संगठनो मे अध्यापक की वाणी अवश्य सुन पड़नी चाहिए। सारांश यह कि अध्यापक का दिन क्लास रूम के साथ ही समाप्त नहीं हो जाना चाहिए।

हम जो कुछ कहते है उस से नहीं, वरन् जो कुछ हम करते है उस से लोग परिचालित होते तथा उपदेश ग्रहण करते है। अध्यापक अपने व्यक्तिगत उदाहरण से निर्दोष व्यवहार का उदाहरण प्रस्तुत करने के लिए असाधारण रूप से उपयुक्त स्थिति मे होता है।

जिन लोगों के पास सचाई है वे सभा मे चुप रह कर दुष्टों को नेता बनने का अवसर देते है।

माता-पिता तथा अध्यापक दोनों को ही बालक के विकास मे दिलचस्पी होती है। इस लिए दोनो को ही मिल कर बालक के सम्बन्ध मे विचार करना चाहिए। ऐसे अवसरों पर अध्यापक को दूसरों की सम्मति को बदलने का अच्छा सुयोग रहता है। वह ऐसे सम्मेलनो मे माता-पिता को अपने विचार दे सकता है। परन्तु कठिनाई यह है कि जो लोग संसार मे दुष्टता या अंधकार फैलाते है वे उन लोगो की उपेक्षा अधिक तत्पर होते है जो सत्य या भलाई का प्रकाश फैलाना चाहते है।

"बुराई तुम्हे वशीभूत न करने पाय, वरन् बुराई को भलाई से दबा दो।" इस कथन को सदा स्मरण रक्खो।

हमारे देश मे बहुत से स्थान ऐसे है जहाॅ के लोग अध्यापक का पूरा वेतन नहीं दे सकते। इस लिए वहाॅ स्कूल बद करने पड़ते है। ऐसे स्थानो मे कुछ त्यागी तथा तपस्वी युवक थोड़े वेतन पर अध्यापक बन कर भारी लोक-सेवा कर सकते है।

वेतन थोड़ा पर काम कड़ा, भ्रान्ति, निराशा इत्यादि सभी कठिनाइयों को सच्चा अध्यापक सहर्ष सहन कर लेता है।

सच्चा लोक-सेवक यह नहीं सोचता कि वह अध्यापकी से कितना धन कमा सकता या राष्ट्र से ले सकता है। वरन् वह सोचता है कि वह अध्यापक बन कर राष्ट्र को कितना कुछ दे सकता या उसमें डाल सकता है।

एक व्यक्ति पहले अध्यापक था। फिर वह एक व्यापारी की दुकान में नौकर हो कर अधिक कमाने लगा। परन्तु कुछ ही समय के उपरांत उसने दुकान की नौकरी छोड़ कर फिर अध्यापकी कर ली। कारण यह कि उसने अनुभव किया कि वह संसार को उससे अच्छा न छोड़ सकेगा जितना कि उसने अपने जन्म के समय उसे पाया था।

इसी प्रकार एक और व्यक्ति ने एक संस्था में क्लर्क बन कर कम्यूनिस्टों को उस संस्था में अपने विचार फैलाने से रोक दिया था।

अपने छोटे से संसार तथा सुख-सुविधाओं का त्याग करके संघर्ष-क्षेत्र में आना चाहिए, ताकि बुराई फैलाने वालों का सामना किया जा सके।

एक अध्यापक अपने छात्रों को जात-पांत और भूत-प्रेत आदि अंधविश्वास की हानियाँ सुनाया करता था। एक दिन उसके एक विद्यार्थी ने कक्षा में खड़े हो कर कहा कि महाराज आप अपने ऐसे भ्रष्ट विचार अपने पास ही रखा कीजिए, हमें सुनाने की कोई आवश्यकता नहीं।

अध्यापक उसकी बात को चुपचाप पी गया। वह क्रुद्ध नहीं हुआ। वह मुस्कराता और अपनी बात पर बल देता ही रहा। कुछ दिन बाद एक लड़के ने उसके पास आ कर कहा कि आपका कथन सत्य है, अब हमे अपनी भूल दीखने लगी है।

विद्यार्थी भी सच्चे लोक-सेवक के रूप मे चार विभिन्न क्षेत्रों मे अद्वितीय सेवा-कार्य कर सकते हैं। वे क्षेत्र है—कक्षा का कमरा स्कूल-क्लब. कालेज-क्लब, क्रीड़ा-स्थल और विद्यार्थियो की अन्य संस्थाएं तथा आन्दोलन।

सच्चा लोक-सेवक कक्षा के कमरे मे झगड़ा करके नहीं, वरन् योग्यता के वचन कह कर अपने विचारों का प्रचार करता है। उसे आप गहरा चतुर होना चाहिए। कालेज के मेग्ज़ीन तथा ग्रुप मीटिङ्ग मे वह अपने विचारों के बीज बो सकता है। उसे इन सब मे भाग ले कर अपने दूसरे सहपाठियों को प्रभावित करना चाहिए। कम्यूनिस्टों की सफलता के कारण मुख्यतः ये बातें होती है—

१—उनके सामने एक स्पष्ट उद्देश्य रहता है।

२—नेता ठीक जानते हैं कि वह क्या चाहते हैं।

३—सारे का सारा समूह प्रत्यक्ष रूप से और एक दूसरे के साथ जुड़ कर निश्चित तथा निर्दिष्ट लक्ष्य की ओर चलता है।

४—कड़ा परिश्रम। वे छोटे से छोटा काम भी निरन्तर करते रहते हैं।

५—समर्पण का भाव। वे अपने को उद्देश्य के लिए सहर्ष समर्पित कर देते है।

६—सूत्रपात। वे अपनी हिंसा तथा घृणा रूपी कड़वी गोली को मीठी खॉड में लपेट कर देना जानते है।

७—ट्रेनिङ्ग। वे पार्लियामेण्टरी कार्य-प्रणाली की शिक्षा प्राप्त करते है। इससे एक छोटा दल भी पार्लिमेण्टरी सभा का नियन्त्रण कर सकता है।

८. वे बहुजन को प्रेरणा करने की कला या पटुता प्राप्त करते हैं। इससे वे जन-साधारण के समूह को उल्लसित, उत्तेजित तथा चलायमान कर सकते और गड़बड़ उत्पन्न कर सकते हैं।

हमें भी उन्हीं के सदृश स्पष्ट उद्देश्य रखना चाहिए।

लोक-सेवक जीवन में एक महत्त्वपूर्ण चीज देता है। यह अनुभूति कि आप शिक्षण कार्य के द्वारा व्यक्ति के जीवन को चलते रहने के लिए तीव्र गति दे रहे है, आपको सदा सुखी तथा संतुष्ट रखेगी।

इस बात को समझने में भूल न कीजिए कि हमारे राष्ट्र का भाग्य और समूचे संसार का भाग्य इस बात पर निर्भर करता है कि बहुसंख्यक नवयुवक अपने व्यक्तिगत दायित्व का अनुभव करते हुए, तप और त्याग का जीवन बिताने के लिए अध्यापक बनते हैं या नहीं।

राज्य

राज्य को अच्छा बनाना आपका काम है। वर्तमान सत्ता-धारियो या किसी विशेष राजनीतिक दल को ही कोसने से हमारा राज्य अच्छा तथा सुखी नहीं हो जाएगा। राज्य को उत्तम बनाने के लिये हम सबका यत्न करना आवश्यक है।

सबसे बड़ा प्रश्न है—अत्याचार बनाम स्वतंत्रता। इतिहास मे हम देखते है कि अत्याचार तथा उत्पीड़न नाना भेष बदल कर और अनेक झूठे दर्शनो का सहारा लेकर मानवी स्वतंत्रता पर आक्रमण करता और उस आक्रमण को न्यायसंगत सिद्ध करता रहा है। अपनी स्वतंत्रता पर होने वाले आक्रमण को रोकना हम सबका कर्तव्य है।

कम्यूनिज्म इस बात को स्वीकार करने से इनकार करता है कि मनुष्य अपने भाग्य का स्वामी है। इसलिये वह अपने आप पर अपना शासक आप बनने के मनुष्य के अधिकार को नहीं मानता। वह ईश्वर की सत्ता को भी स्वीकार नहीं करता। लोक-तत्र तथा कम्यूनिज्म मे यही बड़ा सैद्धांतिक भेद है।

साधारण मनुष्य, जो अपने ही विषय मे चिंता के सिवा और कोई काम नहीं करते, प्रायः कर्कश, चिड़चिड़े, असंतुष्ट तथा व्याकुल रहते हैं। वे ऐसी भेड़े हैं जिनका कोई गडरिया नहीं। वे किसी ऐसे मनुष्य की खोज मे रहते हैं जो उन्हे आशा

बंधाए। ऐसे लोग क्योंकि जात-पाँत, ऊँच-नीच, घूसखोरी और चोरबाज़ारी आदि बुराइयों मे फंसे लोगों से घिरे रहते है, इसलिये वे अपने को उनके हाथ में समर्पित कर देते हैं या कम्यूनिस्टों के पंजे मे फँस जाते हैं।

हमारे देश मे अच्छे और योग्य लोग राजनीति को गंदा समझ कर उसमे कोई दिलचस्पी नहीं लेते। वे कहते है कि चुनाव मे खड़े होकर कौन गालियाँ सुने, कौन अपमान कराये और कौन अपना ईमानदारी से कमाया हुआ धन लुटाये। हम देश-सेवा के लिये तो तैयार हैं, पर हमारे पास चुनाव लड़ने के लिये धन कहाँ? चुनाव तो वह लड़े जिसे असेम्बली का सदस्य या राज्य का मंत्री बन कर अनुचित रीतियों से धन बटोरना है।

उनकी इस उदासीनता का परिणाम यह होता है कि दूसरे स्वार्थी, अयोग्य तथा चरित्र-हीन लोग आगे आ जाते है। वे जनता से मिलते हैं, अपने लिये दौड़-धूप करते हैं, अपनी सफलता के लिये उचित और अनुचित साधनों का प्रयोग करते है। अंत में उन्हें सफलता हो जाती है। परिणाम यह होता है कि हमारा शासन-सूत्र ऐसे लोगों के हाथ मे आ जाता है जो देश के उत्कर्ष के स्थान पर उसके अपकर्ष का ही कारण बन जाते हैं। फिर अच्छे मनुष्यों को भी राजनीति में दिलचस्पी न लेने के पाप के दण्ड स्वरूप बुरी गवर्नमेंट के अधीन रहना पड़ता है। बात यह है कि जो भी लोग किसी उद्देश्य के लिये सुसंगठित रूप से कार्य करते हैं, वह उद्देश्य चाहे निकृष्ट ही क्यों न हो, वे सफल हो जाते हैं। इसके

विपरीत जो अच्छे मनुष्य अलग-थलग पड़े रह कर बुराई को केवल कोसा ही करते हैं वे कभी सफल नहीं होते। कम्यूनिस्ट लोग इस तत्त्व को खूब समझते है और जनता को भड़काने मे सफल हो जाते है।

यदि आप का काम नहीं तो किस का है ?

जो लोग इस प्रकार राजनीति से उदासीन रहते हैं और कहते है कि उस मे कूदना हमारा काम नहीं, उन से पूछना चाहिए कि यदि यह आप का काम नहीं तो और किस का है ? यदि अच्छे विचार वाले लोग राजनीति मे भाग नहीं लेगे तो लोक-तंत्र की मृत्यु हो जाएगी। राज्य को सुचारु रूप से चलाना ही तो राजनीति है। जीर्णमताभिमानी लोगों के हाथ मे राष्ट्र का शासन-सूत्र आ जाने से इस देश मे से जात-पॉत जैसे भयंकर रोग के निकल जाने की सम्भावना नहीं हो सकती, और यदि जात-पॉत रही तो हमारा लोक-तंत्र और हमारी स्वतन्त्रता सब नष्ट हो जायगी। यह स्वतन्त्रता थोड़े से ऊँचे वर्ण के लोगों की स्वतन्त्रता वेशक हो, पर यह वहुजन समाज की दासता ही होगी। इसलिए देश में सच्ची स्वतन्त्रता लाने के लिए भी नवमतवादी, उदार नेता और त्यागी लोगों का राजनीति मे भाग लेना परम आवश्यक है।

जो लोग समझते है कि हमे राजनीति से क्या मतलव, हमे तो रक्त-पसीना वहा कर अपनी रोटी कमाना है, वे नहीं समझते कि राजनीतिज्ञ वनना ही राजनीति में भाग लेना नहीं। उन्हे मालूम रहना चाहिए कि प्रत्येक व्यक्ति राज्य में फॅसा है

और राज्य द्वारा प्रभावित होता है। राज्य से कोई भी व्यक्ति अछूता नहीं रह सकता, चाहे वह अनुभव करे या न करे।

जब आप बिक्री-टेक्स अदा करते है, अपनी मोटर के लिए लायसेन्स लेते है, या इन्कम-टेक्स फार्म भरते है, तब आप राज्य की लपेट में होते है। प्रत्येक बार जब आप पुलिस मे शिकायत करने जाते है, या न्यायालय मे कोई अभियोग प्रस्तुत करते है, या मालिक या मजदूर के रूप में लेबर-बोर्ड के सामने जाते है, तब आप राज्य के साथ लिपटे होते हैं। प्रत्येक बार जब आप सफाई करने या आग बुझाने वालों या पटवारी को काम करते देखते हैं तो आप राज्य को ही काम करते देखते है।

आधुनिक समाज में एक भी ऐसा काम नहीं जिस मे हमे राज्य की टक्कर का अनुभव न होता हो। इस से स्पष्ट है कि अपने राष्ट्र के प्रबंध, शासन या न्याय-विभाग के साथ संबंध रखने के लिए राजनीतिक होना आवश्यक नहीं। प्रत्येक व्यक्ति को पग-पग पर राज्य का धक्का लगता है।

आप के स्रष्टा ने आप को जो अधिकार दे रखे है उन की रक्षा के लिए ही मनुष्यों मे सरकारें या राज्य बनाए जाते है। राज्य के द्वारा आप उन संस्थाओं को जनता के नियन्त्रण मे ला सकते है जो उस दुष्ट उद्देश्य रखने वाली अल्पसंख्या के विरुद्ध आप की रक्षा करती है।

वह आप के सामान्य लक्ष्यों तथा उच्च कांक्षाओं को आगे बढ़ाती है।

बहुत से राष्ट्रो का भारी अनिष्ट बहुधा इस कारण हो जाया करता है क्योंकि लोग अपनी सरकार मे यथेष्ट दिलचस्पी नहीं लेते। जनता की उदासीनता राज-कर्मचारियो मे भ्रष्टता उत्पन्न करती है। लोकतंत्र द्वारा जनता को दिए गए अधिकारो का उपयोग न करने से सर्वशक्ति सम्पन्न अधिनायक तंत्र शीघ्रता से उत्पन्न होने लगता है। यदि अच्छे लोग सामूहिक रूप से राजनीति के क्षेत्र से निकल जाते है तो स्वार्थी, भ्रष्टाचारी, उत्पीड़क, अल्प संख्या राज्य की बड़ी भारी शक्ति को हथिया लेती है और सारे राष्ट्र को दु:ख का मुँह देखना पड़ता है। उदाहरणार्थ मान लीजिए एक राष्ट्र मे १०० व्यक्ति है और उन की कोई सरकार नहीं। उन मे से १०-१२ लुच्चे. लुटेरे, लठबंद उठ कर सब की स्वतन्त्रता का अपहरण कर लेते है। वे बन्दूक, छुरा, छवी, खण्डा आदि शस्त्रो से सुसज्जित हो कर सारे समाज को भयभीत कर देते और उन का स्वतन्त्र रूप से रहने का अधिकार छीन लेते है। यह कोरी कल्पना ही नहीं। इतिहास मे अनेक बार ऐसे लुटेरों ने दुनियाँ को लूट कर ऊधम मचाया है। पिछले दिनों नाजी यही करते थे। ऐसी ही बुरछागर्दी फैल गई थी। भूपत डाकू क्या था? राज्य-प्रबन्ध बुरे मनुष्यों के हाथ मे चले जाने से देश मे बुरछागर्दी और गुण्डागर्दी फैल जाती है। दुष्ट उद्देश्य वाले लोग धीरे-धीरे गवर्नमेण्ट मे घुस कर, दलबंदी करके, ऊँचे पद पर पहुँच जाते है। फिर राज-सत्ता हाथ मे आते ही वे मनमानी करने लगते हैं। इस लिए सच्चे लोक-सेवकों को सदा इन से सतर्क रहना चाहिए

और कष्ट सहन करते हुए त्याग-पूर्वक भी ऊँचे सरकारी पदों को हथियाने का यत्न करना चाहिए, ताकि दुष्ट लोग उन पर अधिकार न कर लें। आस्टरिया और जेकोसलवाकिया में नाज़ियों ने ऐसा ही किया था।

लोक-तंत्र का आधार दो विश्वास हैं—प्रत्येक व्यक्ति को ईश्वर की ओर से कई ऐसे अधिकार प्राप्त हैं जो उस से ले कर किसी दूसरे को नहीं दिए जा सकते। लोक-तंत्र मानवी स्वतन्त्रता में विश्वास रखता है। और कम्यूनिस्ट लोग दमनकारी राज में विश्वास रखते है।

यदि आप किसी व्यक्ति की भूल को दूर करना चाहते है तो उस के स्थान मे उसे कोई दूसरी चीज़ दीजिए। यदि आप अंधकार को दूर करना चाहते है तो प्रकाश कर दीजिए। यदि आप रोग को भगाना चाहते हैं तो ऐसे काम कीजिए जिन से स्वास्थ्य पुष्ट हो। यदि आप अच्छी गवर्नमेण्ट चाहते हैं और आप स्वयं सरकार मे नहीं घुस सकते, तो अच्छे मनुष्यो को राज्य मे भेजिए, सच्चे और ईमानदार लोगों को ही अपना प्रतिनिधि बनाइए।

वैद्य या वकील बनने के लिए ट्रेनिङ्ग ली जाती है। पर कितने खेद की बात है कि राज्य-कार्य चलाने के लिए कोई ट्रेनिङ्ग नहीं।

सरकारी नौकरियों मे ऐसे मनुष्य जाने चाहिएं जिन मे

देश-सेवा का सच्चा भाव हो न कि धनोपार्जन की अबाध लालसा। हमारे देश की यही सब से बड़ी दुर्बलता है। ये कर्मचारी इस भीतरी सन्तोष को ही अपना पारितोषिक समझें कि वे एक अतीव महत्त्वपूर्ण, शक्तिशाली तथा जटिल सेवा मे भाग ले रहे हैं और वह भी अपने व्यक्तिगत पारिश्रमिक के लिए नहीं, वरन् सब मनुष्यों की भलाई के लिये। आवश्यकता इस बात की है कि वे अपनी सभ्यता मे विश्वास रखे और उस का सुधार तथा रक्षा करने के लिए बलिदान देने को तैयार हों। ये सब बाते स्कूल मे पढ़ाई जानी चाहिएं।

राज्य में कोई विशेष पद ले कर प्रत्यक्ष रूप से राज-काज में भाग लेना गवर्नमेण्ट के रूप को सुधारने का सब से अधिक रचनात्मक उपाय है। चपड़ासी से लेकर राष्ट्रपति तक सारी सिविल सर्विस में सहयोग होना चाहिए। यदि छोटे पदों पर काम करने वालों मे वैराग्य या मानव-द्वेष होगा तो जनता सारी गवर्नमेण्ट को गली सड़ी समझने लगेगी। वह इसे लोकतन्त्र का एक भद्दा प्रहसन मानने लगेगी। वे लोकतंत्री नेतृत्व मे विश्वास खो बैठेंगी।

आप का काम एक सच्चे लोक-सेवक के रूप में यह है कि आप चाहे कितने ही छोटे पद पर हों या बड़े पर, आप कांग्रेस-मैन हों या सोशलिस्ट, आप को चाहिए कि लोकतंत्री शासन में सामान्य मनुष्य का विश्वास दृढ़ करने का प्रयास करें। सारांश यह कि आप सार्वजनिक कल्याण को व्यक्तिगत लाभ से ऊपर रखिए।

दूसरी बात लोगों को यह समझानी चाहिए कि आप स्वतंत्र रह कर भी पेट भर सकते हैं। महान् स्वतंत्रता और अच्छा रहन-सहन दोनों बातें, एक साथ भी हो सकती है।

बुद्धिमत्ता-पूर्वक शासन के प्रयोग के द्वारा जनता की आर्थिक आवश्यकताओं को पूरा न करना उसका सरकार में विश्वास खो देना है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि गवर्नमेण्ट से असहयोग हमारे जीवन के स्वतंत्र मार्ग में दिलचस्पी को नष्ट कर डालता है। आर्थिक अस्त-व्यस्तता और गड़बड़ी से राजनीतिक गड़बड़ी उत्पन्न हो जाती है। और राजनीतिक अस्त-व्यस्तता से सर्वशक्ति-सम्पन्न अधिनायक तंत्र (डिक्टेटर) प्रकट हो कर समाज में महान् परिवतन हो जाता है।

यदि आप स्वयं गवर्नमेण्ट में न जा सकें तो भी आप दो श्रेणियों में से एक में हो सकते है—मतदाता (इलेक्टर) और राजभक्त।

मतदाता होना, गण (इलेक्टोरेट) का अंश होना एक महान् परम्परागत शक्ति का उत्तराधिकारी होना है। यह एक बहुमूल्य ईश्वर-प्रदत्त अधिकार है। यह बड़े कष्ट तथा प्रयास के बाद प्राप्त किया गया है। पहले तो लोग-राजा को प्रभु वरन् ईश्वर का धरती पर प्रतिनिधि मान कर अपने को उसके क्रीत दास समझा करते थे। वे उसे राज्य च्युत न कर सकते थे। वे चुप चाप उसकी प्रत्येक उचित तथा अनुचित आज्ञा का पालन करने पर बाध्य थे। पर लोकतंत्र में मतदाता बन जाने से वे दास नहीं रहे। वे अपने राजा आप बन गये है।

परन्तु जिस प्रकार मनुष्य अपने दूसरे उत्तराधिकार से प्राप्त अधिकारों की उपेक्षा करने लगता है उसी प्रकार वह आज कल अपने वोट देने के अधिकार की भी उपेक्षा करने लगा है। वह अपने इस बहुमूल्य अधिकार की उपेक्षा करके उसका दुरुपयोग करता है। यदि १०० में से ८५ व्यक्ति चुनाव में मतदान न करें और केवल १५ प्रति सैकड़ा लोग मतदान करके सत्तारूढ़ हो जाये तो इसमें दोष किस का ? यदि अच्छे मनुष्यो का एक बहुत बड़ा भाग मतदान के दिन घर पर बैठा रहे तो बुराई करने वाले जत्थे के लिए अपने मनुष्य सरकार में घुसेड़ना बहुत सरल हो जाता है। अपने बैलट पेपर का उपयोग न करना भ्रष्ट राजनीतिज्ञ के लिए रास्ता साफ करना है। इस उदासीनता और उपेक्षा से स्वार्थी, भ्रष्टाचारी लोगों के लिए, उनके अल्प संख्यक होते हुए भी, गवर्नमेण्ट की मशीनरी मे स्थान पा लेना सुगम हो जाता है। यह एक ऐसी स्थिति है जो लोकतंत्र के सम्पूर्ण भाव के विरुद्ध है। कारण यह कि अल्प संख्यकों के अधिकारों को स्वीकार करते हुए भी, लोक-तंत्र में बहुसंख्या न कि अल्पसंख्या सार्वजनिक नीति का निर्णय करती है।

इस लिए लोक-सेवक को वोटर अवश्य बनना चाहिए। इसके अतिरिक्त उसे अपने मित्रों, परिवार वालों, पड़ोसियों और दूसरे लोगों को भी वोटर बनाना चाहिए।

यह उसकी सच्ची जिम्मेदारी है। इससे वह समाज का एक सजीव अंग बन सकता है। अच्छे लोगों को मतदाता बनवा कर

परन्तु जिस प्रकार मनुष्य अपने दूसरे उत्तराधिकार मे प्राप्त अधिकारो की उपेक्षा करने लगता है उसी प्रकार वह आज कल अपने वोट देने के अधिकार की भी उपेक्षा करने लगा है। वह अपने इस वहुमूल्य अधिकार की उपेक्षा करके उसका दुरुपयोग करता है। यदि १०० मे से ८५ व्यक्ति चुनाव मे मतदान न करें और केवल १५ प्रति सैकड़ा लोग मतदान करके सतारूढ़ हो जाये तो इसमे दोष किस का ? यदि अच्छे मनुष्यों का एक वहुत वड़ा भाग मतदान के दिन घर पर वैठा रहे तो बुराई करने वाले जत्थे के लिए अपने मनुष्य सरकार मे घुसेड़ना वहुत सरल हो जाता है। अपने वैलट पेपर का उपयोग न करना भ्रष्ट राजनीतिज्ञ के लिए रास्ता साफ करना है। इस उदासीनता और उपेक्षा से स्वार्थी, भ्रष्टाचारी लोगों के लिए, उनके अल्प संख्यक होते हुए भी, गवर्नमेण्ट की मशीनरी मे स्थान पा लेना सुगम हो जाता है। यह एक ऐसी स्थिति है जो लोकतंत्र के सम्पूर्ण भाव के विरुद्ध है। कारण यह कि अल्प संख्यकों के अधिकारों को स्वीकार करते हुए भी, लोक-तंत्र में वहुसंख्या न कि अल्पसंख्या सार्वजनिक नीति का निर्णय करती है।

इस लिए लोक-सेवक को वोटर अवश्य वनना चाहिए। इसके अतिरिक्त उसे अपने मित्रों, परिवार वालों, पड़ोसियों और दूसरे लोगों को भी वोटर वनाना चाहिए।

यह उसकी सच्ची जिम्मेदारी है। इससे वह समाज का एक सजीव अंग वन सकता है। अच्छे लोगों को मतदाता वनवा कर

दूसरी बात लोगों को यह समझानी चाहिए कि आप स्वतंत्र रह कर भी पेट भर सकते हैं। महान् स्वतंत्रता और अच्छा रहन-सहन दोनों बातें, एक साथ भी हो सकती है।

बुद्धिमत्ता-पूर्वक शासन के प्रयोग के द्वारा जनता की आर्थिक आवश्यकताओं को पूरा न करना उसका सरकार में विश्वास खो देना है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि गवर्नमेण्ट से असहयोग हमारे जीवन के स्वतंत्र मार्ग मे दिलचस्पी को नष्ट कर डालता है। आर्थिक अस्त-व्यस्तता और गड़बड़ी से राजनीतिक गड़बड़ी उत्पन्न हो जाती है। और राजनीतिक अस्त-व्यस्तता से सर्वशक्ति-सम्पन्न अधिनायक तंत्र (डिक्टेटर) प्रकट हो कर समाज मे महान् परिवर्तन हो जाता है।

यदि आप स्वयं गवर्नमेण्ट में न जा सकें तो भी आप दो श्रेणियों मे से एक मे हो सकते है—मतदाता (इलेक्टर) और राजभक्त।

मतदाता होना, गण (इलेक्टोरेट) का अश होना एक महान् परम्परागत शक्ति का उत्तराधिकारी होना है। यह एक वहुमूल्य ईश्वर-प्रदत्त अधिकार है। यह वड़े कष्ट तथा प्रयास के वाद प्राप्त किया गया है। पहले तो लोग-राजा को प्रभु वरन् ईश्वर का धरती पर प्रतिनिधि मान कर अपने को उसके क्रीत दास समझा करते थे। वे उसे राज्य च्युत न कर सकते थे। वे चुप चाप उसकी प्रत्येक उचित तथा अनुचित आज्ञा का पालन करने पर वाध्य थे। पर लोकतंत्र मे मतदाता वन जाने से वे दास नहीं रहे। वे अपने राजा आप वन गये है।

दूसरी बात लोगों को यह समझानी चाहिए कि आप स्वतंत्र रह कर भी पेट भर सकते है। महान् स्वतंत्रता और अच्छा रहन-सहन दोनों बातें, एक साथ भी हो सकती है।

बुद्धिमत्ता-पूर्वक शासन के प्रयोग के द्वारा जनता की आर्थिक आवश्यकताओं को पूरा न करना उसका सरकार में विश्वास खो देना है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि गवर्नमेण्ट से असहयोग हमारे जीवन के स्वतंत्र मार्ग में दिलचस्पी को नष्ट कर डालता है। आर्थिक अस्त-व्यस्तता और गड़बड़ी से राजनीतिक गड़बड़ी उत्पन्न हो जाती है। और राजनीतिक अस्त-व्यस्तता से सर्वशक्ति-सम्पन्न अधिनायक तंत्र (डिक्टेटर) प्रकट हो कर समाज में महान् परिवर्तन हो जाता है।

यदि आप स्वयं गवर्नमेण्ट मे न जा सके तो भी आप दो श्रेणियों मे से एक मे हो सकते है—मतदाता (इलेक्टर) और राजभक्त।

मतदाता होना, गण (इलेक्टोरेट) का अंश होना एक महान् परम्परागत शक्ति का उत्तराधिकारी होना है। यह एक बहुमूल्य ईश्वर-प्रदत्त अधिकार है। यह बड़े कष्ट तथा प्रयास के बाद प्राप्त किया गया है। पहले तो लोग-राजा को प्रभु वरन् ईश्वर का धरती पर प्रतिनिधि मान कर अपने को उसके क्रीत दास समझा करते थे। वे उसे राज्य च्युत न कर सकते थे। वे चुप चाप उसकी प्रत्येक उचित तथा अनुचित आज्ञा का पालन करने पर बाध्य थे। पर लोकतंत्र मे मतदाता बन जाने से वे दास नहीं रहे। वे अपने राजा आप बन गये है।

परन्तु जिस प्रकार मनुष्य अपने दूसरे उत्तराधिकार मे प्राप्त अधिकारों की उपेक्षा करने लगता है उसी प्रकार वह आज कल अपने वोट देने के अधिकार की भी उपेक्षा करने लगा है। वह अपने इस बहुमूल्य अधिकार की उपेक्षा करके उसका दुरुपयोग करता है। यदि १०० मे से ८५ व्यक्ति चुनाव मे मतदान न करें और केवल १५ प्रति सैकड़ा लोग मतदान करके सतारूढ़ हो जाये तो इसमे दोष किस का ? यदि अच्छे मनुष्यो का एक बहुत बड़ा भाग मतदान के दिन घर पर बैठा रहे तो बुराई करने वाले जत्थे के लिए अपने मनुष्य सरकार मे घुसेड़ना बहुत सरल हो जाता है। अपने बैलट पेपर का उपयोग न करना भ्रष्ट राजनीतिज्ञ के लिए रास्ता साफ करना है। इस उदासीनता और उपेक्षा से स्वार्थी, भ्रष्टाचारी लोगों के लिए, उनके अल्प सख्यक होते हुए भी, गवर्नमेण्ट की मशीनरी मे स्थान पा लेना सुगम हो जाता है। यह एक ऐसी स्थिति है जो लोकतंत्र के सम्पूर्ण भाव के विरुद्ध है। कारण यह कि अल्प संख्यको के अधिकारों को स्वीकार करते हुए भी, लोक-तंत्र मे बहुसंख्या न कि अल्पसंख्या सार्वजनिक नीति का निर्णय करती है।

इस लिए लोक-सेवक को वोटर अवश्य बनना चाहिए। इसके अतिरिक्त उसे अपने मित्रों, परिवार वालों, पड़ोसियों और दूसरे लोगों को भी वोटर बनाना चाहिए।

यह उसकी सच्ची जिम्मेदारी है। इससे वह समाज का एक सजीव अंग बन सकता है। अच्छे लोगों को मतदाता बनवा कर

वह निकम्मे तथा हानिकर मनुष्यों को गवर्नमेण्ट में घुसने से रोक देता है।

मतदाताओं के बाद दूसरा दल राज्य के स्वामि-भक्त कर्मचारियो या सिविल सर्विस का है। ये शासन-व्यवस्था का एक नियमित अंग है। ऐसा दल संयुक्त क्रिया से गवर्नमेण्ट तथा सार्वजनिक विचार को प्रभावित करता है। इन के मिल कर काम करने से बड़ा प्रभाव पड़ता है। राजनीति में कई दल अच्छे होते हैं और कई बुरे। कौन दल अच्छा और कौन दल बुरा है, यह आप के दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। किसी दल का सदस्य बनने या उस में मिलने से पहले आप को अपने से तीन प्रश्न पूछने चाहिएँ—

(१) उस का उद्देश क्या है ?

(२) उस उद्देश्य को वह किस ढंग से पूरा करना चाहता है ?

(३) कौन उस दल का नियन्त्रण करता है ?

प्रायः लोग स्लोगन या नारे के धोखे मे फँस जाते है। उदाहरणार्थ एक दल नारा लगाता है—"हम कर घटाना चाहते हैं। हम धनी-निर्धन का भेद मिटाना चाहते हैं या हम जाति-भेद का अन्त कर देना चाहते हैं।" पर बहुधा, वास्तव में, जिस कार्य-प्रणाली का वह दल अवलम्बन करता है उस से घटने के बजाय जनता पर करों का बोझ और भी बढ़ जाता है। धनी और भी धनी, और निर्धन और भी निर्धन हो जाते है और जात-पांत का विष फैल कर बहुजन समाज का शोषण करने लगता है।

कोई आदर्श वाक्य या नारा किसी समस्या का हल नहीं। जितना ठग और बेईमान कोई राजनीतिक दल होता है वह उतना ही अधिक नए नारों की तलाश करता है जिन से कस-चौकस और सरल हृदय मनुष्य आसानी से उन के धोखे मे फॅस सकता है।

कोई दल अपने उद्देश्य को किन साधनों से प्राप्त करना चाहता है, यह बात उतनी ही महत्त्वपूर्ण है जितना कि उस का उद्देश्य। बुरे साधन का परिणाम प्रायः अवश्य ही बुरा हुआ करता है।

भोले-भाले नागरिक अनेक बार नारे और उद्देश्य सुन कर धोखे मे आ जाते है। बाद को उन्हे पता लगता है कि गंदे, बेईमान तथा भ्रष्ट नेता के हाथ मे पड़ कर अच्छा उद्देश्य भी हानिकारक बन गया है। तब उन्हे उस दल का समर्थन करने के लिए पश्चाताप करना पड़ता है। ऐसे दलो पर नाम बड़े और दर्शन छोटे की कहावत चरितार्थ होती है। इन दलों के प्रकृत रूप का पता उन लोगों के चरित्रो से लगता है जिन का उन पर नियन्त्रण है।

आप को विशेष रूप से देखना चाहिए कि जिस दल मे आप सम्मिलित है या होना चाहते है उसका मन्त्री कौन है? उस दल के मुख पत्र के संपादक पर भी ध्यान देना चाहिये। उस संगठन की रीति को बनाने वाली समिति के सदस्यों पर भी विचार करना चाहिए। इन प्रश्नों का संतोष-जनक उत्तर मिलने पर ही लोक-सेवक को किसी दल मे सम्मिलित हो कर काम करना

चाहिए। उन की सभाओं में जाकर चौकसी के साथ देखना चाहिए कि क्या हो रहा है। हो सके तो उन के संगठन में उत्तर-दायित्व का पद स्वीकार करो और उन के चुनाव में मतदान करो।

यह देखना भी आप का कर्तव्य है कि ये दबाव डालने वाले दल आप के लोक-तंत्र को दुर्बल नहीं, वरन् सुदृढ़ बनाएँ। वे जनता के जीवनों को आनन्दमय बनाएँ न कि दरिद्र तथा नीरस। वे प्रत्येक व्यक्ति को स्वतंत्र बनाएँ न कि दास।

स्मरण रहे कि भलाई करने के उद्देश्य से सुनिश्चित प्रभाव बनाने के लिए आप का उस स्थान पर वर्तमान होना आवश्यक है, अपने दूसरे नागरिक बन्धुओं से मिलना और अपनी सजीव उपस्थिति का अनुभव कराना आवश्यक है।

लोक-सेवा के क्षेत्र मे कितना और क्या काम किया जा सकता है, यह दिखलाने के लिये सर्वोत्तम रीति उन लोगो के उदाहरण है जिन्हों ने जन-सेवा को अपने जीवन का उद्देश्य बना रखा है।

एक नवयुवक में देश-सेवा भाव जागृत हुआ। वह जा कर कांग्रेस में शामिल हो गया। वहाँ उस ने इतनी लगन, उत्साह और भक्ति के साथ काम किया कि दूसरों को उस के लिए जगह खाली करनी पड़ी।

अमेरिका की बात है। केलेफोर्निया के एक वकील ने वहाँ के विश्वविद्यालय के सेनेट को अपनी सेवाएँ प्रस्तुत कीं। वहाँ की शिक्षा स्टेट कमेटी ने उन्हे स्वीकार कर लिया। उसे अमेरिका की सप्लीमेन्टरी पाठ्य-पुस्तको के विश्लेषण का काम दिया गया। उस ने देखा कि वे पुस्तके अमेरिकी सर्वोत्तम प्रथा के लिए घातक और रूस के कम्यूनिस्ट ध्येय के अनुकूल है। उस ने उन सब को बदल या निकाल दिया। राष्ट्र-कल्याण की दृष्टि से यह काम बड़े महत्त्व का था।

सच्चे लोक-सेवक के लिए जन-कल्याण के संयोग असीम हैं। ऊपर कहे सारे काम ठीक दिशा मे बड़े भारी डग है, परन्तु सेवा का क्षेत्र इतना विस्तीर्ण है, कि ये सब काम एक बड़े तालाब मे एक लघु जल-बिन्दु के समान जान पड़ते हैं। इस विषय में कुछ क्रियात्मक सुझाव आगे दिए जाते है :—

१. जाइए और अपने स्थानीय कर्मचारियों—नम्बरदार, थानेदार, डिप्टी कमिश्नर, और कौंसलर आदि—को अपनी आवाज़ सुनने पर विवश कीजिए।

२. अपने असेम्बली के सदस्यों को जानिए और उन को भी अपने प्रभाव का अनुभव कराइए।

३. समाचार-पत्रों में समाचार पढ़ते रहिए कि आप के असेम्बली में भेजे हुए सदस्य असेम्बली मे विभिन्न विषयों पर कैसा वोट देते है?

४. आप की प्रान्तीय असेम्बली और केन्द्रीय संसद् में जो प्रश्न चल रहे हों, उन की पूरी पूरी खबर रखिए।

५. प्रान्तीय असेम्बली और केन्द्रीय संसद् के लिए अपने वोट रजिस्टर्ड कराइए।

६. नागरिक दलों में सम्मिलित हूजिए। पर पहले पूरी तरह छान-बीन कर लीजिए कि उन का उद्देश्य तथा कार्य-प्रणाली क्या है, और काम करने वाले कौन हैं। ऐसे दलों में कार्यतत्पर रहिए, चुस्त रहिए, सोने वाले या निश्चेष्ट सदस्य न बनिए।

(७) दूसरे ऐसे लोगों को प्रोत्साहित कीजिए जो व्यक्तिगत रूप से राज्य के सभी रूपों में प्रवेश कर सकते हैं। आपका उद्देश्य उन ईश्वर-प्रदत्त अधिकारों की रक्षा करना हो, जिन्हें भ्रष्ट लोग, लोकतंत्र की स्वतन्त्र प्रणाली से उखाड़ डालना चाहते हैं।

(८) हो सके तो आप स्वयं लोक-सेवक बन कर काम करने वाले बन कर जाइए न कि केवल सुनने वाले और देखने वाले बन कर।

लोकतन्त्र के अस्तित्व के लिए संघर्ष कभी समाप्त नहीं होता। प्रत्येक क्लास रूम, प्रत्येक सरकारी आफिस, प्रत्येक लेजिस्लेटिव तथा जुडीशल चेम्बर में स्वतंत्रता एवं लोक-तन्त्र के मूलभूत सिद्धान्त घोषित किए जाने चाहिएँ और उन पर आचरण होना चाहिए। प्रत्येक हृदय में उनका अर्थ प्रत्येक विचार तथा प्रत्येक कर्म का पथ-प्रदर्शन करे। ये शब्द सब कहीं गूँजने लगे—

"सब मनुष्य समान उत्पन्न किए गए हैं। उन में न कोई

ब्राह्मण है और न कोई शूद्र। प्रत्येक मनुष्य को भगवान ने कई ऐसे अधिकार प्रदान कर रखे हैं जो उस से छीन कर किसी दूसरे को नहीं दिए जा सकते। इन्हीं अधिकारो को निरापद करने के लिए उन की रक्षा के लिए मनुष्यो मे गवर्नमेण्ट बनाई गई है। गवर्नमेण्ट जनता की अनुमति से ही सत्ता प्राप्त करती है। जब कोई गवर्नमेण्ट इन उद्देश्यो का नाश करने वाली बन जाय तो उसे बदल देने का जनता को अधिकार है।"

जो गवर्नमेण्ट मानव के अधिकारों की रक्षा नहीं करती उसे तोड़ कर, निकाल कर एक ऐसी नई गवर्नमेण्ट बनाना चाहिए जिस की नींव ऐसे सिद्धान्त पर रखी जाय और जिस की शक्ति को ऐसे रूप मे संगठित किया जाय जिस से जनता को मालूम हो कि उसकी सुरक्षा तथा सुख-वृद्धि हो सकेगी।"

इस काम के लिए केवल धन की ही नहीं, श्रद्धा और विश्वास को भी आवश्यकता रहती है।

श्रम-प्रबंध

हमारे देश में, पश्चिम की देखा-देखी, मालिक और मजदूर का, श्रम तथा प्रबंध का झगड़ा चल रहा है। इसके कारण भारी अशान्ति फैल रही है। हड़तालें होती हैं। दंगे फिसाद होते हैं। रेल-गाड़ियाँ उलटाई जाती हैं। इस झगड़े और अशान्ति को सुचारु रूप से मिटाना सच्चे लोक-सेवक का काम है।

एक मिल-मालिक मजदूरों की माँगों से तंग आ कर कह रहा था—"मजदूर को एक इंच जगह दो तो वह एक गज माँगने लगता है।"

उसकी शिकायत सुन कर एक सच्चे लोक-सेवक ने कहा—"आप ने उसे सब कुछ—सवेतन छुट्टी, साफ मकान, शिक्षा, दवा-दारू सब कुछ दिया। पर आप ने उसे अपना आप नहीं दिया।"

यह सुन मिल-मालिक पर छत गिर पड़ी। वह बोला—"आप कहीं सनकी तो नहीं हैं? मैं उसके लिए और क्या करूँ? क्या मैं मजदूरों के लिए नर्स-मेड बन कर उन के मुँह में दूध टपकाऊँ?" लोक-सेवक ने उत्तर दिया—"आपको उनके लिए नर्स-मेड बनने की आवश्यकता नहीं। आपको उनके संबंध में मनुष्य प्राणी होने की आवश्यकता है। आप वास्तव में उन्हें नहीं जानते और न ही वे आप को जानते हैं। अपने को मूर्ख मत बनाइए। यदि लोगों को व्यक्ति समझ कर उनके साथ व्यवहार न किया जाय तो वे बुरा मानते हैं। प्रत्येक मनुष्य प्राणी में प्रतिष्ठा तथा गौरव का भाव है और प्रत्येक मनुष्य प्राणी एक व्यक्ति के रूप में अपने

साथ व्यवहार किया जाना पसंद करता है। यदि आप और आप के साथी अपने से बाहर निकले और जो लोग आप के लिए काम करते है उनमें सच्ची दिलचस्पी लेना अपना कर्त्तव्य समझे—मेरा अभिप्राय सच्ची अकृत्रिम दिलचस्पी से है, क्योंकि लोगों मे एक छठी ज्ञानेन्द्रिय भी रहती है जो बता सकती है कि क्या कृत्रिम और क्या अकृत्रिम है—तो मैं गारण्टी लेता हूँ कि आप के और उनके बीच के सम्बन्ध बिलकुल अच्छे हो जायँगे।"

मिल-मालिक बोला—"*मित्रोचित दिलचस्पी* ये शब्द सुनते-सुनते मेरे कान पक गये है। हम व्यापार चला रहे है, न कि उपदेशक विद्यालय।"

बस, ऐसी ही मनोवृत्ति के कारण मजदूर और मालिक मे झगड़ा होता है। यदि मिल मालिक ऊपर लिखे परामर्श पर चले तो दोनों ओर न्याय के लिए मार्ग खुल जायें।

कर्तव्यों तथा अधिकारों के इस परामर्श के स्वीकार से जहाँ मजदूरो को अच्छा वेतन और काम करने की अच्छी दशाएँ मिलेगी वहाँ दूसरी ओर मालिकों के अधिकार के लिए उत्तम सम्मान तथा पूरा काम होने लगेगा। श्रम तथा पूँजी के वैमनस्य को दूर करने का यही उत्तम उपाय है। पूँजी तथा श्रम के संबंध को ठीक करने के लिए सारी सभ्यता को नष्ट कर डालना, जैसा कि कम्यूनिस्ट करना चाहते है, समस्या का कोई समाधान नहीं। मनुष्यों को ठगने, चुराने और धोखा देने से रोकने के लिए उनसे सम्मति प्रकट करने का अधिकार छीन लेना कोई अच्छा उपाय नहीं। इससे तो वे मूक पशु बन जायेंगे। एक वर्गहीन समाज बनाने के लिए वर्ग-युद्ध और वर्ग-घृणा की बुराई को कानून-संगत ठहरा देना, जैसा कि कम्यूनिस्ट करते है, कहाँ तक हितकर हो

सकता है ? इस समस्या का हल है—इस ईश्वरीय नियम का दैनन्दिन प्रयोग कि सभी मनुष्य भगवान् की अमृत सन्तान हैं। इस से न केवल हमारे सदाचार का ही सुधार होगा, वरन् हमारी संस्थाओं का भी। इस नियम का अर्थ है कि मनुष्य सब भाई हैं। हम वह हैं जो हम चाहते है कि दूसरे हमारे लिए हों। अमेरिका के उद्योगपति श्री हेनरीफोर्ड ने एक बार कहा था—"बड़े-बड़े उद्योग एक बहुत बड़ा दान और मानवता की बहुत बड़ी देन होगी, यदि ये अपने मज़दूरों पर उतना ही समय तथा ध्यान दें जितना कि वे मशीन, भवन तथा शिल्प पर देते है।"

अपनी ही कम्पनी को झाड़ डालते हुए उन्हों ने कहा था—

"ऐसा जान पड़ता है कि हम ने अपने मानवी सम्बन्ध के विकास को जारी नहीं रखा। हम अपने उत्पादन के लिए जितना विज्ञान पर ध्यान देते हैं उतना उद्योग मे मानवी सम्बन्धों पर नहीं दे रहे। जितना रुपया हम ने शिल्प-विज्ञान की वृद्धि पर व्यय किया है उतना ही हमें मज़दूरों के साथ मानवी संबधों को अच्छा बनाने मे व्यय करना चाहिए था।"

उन के इन शब्दों को सुन कर अमेरिका के सभी लोग प्रसन्न हो गए थे। यह बात उन्हों ने पहले कभी नहीं सुनी थी। यह इस विचार की उत्साहवर्धक स्वीकृति थी कि प्रत्येक मनुष्य प्राणी भगवान् का अमृत-पुत्र है और इस लिए उसका महत्त्व है।

फोर्ड कम्पनी के एक मज़दूर ने उन का भाषण सुन तथा पढ़ कर कहा—"श्री फोर्ड बिल्कुल ठीक कहते हैं। वे ठीक व्यवस्थापक हैं।"

जब मज़दूर से पूछा गया कि तुम उन को अच्छा क्यों

समझते हो तो वह बोला—"वे ही एक ऐसे व्यक्ति हैं जो ड्योढ़ी मे से हो कर जाते समय मुझे बुला कर जाते हैं। उन बड़े आदमियों मे से बहुत-से तो मुझ पर ध्यान ही नहीं देते।"

इस से स्पष्ट है कि लोग चाहते है कि दूसरे लोग उन मे दिलचस्पी ले। वे भिखारी बन कर दान लेना नहीं चाहते। यह सच है कि प्रत्येक व्यक्ति आजीविका कमाना और अच्छा पारिश्रमिक पाना चाहता है। परन्तु वह रुपये से भी बढ़ कर कुछ और भी पाना चाहता है। वह अपने साथ इस रीति से व्यवहार किया जाना चाहता है, जिस से वह अपनी स्वतंत्र प्रतिष्ठा को बनाए रख सके। यह प्रतिष्ठा रखना उस का अधिकार है। यह इस बात को कहने की दूसरी रीति है कि सब लोग चाहते है कि उन से प्रेम किया जाय। प्रत्येक मनुष्य चाहता है कि उसे नौकर के स्थान मे चौकीदार या जमादार कहा जाय।

मजदूर के अधिकार तथा कर्त्तव्य

एक ओर धर्म भीरु मजदूर को चाहिए कि वह उन सब इकरारो को ईमानदारी के साथ पूरा करने का उद्योग करे जो उस के और मालिक के बीच न्याय-सगत रूप से, बिना किसी दबाव या गडबड़ के, किए गए है। मालिक को डराए-धमकाए बिना उसे न्यायसंगत तथा समुचित पारिश्रमिक स्वीकार कर लेना चाहिए। उसे अपरिमित रूप से बढ़े हुए पारिश्रमिक के लिए आंदोलन नहीं करना चाहिए, जिस से कि कहीं वह उद्योग आर्थिक संकट मे न पड जाय और मालिक तथा मजदूर दोनों को विपत्ति मे न डाल दे। उधर धर्म-भीरु मालिक को चाहिए कि मजदूरों के साथ

स्वतंत्र मनुष्यों का ऐसा व्यवहार करे, उन्हें स्वामित्व, लाभ तथा प्रबंध में साँझेदार समझे। इस प्रकार मजदूर और मालिक दोनों दायें-बायें की अतियों से बच सकते हैं।

मालिकों को चाहिए कि वे अपने मज़दूरों से उनकी शक्ति से बाहर काम न लें और न उनको ऐसे काम मे लगाएँ जो उनके लिङ्ग (सेक्स) या आयु के अनुकूल नहीं। मालिक का प्रधान कर्तव्य प्रत्येक मनुष्य को वह देना है जो न्यायसंगत है।

प्रबंधक या मालिक लोग क्योंकि अधिक लाभदायक स्थिति में होते हैं इस लिए उनका कर्तव्य तथा दायित्व अधिक होता है। जिस भी देश मे प्रबंधकर्त्ता या मालिक लोग श्रमिकों की सुरक्षा नहीं कर सके वहाँ उन्हों ने अपने ही विनाश के लिए खाई खोद ली है।

श्रम तथा पूँजी मे शान्ति और सद्भाव बनाए रखने के लिए कुछ सुझाव आगे दिये जाते हैं—

१. गवर्नमेण्ट, सार्वजनिक कल्याण की रक्षिका के रूप मे, न्याय की चौखट के भीतर यथासंभव कम से कम हस्तक्षेप करे।

२. काम करने वालों को खासी मजदूरी मिले। उनको उत्तम भोजन-वस्त्र मिले। उनके रहने के लिए मकान अच्छे हो।

३. बच्चों से हानिकारक मज़दूरी न कराई जाए।

४. काम करने वालो के स्वास्थ्य को रक्षा की जाय।

५. लोगों को न्याय का विश्वास दिलाया जाय। राज्य औद्योगिक टक्कर के कारणों को दूर करे और झगडों का नियंत्रण करे।

६. बच्चों से मजदूरी लेना बंद कर दिया जाय। काम के घंटे घटा दिया जायें। प्रत्येक मजदूर को कम से कम उतनी मज़दूरी

या पारिश्रमिक दिया जाय जिससे उसका भली भाँति निर्वाह हो सके।

७ उद्योग के उत्पादन की न्याय-संगत बाँट हो।

८ दरिद्रता को दूर किया जाय और शीघ्रता से होने वाले आर्थिक उतार-चढ़ाव से मजदूर की रक्षा की जाय।

६ भूख, बेकारी, गंदे घर और अपर्याप्त शिक्षा को दूर करने के लिए मशीन का उपयोग किया जाय।

१० पूँजीपति अपने को पूँजी का मालिक नहीं, मोदी समझे, वह लाभ मे से मजदूर के पारिश्रमिक से अपने लिये थोड़ा अधिक भाग ले कर शेष सब लाभ मजदूरों को बाँट दे। पूँजी और श्रम को एक दूसरे की आवश्यकता है। एक का काम दूसरे के बिना नहीं चल सकता।

इस पद्धति मे उतना दोष नहीं जितना मनुष्य के लोभीपन मे है। मालिक और मजदूर के बीच सदा थोड़ा बहुत अन्तर रहेगा। यह अन्तर या भेद दोनो पक्षो की किसी प्रकार की गम्भीर हानि के बिना भी रह सकता है, परन्तु नियम यह है कि ईमानदारी, शालीनता और मनुष्य की ईश्वर-प्रदत्त महत्ता का स्वीकार हो। अधिकार तथा दायित्व को पारस्परिक रूप से मान लिया जाय। अर्थात् दोनो पक्ष नियमो के अनुसार खेल खेले।

मार्क्स् वादी लोग प्रचण्ड रूप से आग्रह करते हैं कि पूँजी और श्रम आवश्यक रूप से एक दूसरे के शत्रु है। उनका यह विचार भारी भूल है कि एक वर्ग स्वाभाविक रूप से दूसरे वर्ग का शत्रु है। यह मत कि निसर्ग चाहता है कि धनी और निर्धन सदा आपस मे लड़ते रहे, इतना झूठा तथा अयुक्तिसंगत है कि सचाई इसके ठीक उलट है। जिस प्रकार मानव-शरीर का सुडौल-पन देह के अंगों की सुव्यवस्था का परिणाम होता है, उसी प्रकार

राज्य मे निसर्ग की व्यवस्था है कि ये वर्ग एकतानता तथा मेल से रहें। वे एक दूसरे मे इस प्रकार ठीक बैठें कि जिससे राजनीति रूपी देह का संतुलन बना रहे।

एक को दूसरे का प्रयोजन है। पूँजी श्रम के बिना और श्रम पूँजी के बिना काम नहीं चला सकता। जब इस सुखद मेल को नष्ट कर दिया जाता है तब आर्थिक गड़-बड़ इसका अनिवार्य परिणाम होता है। वायना मे मार्कसवाद पर चलने से उद्योग-धन्धे लाभ के स्थान मे हानि उठाने लगे हैं।

पूँजीवाद उद्योग को लाभदायक बनाने की एक सरल क्रिया थी। वायना पर जब कम्यूनिज्म का प्रभाव पड़ा तो रूसियों ने कोई पूँजी अलग न रखी, मन्दी तथा घिसाव के लिए कोई रिजर्व न रखी, कार्यतः, कोई नया धन न लगाया। उन्हों ने राजनीतिक उद्देश्य से मजदूरी बढ़ा दी। इससे सारा उद्योग बैठ गया। उद्योग से तैयार वस्तुओं का मूल्य गिर जाने और मजदूरी की दर बढ़ जाने का ऐसा परिणाम होना अनिवार्य ही था। उस समय रूस के उद्योग ऋण-ग्रस्त थे। वायना के उद्योग बैठ जाने से वे रूस के उद्योगों के ऋणी हो गये। पूँजीवाद और साम्यवाद का गठजोड़ अच्छा प्रमाणित नहीं हुआ।

इसके विपरीत उन संस्थाओं तथा संगठनों के द्वारा जो दोनो के दृष्टि कोण को बड़ी समझदारी के साथ प्रस्तुत करते हैं श्रम तथा पूँजी को एक दूसरे के बहुत निकट लाया जा सकता है। और अमेरिका आदि देशों मे लाया भी गया है।

एक की अपेक्षा यह कहीं अच्छा है कि दो इकट्ठे हों। इससे एक दूसरे को उनके समाज का लाभ रहेगा। यदि एक गिरेगा तो दूसरा उसे थाम लेगा। जो अकेला है उसके लिए शोक है,

क्योंकि जब वह गिरता है तब उसे थाम कर उठाने वाला कोई नहीं होता।

अमेरिका मे श्रमिक संगठन सामूहिक सौदा करने वाली एजंसियो से भी कुछ बढ़ कर है। वे नाना प्रकार के काम करते है। उनमे आर्थिक कुशल-मंगल और सामाजिक तथा राजनीतिक शिक्षा आदि कामों पर क्रम से विचार किया जाता है।

१. आर्थिक--प्रत्येक ट्रेड यूनियन का उद्देश्य ठीक ही आर्थिक समझा जाता है। इस के द्वारा मजदूर अपने प्रतिनिधि चुनते है जो मालिक या उसके प्रतिनिधि के साथ बैठ कर काम करने के नियमों, काम के घण्टों, पारिश्रमिक, पेंशन, रीटायरमेण्ट, अनफिट हो जाने तथा अन्य तत्संबंधी नियमों पर विचार तथा निश्चय करते है। इन ट्रेड यूनियनो के द्वारा अमेरिका मे भी एक श्रमिक के लिए शान के साथ काम करना, अपने रहन-सहन का स्तर ऊँचा करना, एक स्वतंत्र लोक-राज में एक स्वतन्त्र मनुष्य के उपयुक्त मानदंड स्थिर करना सम्भव हो गया है।

२. कुशल-मंगल--यद्यपि आर्थिक कामट्रेड यूनियन का सर्वोत्तम काम है, तो भी वे केवल यही काम नहीं करते। अनेक यूनियन कुशल-मंगल तथा धमार्थ संगठन भी है। वे अपने रोगी सदस्यों की सेवा के लिए, उन के मृतकों को यथोचित रीति से गाड़ने, रोगी सदस्यों के परिवारोंके लिए इश्यूरेन्स कराने, दाँतों, आँखों तथा दूसरे रोगों मे डाक्टरी सहायता देने के लिए फण्ड अलग रखते हैं।

३. शिक्षा—अनेक ट्रेड यूनियन अपने सदस्यों तथा उनके परिवार को नि:शुल्क ट्रेनिङ्ग दिलाते और सांस्कृतिक कार्य करते है।

इस शिक्षा में केवल सदा क्लासें ही नहीं लगाई जातीं, वरन् उन्हें सिखाया भी जाता है कि सच्चा कार्यकारी यूनियनिस्ट कैसे बन सकता है। उन में संगीत तथा नाटक की क्लासे हैं। इतिहास तथा अर्थ-शास्त्र की पढ़ाई, बास्कटबाल, बोलिङ्ग तथा अन्य खेलों का भी प्रबंध है। वहाँ साहित्यिक समाज है और सार्वजनिक भाषण करने की कला सिखाने का भी प्रबन्ध है। उन की अपनी पंचायत या न्याय-सभा है।

सारांश यह कि ट्रेड यूनियन अपने सदस्यों की सब प्रकार की कमी को पूरा करने का यत्न करते हैं।

४. बिरादरी— अनेक यूनियनिस्ट अपनी बिरादरी के जीवन में सक्रिय भाग लेते हैं। वे गाड़ी में बैठ कर रेडक्रास सोसायटी के लिए फण्ड इकट्ठा करने जाते है। वे रोगियों, अंधों, निर्धनों तथा अपराधियों को देख-रेख के लिए धन इकट्ठा करते हैं। वे दूसरे संगठनों तथा स्थानीय कर्मचारियों के साथ कम्यूनिटी एजंसी बनाने में सहयोग देते हैं।

५. राजनीतिक—नागरिक तथा आर्थिक जीवन के साथ ट्रेड यूनियन का गहरा सम्बन्ध है। इसलिए इन यूनियनों का राजनीतिक काम भी है। वे विशेष कानूनों पर बल देते रहे हैं और देते है—जैसा कि कम से कम पारिश्रमिक कितना होना चाहिए, बच्चों से मज़दूरी न कराई जाए, काम के घण्टों की सीमा और विशेषतः स्त्रियों के लिए जेल में मजदूरी और मज़दूर तथा मालिक के सम्बन्ध के आधार के विषय में एक्ट। इनके अतिरिक्त वे उन दूसरे सामाजिक कानूनों में भी गहरी दिलचस्पी रखते हैं, जिन का अमेरिकन मजदूरों के दैनन्दिन जीवन के

साथ सम्बन्ध है—उदाहरणार्थ, घर और गलियो को साफ रखने, हेल्थसर्विस तथा विदेश नीति आदि के सम्बन्ध में कानून।

ये यूनियन श्रमिक समाज की वाणी है। वे जहाँ एक ओर श्रमिकों के हितो की रक्षा करते है वहाँ दूसरी ओर उनके मनोभाव को भी ठीक करते है। वे उन को मालिकों से अनुचित माँगें करने और वैमनस्य फैलाने से भी रोकते है।

कम्यूनिस्ट लोग इन ट्रेड यूनियनों मे घुस कर इन के काम को बिगाड़ना चाहते हैं। ये लोग सब से पहले फ्रीट्रेड यूनियनिज्म का गला घोंटते है। वे यूनियन को तो शायद रहने दें, पर उस के काम को नष्ट कर देंगे, क्योंकि वे जानते है कि यह उन के अत्याचार को रोकता है।

इसलिए लोक-राज के शत्रु, कम्यूनिस्ट तुरन्त मजदूर से हड़ताल करने और ऊँची मजदूरी तथा काम करने की अच्छी दशाएँ माँगने के अधिकार को कानून-विरुद्ध ठहराते है। जो मजदूर उन का विरोध करते हैं उन को कम्यूनिस्ट लोग तुरन्त नमक की खानो और कनसण्ट्रेशन कैम्प मे भेज देते है। हड़ताल करने का विचार रखने वाले मजदूरों को रात के अंधेरे मे चुप-चाप उठा कर ऐसी जगह ले जाया जाता है जहाँ से वे फिर इस दुनिया मे नहीं आते। दूसरे दिन उन के आत्मीय जनों को सूचित कर दिया जाता है कि उन्हों ने आत्म-हत्या कर ली है।

बर्लिन मे कुछ जर्मनों ने हड़ताल करने की धमकी दी, तो रूसियों ने उन्हे सायबेरिया मे निर्वासित कर देने का आदेश दिया। बस, हड़ताल समाप्त हो गयी। रात को सैर के बहाने

वे जर्मन मज़दूरों के नेता को न मालूम कहाँ ले गए। यह हड़ताल अच्छा भोजन पाने के लिए होने को थी।

इन मज़दूर-संघों में घुस कर कम्यूनिस्ट लोग शनैः-शनैः अपना विषाक्त प्रचार फैलाते हैं। वे यूनियन मे नेता बन जाते हैं। कारण यह कि वे यूनियन में एक निश्चित लक्ष्य लेकर आते हैं और उस ध्येय की प्राप्ति के लिये मन लगा कर निरंतर काम करते हैं। उनमें अपने विध्वंस कार्य तथा अंधकार फैलाने का उत्साह होता है। इसलिये उनको सफलता हो जाती है। वे रचनात्मक कार्य नहीं करते, क्योंकि यह कठिन होता है।

किसी काम को बिगाड़ना जितना सरल है, उतना उसे बनाना नहीं।

जो लोग इन यूनियनों का सुधार करना चाहते है उन्हे इन यूनियनों मे घुस कर एक रात में ही उनको सुधार डालने की आशा नहीं करनी चाहिए। उन्हे उनमें प्रवेश करके पहले वहाँ की स्थिति का भली-भाँति अध्ययन करना चाहिए।

यदि आप ट्रेड यूनियनों की मीटिङ्गों मे भली-भाँति भाग नहीं लेगे, तो याद रखिये स्वतंत्रता तथा लोक-राज के शत्रु वहाँ उपस्थित होंगे। ट्रेड यूनियन में उनका बल बढ़ जाने से एक भीषण रूप से शक्तिशाली शस्त्र उनके हाथ मे आजायगा। इस शस्त्र से वे उद्योग तथा व्यापार को राष्ट्रीय सकट के समय निर्जीव बना सकते हैं। स्वतंत्रता तथा राष्ट्रीय कल्याण की जो बड़ी भारी शक्ति है उसे ही वे डिक्टेटरशिप तथा अकल्याण में बदल देना चाहते हैं।

हमारे देश-बंधुओं को रूस के कम्यूनिस्टों की अंधा-धुंध नकल नहीं करनी चाहिए। उनकी जो बातें हमारे लिए लाभदायक सिद्ध हो सकती है उन्हीं को लेना चाहिए। अधानुकरण से देश में गड़बड़ तथा विध्वंस नहीं फैलाना चाहिए। विध्वंसात्मक कार्यों की अपेक्षा इस समय भारत को रचनात्मक कार्य की अधिक आवश्यकता है। मजदूरों की हड़ताले कराना कुछ भी कठिन नहीं। कठिन है, श्रम तथा पूञ्जी का इस प्रकार मेल कराना जिससे दोनों का कल्याण और देश का उत्थान हो।

एक छोटा सा काम भी आश्चर्य-जनक परिणाम उत्पन्न कर सकता है। श्रम तथा प्रबध दोनो समाज मे आवश्यक काम करते हैं। एक दूसरे का पूरक है। माल की तैयारी तथा वितरण मानवी-जीवन के लिए दोनो उपयोगी हैं। वे एक ही शरीर के अन्योन्य आश्रित अंग हैं। इसलिये जो बात एक के लिये अच्छी है वही दूसरे के लिये भी हितकर है। जो एक के लिये हानिकारक है वह दूसरे के लिये भी है। श्रम तथा प्रबंध का यह पवित्र तथा सुनिश्चित कर्त्तव्य है कि वे आर्थिक रचना की प्रगति के लिये प्रारम्भिक सहयोग दे। इससे प्रत्येक व्यक्ति अपना सामाजिक न्याय का कर्त्तव्य पालने के योग्य होगा। अर्थात् वह सार्वजनिक कुशल-मंगल के लिये अपने भाग के विशिष्ट कार्य की सेवा कर सकेगा।

न्याय सद्भावना, धर्म-निष्ठा और न्याय-युक्त व्यवहार का

सच्चे हृदय से प्रयोग—ये ऐसे साधन हैं जिनके विना मनुष्य के स्वाभाविक अधिकार का समुचित उपयोग नहीं हो सकता। इसी से स्वतंत्र भारत का भविष्य उज्ज्वल हो सकता है। राष्ट्रीय जीवन मे शालीनता, शिष्टता तथा विवेक लाने की आवश्यकता है, न कि श्रम तथा प्रबंध को आपस मे लड़ाने की।

लेखन-कला

बहुजन समाज को अपने विचार का बनाने और जनता के सम्पर्क मे आने का एक बड़ा साधन लिखना भी है। सच्चे लोक-सेवक को इस लिए लेखन-कला का भी सहारा लेना चाहिए।

इस संसार मे कोई काम किए जाने के पहले सदा विचार होता है। सब से पहले गुटन बर्ग ने मुद्रण-यंत्र बनाया था। तभी से विचार बहुत अधिक अनुपात मे प्रेरित होते रहे हैं। एक मनुष्य किसी पुस्तक, किसी पत्रिका या किसी समाचार-पत्र में अपना विचार लिख देता था और वह सर्वत्र फैल जाता था। आज यही काम चल-चित्र, रेडियो तथा टेलीवीजन से लिया जा रहा है। आज से कुछ शताब्दी पूर्व विचार फैलाने का एकमात्र साधन मुख था। मुँह से बोल कर ही विचार दूसरों तक पहुँचाए जाते थे। व्यापारी अपने ग्राहक को, सिपाही अपने परिवार को, और मण्डी मे सौदागर अपने गिर्द इकट्ठे हो जाने वाले लोगों को अपना संदेश मुख से बोल कर ही देता था। पर आज यह बात नहीं। आज अमेरिका मे एक व्यापारी कोई बढ़िया तेल, साबुन, कपडा या मोटर तैयार करता है। वह समाचार-पत्र में विज्ञापन दे देता है या रेडियो पर भाषण करता है। दूसरे ही दिन उस के माल का नाम, गुण तथा मूल्य का ज्ञान पेरिस, दिल्ली, टोकियो तथा दक्षिण अमेरिका के लोगों को हो जाता है। यह आधुनिक विज्ञान का चमत्कार है। शब्द के जादू को विज्ञान बहुत अधिक बढ़ा देता है।

शब्द भलाई भी कर सकते है और बुराई भी। जर्मनी में हिटलर ने प्रापेगण्डा से चापलूसो से जनता को फँसा लिया। पुस्तको, पत्र-पत्रिकाओ, चल-चित्रों और रेडियो द्वारा प्रापेगण्डा कर के उस ने सारे संसार को जीत लेने के हरे बाग जर्मन लोगों को दिखलाए। शस्त्रों की शक्ति उस ने बाद को पाई, पहले उसने लोगों के विचार को अपने वश मे किया।

लिखित शब्द हम पर अपना संस्कार छोड़ जाते है। व्यक्ति के रूप मे वे हमारे विचारों को प्रभावित करने, हमारी कृतियों को गढ़ने, हमारे निर्णय को सुनिश्चित करने और हमारे कामों का नियंत्रण करने में सहायता देते हैं।

बुरे साहित्य को लेने से इन्कार करना ही पर्याप्त नहीं। उस के स्थान मे अच्छा साहित्य भी उत्पन्न करना चाहिए। बुरा भोजन खाने से किसी को मना करना व्यर्थ है, जब तक उस के स्थान में अच्छा भोजन तैयार कर के उसे न दिया जाय।

अच्छे लोग पुस्तके लिखे। वे लेख द्वारा अच्छे विचारो का प्रचार करे। वे असत्य के स्थान मे सत्य-व्यवहार, बहुजन-सम्मोहन के स्थान मे व्यक्तिगत दायित्व और केवल मन-मानी के स्थान मे ठोस विचार फैला कर संसार को बदल सकते है।

शब्द विचार-जगत् के सिक्के होते है। शब्दों मे ईमानदार होना रुपये मे ईमानदार होने से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है।

लोक-सेवक का मन सचाई पर केन्द्रित होता है। इस लिए उस के शब्द सरलता तथा उस के उद्देश्य की पवित्रता लिए होगे। वह एक टापू होगा जिस मे उस के स्पष्ट तथा ईमानदार शब्द उस टापू को आच्छादित करने वाले सदेह तथा माया के कुहरे मे प्रकाश के सदृश चमकेगे।

लेखक ऐसे लोग होने चाहिएँ जिन मे सार तथा वास्तविकता हो, जो निर्दोष हों और स्वस्थ मूल्य वाले हों। ऐसे लोगो की संसार मे अब भी कमी नहीं।

हमारे इस संसार मे जहाँ बहुजन-समाज का परस्पर संपर्क है, मनोभावो तथा अभिमतों का आदान-प्रदान होता रहता है। व्यवसाय के लिए लिखना मनुष्य को मनुष्य से मिलाने वाली एक सुदृढ़ शृङ्खला है। अपनी लेखनी द्वारा उत्तम तथा प्रेम प्रीति के विचार फैला कर आप आपस मे लड़ने वाले दो व्यक्तियो और राष्ट्रो को शांत कर के एक-दूसरे का मित्र बना सकते है। इस के साथ ही लेखक चालाकी से संदेह तथा घृणा के बीज बो कर दो मिले हुए सिरो को भी एक दूसरे से अलग करके आपस मे लड़ा सकता है।

सच्चा लोक-सेवक, यदि उस मे इस काम की योग्यता हो, लिखने को अपना व्यवसाय बना कर बड़ी भारी लोक-सेवा कर सकता है। परमेश्वर ने यह योग्यता या लेख लिखने की बुद्धि। इतनी अटकल पच्चू नहीं बाँटी जितनी कि उदारता पूर्वक बाँटी है। साधारण मनुष्य समझे हुए है कि भगवान् ने विशेष-विशेष व्यक्तियो को ही लिखने की योग्यता प्रदान की है, इस लिए बहुत थोड़े भाग्यशाली व्यक्ति ही लेखक बन सकते है। पर यह धारणा सर्वथा निर्मूल है। भगवान् ने बड़ी उदारता-पूर्वक मनुष्यो को इस योग्यता का दान दिया है। अच्छे विचार वाले नये लेखकों की सदा आवश्यकता रहती है। प्रत्येक मनुष्य थोड़ी बहुत योग्यता तथा दृढ़ प्रयत्न से कुछ न कुछ लिख सकता है, चाहे लिखना उसका व्यवसाय न भी हो। पर हमारी यह प्रतिज्ञा नहीं कि दस-पाँच दिन लिखने का अभ्यास करने से ही या लेखन

कला पर एक आध पुस्तक पढ़ लेने से ही कोई व्यक्ति इतना योग्य लेखक बन जाता है कि उसके लेखों के लिए पत्र-पत्रिकाएँ उसे पुरस्कार देने लग जायँगी।

लिखने के कुछ आधार भूत सिद्धान्त हैं, जिनका जानना आवश्यक है। इनकी सहायता से लिखना अपेक्षाकृत सरलता पूर्वक सीखा जा सकता है। परन्तु साहित्य की प्रत्येक शाखा के अपने विशेष नियम होते है। लेखक को समझदारी तथा अनुभव प्राप्त करने के लिए कई वर्ष लगते है। जहाँ तक कला का संबंध है यह सीखने से नहीं आती। साहित्य का प्रत्येक टुकड़ा कारीगरी की अपनी मौलिक समस्या प्रस्तुत करता है। प्रत्येक गायक तानसेन नही हो सकता। परन्तु सगीत के लिए कन्सर्ट से बाहर भी स्थान है।

हम मे से बहुत लोग प्रधान मन्त्री या उपमंत्री बन कर ही काम करना चाहते है, जब कि उन्हे अफिस-बॉय बन कर कार्य आरम्भ करना चाहिए था। सहस्रों अच्छे लेखकों के लिए गुंजायश है। परन्तु दूध पर मलाई की तरह उनमे से थोड़े ही अपने व्यवसाय के शिखर पर पहुँचेगे।

प्रत्येक मनुष्य, चाहे वह प्रसिद्ध हो या अप्रसिद्ध, उसकी गिनती है। आप मे से किसी के लिए लेखन की एक शाखा उपयुक्त होगी और किसी के लिए दूसरी शाखा।

लेखन के दो बड़े विभाग है—एक परिकथा और दूसरा गम्भीर साहित्य। परिकथा का सम्बन्ध आविष्कृत या कल्पित परिस्थितियों से होता है और इसके अन्तर्गत कहानी, नाटक, कविता आदि हैं। इसमें भावना और मानसिक आवेग का प्राधान्य रहता है।

गम्भीर साहित्य मे सत्य घटनाएँ या प्रतिज्ञा किए गए तथ्य या उन सत्य घटनाओ की व्याख्या रहती है। इन दो विभागों मे से गम्भीर लेखन अपने विचारों को प्रकट तथा प्रमाणित करने की अधिक सरल तथा अधिक सीधी रीति है । परन्तु इस का यह अर्थ नहीं कि गम्भीर लेखन ही एक मात्र या सब से कार्यकारी रीति है। कहानी, बहुधा अधिक सूक्ष्म होने के कारण, बहुधा अधिक प्रभाव-शाली और प्रबल हो सकती है। इन मुख्य विभागों के आगे और भी उपविभाग है—यथा लघु कथा तथा स्केॅच।

जहाँ अंधकार है वहाँ प्रकाश फैलाने के लिए लोक-सेवक के लिए निम्नलिखित रीतियां उपयुक्त होती है—

१. समाचार-पत्रों और चल-चित्रों में मोटे अक्षरो मे फीचर तथा कहानी देना।

रेडियो तथा चल-चित्रों का प्रयोग। इस व्यवसाय को सीखने के लिए आयु की बड़ी बात है। इने बहुत छोटे पद से आरम्भ करके शिखर पर पहुँचना होता है।

विशेष सभाओ तथा संस्थाओं के पत्र छोटे होते हुए भी अपने पाठकों पर भारी प्रभाव रखते है—यथा आर्य-समाज, राधा-स्वामी सत्संग, देव-समाज, सनातनधर्म, खालसा पथ के मुख पत्र। इन संगठनों के मुख पत्रों के ग्राहक दूसरे पत्र बहुत कम पढ़ते हैं। लेखक के लिए भाषा का ज्ञान तथा मानव प्रकृति को समझना, ये दो बड़ी योग्यताएं हैं। लेखक के लिए लोगों को पसन्द करना और जिन के लिए वह लिख रहा है उनके प्रति सच्चा सम्मान रखना आवश्यक है। यदि पत्र-सम्पादक समझता है कि मैं कार्य-कर्ताओं से कोई भिन्न प्राणी हूं तो वह अच्छा सम्पादक नहीं हो सकेगा।

अमेरिका के "लाइफ", इंग्लैंड के "ग्राफिक" तथा बम्बई के "इलस्ट्रेटेड वीकली" में ऐसे रूप में व्यङ्ग चित्र देने चाहिएँ जो आँख तथा मस्तिष्क दोनों को मोहित कर सकें।

लिखते रहने से ही लिखना आता है। अभ्यास करते रहने से जड़मति भी सुजान हो जाता है। हाँ, कुछ लोगों में ईश्वर-प्रदत्त योग्यता तथा रुचि भी होती है। परन्तु अधिकांश लोग इसे अभ्यास द्वारा ही प्राप्त करते है।

पुस्तके नाना प्रकार के लोगों के लिए लिखी जाती हैं। लिखते रहने से अनुभव प्राप्त हो जाता है।

आप को देखना चाहिए कि किस प्रकार की पुस्तकों की माँग है, और कि परिश्रम करने वाले तथा सृजनात्मक ग्रन्थकार के लिए कितना अवसर है।

रेडियो एक दिन सुनने से ही लोग उतने विचार प्राप्त कर लेते है जितने वे पुस्तके तथा समाचार-पत्र कई दिन पढ़ते रहने से भी नहीं प्राप्त कर सकते।

रेडियो का काम सदा किसी छोटे रेडियो स्टेशन से सीखना आरम्भ करना चाहिए। आप शब्दों का संसार बनाते है।

प्रत्येक लेखक और प्रत्येक मछली पकड़ने वाला सफल नहीं होता। परन्तु यदि आप उचित स्थान ढूँढ़ने का यत्न नहीं करेंगे, तो आप को अपने लक्ष्य पर पहुँचने का सुयोग नहीं मिलेगा।

छोटे से छोटे पद को स्वीकार करके वहाँ काम आरम्भ करने मे अपना अपमान न समझिए।

यदि आप अच्छे लेखक बनना चाहते है, तो केवल रुपया कमाना ही आप का उद्देश्य नहीं होना चाहिए। आप का लक्ष्य

ऊँचा होना चाहिए। कोई उच्च आदर्श ही आप के सामने रहे। जिस लेखक का उद्देश्य केवल रुपया कमाना है वह जीर्ण हो जाएगा। रुपया आवश्यक है, पर यदि आप धीमी तथा कष्टदायक प्रक्रिया में, जो सफलता तक पहुँचने वाले लेखकों के लिए परम आवश्यक है, स्थिर बना रहना चाहते हैं, तो आप का उद्देश्य उच्च होना अनिवार्य है। किसी भी प्रकार का बड़े से बड़ा पारिश्रमिक आप को अपने उद्देश्य से गिराने न पावे। आप किसी बदला पाने के भाव से उत्तेजित न हों। आप अपने मनुष्य-बन्धुओं की सेवा कर रहे हैं, यह ज्ञान कठिन रुकावटों के सामने भी काम को उत्साह के साथ जारी रखने में सहायक होगा। अच्छे डाक्टर का उद्देश्य, उस अनुभव द्वारा जो उसे प्राप्त हुआ है, दुःख को दूर करना होता है। इसी प्रकार योग्य लेखक भी दूसरों के साथ उन आदर्शों की बाँट के लिए उत्सुक रहता है जो उसके अपने जीवन में प्रधान रहे हैं और जो उसे सुखद तथा लाभदायक लगे हैं।

लेखक वे लोग बनते हैं जिन के पास कुछ कहने के लिए होता है, जिन में दूसरों से भी अपने ही सदृश विचार कराने की प्रबल लालसा रहती है।

यदि आप के पास कोई उद्देश्य हो तो आप के पास बल है। आप साहित्य में नई प्रवृत्ति उत्पन्न कर सकेंगे। जिस लेखक के पास कल्याण करने की उच्च-अभिलाषा होती है, वह अवश्य ही उस नैराश्य से ऊपर उठ जाता है, जिस का मुख उन लोगों को देखना पड़ता है जिन का उद्देश्य एक मात्र अपनी ही भलाई रहता है।

लेखन-कार्य निःस्वार्थ भाव से केवल अपने मन की प्रसन्नता के लिये भी किया जा सकता है। यह एक ऐसा काम तथा सजीव

प्रार्थना हो सकती है जो आप को तथा दूसरों को पवित्र बना देगी।

आप ने जो कुछ लिखा है उसे जिन लोगों ने पढ़ा है उन से कुछ लेने की बजाए उन्हे देने में आप को अधिक दिलचस्पी होगी। आप संसार से लेने के स्थान मे उसमें कुछ डालने पर अधिक विचार करेंगे। आशा आप को निराशा से ऊपर उठा देगी। यह निराशा आरम्भ में अच्छे से अच्छे लेखक को भी पेश आती है। आपको रचनात्मक काम के गहरे तथा चिरस्थायी आनन्द का ज्ञान हो जाएगा और आप उस आनन्द को अपने मनुष्य-बन्धुओं के निकट लाने मे एक वास्तविक भाग लेंगे।

अच्छा साहित्य दो घण्टों में २५०० शब्द घसीट डालना नहीं। अच्छे, सच्चे तथा सुन्दर विचार दुनिया को देने के उद्देश्य से लिखने मे समय लगता है। किसी भी कला मे निपुण होने के लिए अभ्यास की आवश्यकता होती है। अनेक सफल लेखक आत्म अनुशासन को अनिवार्य मानते है। इस अनुशासन के बिना कोई भी व्यक्ति सफल लेखक नहीं बन सकता।

इस लिए अपने को प्रतिदिन कम से कम कुछ पंक्तियाँ लिखने पर विवश कीजिए। तभी आप प्रगति कर सकेंगे। इसके साथ ही संयोग से आप अच्छा लिखना भी सीख जाएँगे। आप इस गुण को एक अमोल सम्पत्ति पायेंगे।

लिखने के समान पढ़ना भी उतना ही महत्त्व-पूर्ण है। एक प्रसिद्ध लेखक ने एक बार कहा था कि एक अच्छा ग्रन्थकार एक घण्टा लिखने के लिए छः घण्टे पढ़ता है।

प्रथम कोटि का साहित्य पढ़िए। ऐसा प्राचीन साहित्य पढ़िए जिसे उसके अच्छा होने के कारण काल नष्ट नहीं कर सका। प्राचीन के साथ-साथ अर्वाचीन साहित्य भी पढ़िए। आधुनिक लेखकों की

भी वही रचनाएँ पढ़िए जो सर्वोत्तम है। विदेशी भाषाओं के उत्तमोत्तम ग्रंथो के अनुवाद पढ़िए, ध्यान देकर पढ़िए। अच्छे लेखक का भाव तथा स्वर अपने मे सीख लीजिए। उसकी टेकनीक, रचना-शैली तथा पटुता का सूक्ष्म अध्ययन कीजिए। पटुता और रचना की श्रेष्ठता अभ्यास से ही प्राप्त होती है।

एक औपन्यासिक कहता है—"एक अध्यापक के रूप मे मेरा अनुभव है कि साहित्यिक योग्यता तथा बुद्धि दुर्लभ या असामान्य नहीं, वरन् सामान्य तथा व्यापक है। हम मे उतनी दक्षता और पटुता का अभाव नहीं जितना कि लिखने की इच्छा का।"

एक बड़ा संपादक कहता है—"संसार मे बहुत से लोग ऐसे है जो लिख सकते है, परन्तु उनमे इस काम मे लगा रहने का साहस नहीं। ऐसे लोग भी बहुतेरे है, जिन मे साहस है, परन्तु जो लिख नहीं सकते।" जब आप मे ये दोनों बाते—लिखने की योग्यता तथा इसमे दृढ़ता पूर्वक लगा रहने का साहस इकट्ठी होंगी, तो इस संसार मे कोई भी चीज आप को सफल होने से न रोक सकेगी।

किसी विशेष वर्ग के लिए ही नही सब किसी के लिए लिखिए। अधिकांश नये लेखक किसी दूसरे को नहीं, वरन अपने आप को ही प्रसन्न करने के लिए लिखते है। उनके सफल लेखक बनने मे उनकी यह प्रवृति भारी रुकावट हो सकती है। अपनी कहानियाँ बहुजन समाज को लक्ष्य मे रख कर लिखने का यत्न कीजिए। थोडे से नहीं, वरन् बहुत से लोगों को सुनाने और पढ़ाने के लिए लिखिए।

लेखक का आधार दोहरा होता है—उसके पास कहने के लिए कुछ होना चाहिए और जो कुछ वह कहना चाहता है उसे

बहुत अभ्यास से प्राप्त की हुई योग्यता अर्थात् उसे ऐसे ढंग से कहना जिस से बहुत से पाठक उसे समझ सकें।

सब के लिए लिखना असम्भव नहीं। आप सत्य के साथ समझौता किए बिना भी सब के लिए लिख सकते हैं। सब लोगों के मन लगने वाली बात कहने की कला के सब से विशेषज्ञ बुद्ध तथा ईसा थे। उन का जनता के साथ संपर्क था। वे ऐसे शब्द बोलते थे जिन को लोग समझते थे। जो लोग भाषा, भाव तथा विषय मे उनका अनुकरण करते है वे सफलता के मार्ग पर चलते है।

समकालीन साहित्य बहुधा निःसार, कृत्रिम तथा तुच्छ होता है। उस मे छोटे लोगों तथा छोटी समस्याओं का वर्णन रहता है। कारण यह कि बहुत अधिक लिखने वाला लेखक अपने आध्यात्मिक स्वरूप के विकास की उपेक्षा करके वस्तुओं का ठीक ठीक मूल्य अंकन करने वाली प्रबल बुद्धि से विहीन हो जाता है।

अपनी कहानियों मे महत्त्व प्राप्त करने के लिए आप को पहले मर्यादा तथा अनुपात को समझने वाली बुद्धि को गहरा तथा अचल बनाना चाहिये। लेखक को कुछ होना चाहिए। लेखक के लिए कुछ होना आवश्यक है। इस के बिना वह संसार को कुछ दे नहीं सकता और न ही अपने काम मे सफल हो सकता है।

दैनन्दिन-चिन्तन, ईश्वर-प्रार्थना तथा स्वाध्याय द्वारा विकसित करके हृदय को विशाल तथा बुद्धि को प्रखर बनाया जा सकता है।

परिकथा अर्थात् कथा-कहानी भी ऐसी होनी चाहिए जो लोगों को कोई अच्छा विचार तथा तत्त्व-ज्ञान सिखाए। यद्यपि लेखक का उद्देश्य सिखाना नहीं, वरन् कहानी सुनाना होता है तो भी वह अपनी कहानी मे अनिवार्य रूप से वह वस्तु रख देता है जिस पर

उसका अपना विश्वास होता है। यह विश्वास ही लेखक का अपना स्वरूप, उसकी वास्तविकता होती है।

लेखक के लिए यथार्थता को देखना परम-आवश्यक है। उसे छिछली, ऊपरी तथा आकस्मिक को छोड़ कर महान मौलिक यथार्थताओं पर मन को एकाग्र करना चाहिए। जो लेखक विश्वास करता है कि मृत्यु के साथ ही जीवन का अन्त हो जाता है, जीव का पुनर्जन्म नहीं होता, जो विश्वास करता है कि पेट-पूजा के लिए उचित और अनुचित का विचार छोड़ कर अन्धाधुन्ध प्रयास करना चाहिए, वह संसार को पथ-भ्रष्ट करता है। कारण यह कि वह स्वार्थ-सिद्धि तथा आत्म-पोषण को ही जीवन का उच्चतम नियम मानता है। वही लेखक संसार का उपकार करता है जो मानवी अंश में दिव्य-अंश को जोड़ने का—मानवी अंश को दिव्यांश से पूर्ण करने का—उद्योग करता है। आप अपनी कहानियों में न केवल यह बताइए कि जीवन कैसे बिताना चाहिए, वरन् यह भी बताइए कि जीवन वास्तव में है क्या। आप वे नियम बताएँ जो सम्पूर्ण अस्तित्व के लिए आवश्यक है। मानव-जीवन के मौलिक नियमों का जानना आप के लिए आवश्यक है। इस के बिना आप पवित्र चरित्र की परिस्थिति अथवा नारकीय टक्कर का स्रोत प्रामाणिक रूप से चित्रित नहीं कर सकते है। आपको कार्य द्वारा अर्थात् क्रिया के विशेष ढंगो मे पाठकों को सिखलाना चाहिए कि सुख या दुःख कठोर रूप से कैसे उत्पन्न होता है और किस प्रकार विशिष्ट चरित्र विशेष प्रकार के कार्यों का कारण बन सकते है, जिन से उन के तथा दूसरों के जीवन बदल जाते है—बदल कर अच्छे या बुरे हो जाते हैं।

यथार्थ नाटक वह होता है जिस के प्रधान पात्र प्रक्रिया को

आगे ढकेलते हैं। बड़े बड़े उपन्यासों तथा कहानियों का भी यही विशेष गुण होता है।

यदि आप को संदेह हो कि गम्भीर तथा सारगर्भित लेख को कोई सम्पादक पसंद करेगा या नहीं, तो एक विख्यात सम्पादक की सम्मति सुनिए—"लेख मे कौन बात गुण समझी जाती है? जो चीज लेख को धूल के सदृश शुष्क बनाती है वह है श्रद्धा तथा विश्वास का अभाव। ईश्वर तथा धर्म या यों कहिए कि जन-कल्याण तथा पुण्य मे प्रतिष्ठा ही लेख को उपयोगी तथा लोक-प्रिय बना सकती है।

जब भी कोई बात विश्वास तथा योग्यता-पूर्वक लिखी जा कर छपती है तो जनता उसे अवश्य खरीदती तथा पढ़ती है। लेख मे सद्‌गुण तथा श्रेष्ठता विश्व-जनीन सत्य को पुनः दृढ़ता-पूर्वक कहने से आती है।"

लोक-सेवक को एक लाभ यह है कि वह पुण्य तथा जन-कल्याण मे विश्वास रखता है। वह भगवान् को अपने अंग-संग समझता है। दूसरे लेखको मे इस बात का अभाव रहता है।

इस का अर्थ यह नहीं कि आप केवल धार्मिक विषयो पर ही लिखे। कई लोग धार्मिक विषयों पर लिखते है। परन्तु वे उस मे केवल बौद्धिक रीति से ऐसा संस्कार उत्पन्न करते है कि शायद ये चीजे उन के लिए कुछ अधिक अर्थ नहीं रखतीं। इस प्रकार के लेख पाठकों को आकर्षित नहीं करते। आप को विश्वास तथा श्रद्धा के साथ लिखना चाहिए, न कि केवल विश्वास तथा श्रद्धा के विषय मे। तभी आप का लेख बहुत लोग पढ़ेंगे।

लोगों को पसंद करना सीखिए। जितना अधिक आप लोगो से मिलेगे उतना ही अधिक ईश्वरीय प्रेरणा गर्मी तथा अनुकम्पा

आप के लेखों मे झलक उठेगी। आप जो कुछ भी लिखेगे उसमें प्रत्येक मनुष्य की सुप्त प्रतिष्ठा का आप को विश्वास होगा। जिन लोगो को मनुष्य-समाज का तल-छट कहा जाता है उनमे भी टालमटोल करती हुई चरित्र की उच्चता तथा कुलीनता आप को देख पड़ेगी। आप देखेंगे कि मनुष्य चाहे कितना भी नीच तथा घृणाजनक क्यो न हो, वह सच्चे प्रेम को स्मरण रखता है,—और दूसरों से निर्व्याज प्रेम पाने के लिए लालायित रहता है।

यदि आप मे दूसरों को आत्मसात् कर लेने वाला प्रेम है, सब मनुष्यों को—केवल थोड़े से चुने हुए व्यक्तियों को ही नहीं। यदि आप सब किसी के लिए लिख रहे है, न कि केवल इने गिनों के लिए ही, तो आप के लेख मे गर्मी, मित्रभाव तथा मानवहित-परायणता होगी। इसका सब पर प्रभाव पड़ेगा। यह सब को आकर्षित करेगा। जब भी आप प्राणि-मात्र के लिए बुद्ध जैसी समवेदना तथा स्नेह भाव प्रकट करेंगे तब-तब आप भी प्रत्येक मनुष्य मे देवत्व की झलक उत्पन्न कर देंगे। जिससे भी आप मिलेंगे और जो चीजे आप लिखेंगे उनमे वही अन्तर्दृष्टि प्रकट करेंगे।

रास्ते ने मत छोडिए, वरन् लगे रहिए। तभी आप अच्छे लेखक वन सकेंगे। वर्षों लिखने के बाद ही मनुष्य यशस्वी बनता है। आज जो लेखक बडे प्रसिद्ध हैं और जिनकी पुस्तकें खूब चलती है आरम्भ मे वे भी बिना कोई पारिश्रमिक लिए या बहुत कम पुरस्कार ले कर लिखने लगे थे। आरम्भ मे ही बड़ा पारिश्रमिक पाने वाले बडे लेखक बहुत ही कम हैं। कोई भी डाक्टर वर्ष दो वर्ष मे पटुता तथा प्रसिद्धि प्राप्त नहीं कर लेता। उसके लिए मैडिकल कालेज मे जाकर बरसों अध्ययन करना आवश्यक

होता है। आशावाद तथा निराशावाद की अतियों से बचिए। बहुत से लेखक यह भूल करते हैं कि या तो वे अपनी योग्यता का बहुत ही कम अनुमान लगाते है या फिर समझ लेते हैं कि हमारी पहली ही कृति जग-प्रसिद्ध हो जाएगी।

अन्त मे आप कोई असाधारण लेखक नहीं है। आप शायद कभी सब से ऊँचे लेखक नहीं बन जाएंगे। परन्तु यदि आप कुछ लिख सकते है तो आप उन पचास लाख लेखकों मे से एक हो सकते है जो समाचार-पत्रों, रेडियो, सिनेमा या पुस्तक-निर्माण का काम करते हैं, उन सामान्य लेखकों में से जो अपनी आजीविका चलाते तथा दूसरो के विचार को प्रभावित करते है।

यदि आप सारा समय लिखने का व्यवसाय करने वाले नही बन सकते, तो फालतू समय मे लिखने वाले बन जाइए। अनेक लोग दूसरा व्यवसाय करते हुए भी साथ-साथ लेख भी लिख कर रुपया कमाया करते हैं।

यदि आप को घर-गृहस्थी का अच्छा ज्ञान है, तो उसी विषय को पारिवारिक पत्रिकाओं मे लिख कर दूसरो को भी वही ज्ञान क्यों नहीं देते ? आप का कोई भी व्यवसाय क्यो न हो, आप कोई न कोई ऐसी चीज अवश्य लिख सकते हैं जिस के लिए संसार भूखा है। इस के द्वारा संसार की सेवा करते हुए आप साथ ही पुण्यार्जन भी करेंगे और आप को थोड़ी फालतू कमाई भी हो जाएगी।

यदि कोई सम्पादक लेख छापना अस्वीकार कर दे, तो उस अस्वीकृति से लाभ उठाइये। ऐसी चीज लिखने का यत्न कीजिए

जिसे कोई छापने को तैयार हो। जटिल मार्गों से बचना चाहिए। परन्तु उन से घबराना भी नहीं चाहिए। जिस लेख को एक सम्पादक ने अस्वीकार कर दिया है, हो सकता है, किसी दूसरे पत्र का सम्पादक उसे ही बड़े चाव से छाप दे।

इस लिए किसी लेख के अस्वीकृत होकर लौट आने से हतोत्साह होने की आवश्यकता नहीं। वह लेख किसी दूसरे पत्र-सम्पादक के पास भेज दीजिए। लिखना बंद मत कीजिए।

याद रखिए कि "बीच में छोड़ जाने वाले कभी नहीं जीता करते" लेखकों को यह आदर्श वाक्य सदा मन से धारण किए रहना चाहिए।

लोक सेवकों को सचाई सब लोगों तक पहुँचानी चाहिए, न कि कतिपय के ही पास।

जो मनुष्य अच्छा लेखक बनना चाहता है उसे रचना-प्रणाली (टेकनीक) जैसे तुच्छ और गौण बातों पर ध्यान न दे कर गहराई में उतरने का यत्न करना चाहिए। प्रकृत साहित्यिक व्यक्तित्व के विकास का यही गुर है, सच्चा लेखक बनने का यही आधार है। इस के विपरीत जो मनुष्य साहित्यिक व्यक्तित्व की वृद्धि की उपेक्षा करता है, व्याकरण तथा साहित्य-संबन्धी कितनी ही पालिश उसे लेखक नहीं बना सकती।

लिखने में टेकनीक नाम की कोई चीज नहीं। सभी अच्छे लेखक टेकनीक की परवाह नहीं करते और इसे अस्वीकार कर देते हैं। साहित्य के लिए टेकनीक वैसी ही है जैसे कि धर्म मत के लिए सिद्धान्त। तुच्छ लेखक टेकनीक जैसी तुच्छ बातों से चिमटा रहता है। उसे उस साहित्यिक व्यक्तित्व का संदेह तक नहीं

होता जो कला और साहित्य में सफलता का मूल आधार है। साहित्य के विद्यार्थी केलिएसीखने योग्य पहली बात है—विभिन्न आस्वादों की वानगी लेना और परीक्षा करना। सब से उत्तम आस्वाद मृदुता और कोमलता है। जिस लेखक की रचना मे विचार की गम्भीरता तथा मौलिकता का अभाव है, हो सकता है कि वह सरल शैली मे लिखने का प्रयास करे और ऐसा करते करते अन्त मे मूर्खता की सीमा को पहुँच जाए। केवल ताजा मछली ही उस के अपने रस में पकाई जा सकती है। बासी मछली को राई, मिरच और खटाई आदि मसाला लगाना पड़ता है। मछली जितनी अधिक बासी होगी उतने ही अधिक मसाले की उसके लिए आवश्यकता होती है। यही अन्तर विचारशील लेखक और दूसरों की बातें लेने वाले लेखक मे है। मौलिक लेखक एक ऐसी सुन्दर स्त्री के समान है जिसे अपने शरीर को सजाने के लिए गहने और पोडर की आवश्यकता नहीं। जिस लेखक के पास अपने विचार है। उसे शब्दाडम्बर और जटिल टेकनीक की आवश्यकता नहीं। यही कारण है कि सरल भाषा मे लिखने वाले इतने थोड़े लेखक मिलते हैं।

रचना का अच्छा या बुरा होना उस मे मोहिनी शक्ति तथा आस्वाद के होने या न होने पर निर्भर करता है। इस मोहिनी-शक्ति के लिए कोई नियम नहीं। यह लेखक की अपनी रचना से ही उसी प्रकार उठने लगती है जिस प्रकार कि सिग्रेट से धुआँ या पर्वत की चोटी पर से बादल उठता है, न जानते हुए कि वह किधर जा रहा है।

सब मे उत्तम शैली चलते हुए बादलों और बहते हुए पानियों की है।

शैली, भाषा, विचार तथा व्यक्तित्व का मिश्रण होती है।

जिस लेखक से आप घृणा करते है उसकी पुस्तक से आप कुछ नहीं सीख सकते। आप का कोई न कोई प्रिय और चहेता लेखक होना चाहिए। जिस मनुष्य का कोई चहेता ग्रंथकार नहीं वह अभागा है। वह एक ऐसे अण्डे के समान है जिस मे प्राण-प्रतिष्ठा नहीं हो पाती। हमारा चहेता लेखक हमारे लिए वही काम करता है जो पराग पुष्प के लिए करता है। संसार मे प्रत्येक मनुष्य के लिए ऐसा आदर्श लेखक अवश्य विद्यमान है, चाहे वह इस समय जीवित हो और चाहे वह पहले हो चुका हो। पर उस मनुष्य ने उसे ढूँढ़ने का कष्ट नहीं किया।

एक अच्छा पाठक लेखक के भीतर को बाहर उलट कर उसी प्रकार देखता है जिस प्रकार कोई भिखमगा जूओं की तलाश मे अपनी गुदड़ी को उलटा कर देखता है।

किसी विषय के अध्ययन की सर्वोत्तम रीति यह है कि उस विषय के प्रतिकूल दृष्टि-बिन्दु रख कर पुस्तकों का अध्ययन किया जाय। इस से यह निश्चित हो जाता है कि पाठक किसी ढोंग या दिखलावे की बात को नहीं मान लेगा। उस विषय के विपरीत मत रखने वाले लेखक की रचना पढ़ने के बाद पाठक उस विषय के अनुकूल मत रखने वाले लेखकों की रचनाएँ पढ़ने के लिए अधिक उत्तम रूप से तैयार हो जायगा। इसी रीति मे गुणदोष-विवेचक बुद्धि का विकास होता है।

एक अच्छे शब्दार्थ कोष का रहना भी आवश्यक है।

भाषा की दो खाने है—एक नई और दूसरी पुरानी। पुरानी खान पुस्तको मे है और नई जन साधारण की बोल-चाल मे। घटिया कलाकार पुरानी खान को खोदते है। परन्तु प्रथम कोटि

के कलाकार ही नई खान से कुछ निकाल सकते है। पुरानी खानों की कच्ची धातु को पिघला कर पहले ही उस मे से धातु निकाली जा चुकी है।

विशेषज्ञ तथा पण्डित मे और लेखक तथा विचारक में अन्तर है। ज्ञान के विस्तृत हो जाने पर विशेषज्ञ क्रम से पण्डित हो जाता है। इसी प्रकार विवेक गम्भीर हो जाने पर लेखक विचारक बन जाता है। पण्डित के लेख मे दूसरे विद्वानों के प्रमाण तथा विचार रहते है। उस की रचना मे दूसरे विद्वानों की जितनी अधिक बातें रहती है उतना ही बड़ा वह माना जाता है। इस के विपरीत चिन्तनशील लेखक की रचना मे वे विचार भरे रहते है जो उसने अपने मस्तिष्क से लिये है। कोई मनुष्य जितना अधिक चिन्तनशील होता है उतना ही अधिक वह अपने मस्तिष्क पर निर्भर करता है। पण्डित उस कौए के सदृश है जो अपने बच्चो को अपने मुँह से उगली हुई चीज़ से पोसता है। इस के विपरीत विचारक रेशम के कीड़े के सदृश है जो शहतूत के पत्ते नहीं वरन् मुँह मे से रेशम निकालता है।

जिस प्रकार बालक के जन्म के पूर्व माता को प्रसव वेदना होती है और तब तक चैन नहीं पड़ता जब तक कि शिशु गर्भ से बाहर नहीं आ जाता उसी प्रकार जब लेखक के मस्तिष्क में खलबली मचती है और तब तक चैन नहीं पड़ता जब तक कि वह अपने विचारो को कागज पर लिख नहीं लेता, तभी उस के द्वारा सच्चे साहित्य का सृजन होता है। इसी लिए लेखक अपनी रचना के प्रति माता की ऐसी ममता का अनुभव करता है। इस लिए रचना सदा तभी अच्छी लगती है जब वह लेखक की अपनी होती है। इस के विपरीत स्त्री तभी मनोहर लगती है जब वह किसी दूसरे की भार्या होती है।

जब कोई लेखक किसी व्यक्ति से घृणा करता है और उस को कटु गाली देना चाहता है, तो उसे चाहिए कि लेखनी उठाने के पहले उस व्यक्ति के शुक्ल पक्ष को भी भली भाँति देख ले। अन्यथा वह उसे जली कटी सुनाने मे समर्थ नहीं हो सकेगा।

लिखने की दिव्य प्रेरणा उस समय होती है जब मनुष्य रात में खूब सोया हो, उस ने मधुर स्वप्न देखे हो, वह अपने आप उठा हो, सवेरे उठने पर उसने समाचार पत्र मे कोई अशांत करने वाला संवाद न पढ़ा हो. वह धीरे से अपने कमरे मे चला जाता है. प्रकाशमान खिड़की के पास बैठ जाता है, उस के सामने साफ-सुथरी मेज होती है. बाहर सुहावनी धूप खिली रहती और मृदु समीर बहती है। इसी समय और ऐसी ही अवस्था मे वह अच्छे निबन्ध, अच्छी कविता, अच्छे चित्र और अच्छी रचनाएँ तैयार कर सकता है।

आत्म-व्यञ्जना सम्प्रदाय के लोग कहते है कि लेखक को अपने ही विचार और भाव प्रकट करने चाहिएँ। उसकी रचना सच्चे प्रेम, सच्ची घृणा, सच्चे भय और सच्ची रुचि का प्रकाश करे। उसमे बुराई को भलाई से छिपाने की कोई चेष्टा नहीं होनी चाहिए। तभी उसे लोगो के उसकी खिल्ली उड़ाने और समकालीन लेखकों के उसकी बातों का खण्डन करने का डर न रहेगा। आत्म-व्यञ्जना के सम्प्रदाय का लेखक उसी दृश्य का चित्रण करता है जिसे वह आप देखता है, उसी मनोभाव का वर्णन करता है जिसका अनुभव वह आप करता है और उसी घटना को लिखता है जिसे वह आप समझता है। जो रचना इस नियम का पालन करती है वह ही साहित्य है और जो इसका पालन नहीं करती वह साहित्य नहीं है।

कट्टर पंथी साहित्य का उद्देश्य स्वयं ग्रंथकार के नहीं, वरन अतीत काल के सन्त महात्माओं के भावों तथा विचारों को प्रकट करना था। इसलिए वह मर चुका है। जो साहित्य पुराने सन्त महात्माओं के नहीं, वरन् ग्रन्थकार के अपने विचारों को प्रकट करने का यत्न करता है वह जीवित रहता है।

सच्चा साहित्य अखिल विश्व और मानव पर आश्चर्य भाव के सिवा और कुछ नहीं।

जो लेखक अपनी रचना मे "मैं" का व्यहार करने से डरता है वह कभी अच्छा लेखक नहीं बन सकता।

पुस्तकालय

पुस्तकालय या लायब्रेरी विचारों का शस्त्रागार होता है।

देश में बहुत से ट्रेण्ड लायब्रेरियनों अर्थात् पुस्तकाध्यक्षों की आवश्यकता है जो उचित रीति से लायब्रेरी का काम कर सकें। इन पुस्तकालयों में बूढ़े, बच्चे, स्त्री-पुरुष सभी प्रकार के लोग जाते हैं। लोक-सेवक को वहाँ रह कर अपने विचार फैलाने का बहुत अच्छा अवसर है।

इस देश में अभी बहुत थोड़े लोग पुस्तकालयों से लाभ उठाते हैं। परन्तु भविष्य में पुस्तकालय बढ़ेंगे और वहाँ लायब्रेरियनों तथा पुस्तकों की माँग बढ़ेगी। कालेज, स्कूल तथा विश्वविद्यालयों की लायब्रेरियों के लिए भी लायब्रेरियन चाहिए। इन के अतिरिक्त और भी कारखानों, व्यापारी फर्मों, म्युनिसिपेलटियों, डिस्ट्रिक्ट-बोर्डों तथा ग्राम-पंचायतों के भी पुस्तकालय हैं। इन की सब से अधिक माँग उन लाखों प्रायमरी, मिडल तथा हाई स्कूलों की लायब्रेरियों के लिए होगी जिन में राष्ट्र के करोड़ों भावी नागरिक शिक्षा पा रहे हैं। इन बच्चों के विचारों को शीघ्रता से बदला जा सकता है।

इन कार्यों में सहायता देने की लायब्रेरियन की शक्ति को कम नहीं समझना चाहिए। कुछ लोग पुस्तकालय को छपी हुई पुस्तकों का केवल गोदाम घर समझते हैं। पर, बात ऐसी नहीं। पुस्तकालय तो विचारों का शस्त्रागार है। वास्तव में यही वह रणभूमि है जहाँ मानव-मन पर अधिकार करने के लिए सत्य

और असत्य धर्म-पूर्वक युद्ध करते है। यह युद्ध वड़ा भीषण होता है।

इस के अतिरिक्त, जैसा कि सामान्य मनुष्य भूल मे समझ रहा है, पुस्तकालय जीवन से दूर भाग कर वचने का स्थान नहीं। उलटा वह तो जीवन को अच्छे या बुरे वनाने में सहायता देता है। यदि लायब्रेरियन अयोग्य होगा तो वह लायब्रेरी मे आने वाले लोगों के मन तथा बुद्धि के विकास को रोक देगा और उन की आत्मा को ढक देगा, जव कि वे लोग लायब्रेरी मे अपनी आत्मा तथा बुद्धि के जीर्णोद्धार के लिए आते है।

एक पुस्तक, जो दूसरे ढंग से अच्छी है, वही गलत हाथ मे पड़ जाने से हानिकारक वन जाती है। बुरी पुस्तक तो किसी भी हाथ मे भीषण हानि कर सकती है।

पुस्तकालय के काम विविध प्रकार के होते है। इस लिए उस के कर्मचारियों को भी विविध प्रकार के काम करने पड़ते है। उदाहरणार्थ, कर्मचारियो को पुस्तके तथा सामग्री चुनना तथा क्रमवद्ध करना होता है। यह काम क्रय-विभाग के क्षेत्र के अन्तर्गत है। किसी भी दृष्टि से देखिए, लायब्रेरी की सफलता या विफलता उस छपी हुई सामग्री के उचित चुनाव पर निर्भर है, जो उस की आलमारियो मे रखीं जाती है। किसी लायब्रेरी का मानक (स्टैण्डर्ड) उन व्यक्तियो का मानक होगा जो उस के क्रय-विभाग मे काम करते है।

वहुत से पुस्तकालय छोटी-छोटी पूंजियों या वजटो पर काम करते हैं। वे वहुत अधिक सख्या मे पुस्तके नहीं खरीद सकते। इस लिये पुस्तको का सकलन करने वाले मे बुराई या भलाई करने

की शक्ति रहती है। अच्छी पुस्तके चुन कर वह भलाई और बुरी पुस्तके संकलित करके वह जनता की हानि कर सकता है। सब कर्मचारी अथवा एक अकेला व्यक्ति भी अपनी स्थिति का उपयोग कर सकता है। वह बुरी पुस्तके खरीद सकता और धनाभाव का बहाना करके निर्दोष पुस्तके खरीदने से इनकार कर सकता है। यह बात देखने मे आई है कि जिन पुस्तकालयों के पुस्तकाध्यक्ष जीर्णमताभिमानी है, वहाँ जात-पॉत का खण्डन करने वाली नये विचार की पुस्तके नहीं रखी जातीं। धनाभाव का बहाना बता कर प्रगतिशील साहित्य को खरीदने से इनकार कर दिया जाता है।

(१) इसके विपरीत सच्चा लोक-सेवक, जिस मे लायब्रेरी का काम करने की योग्यता भी है, लायब्रेरियन बन कर अच्छे ग्रन्थ चुन सकता है और इस प्रकार जनता की बहुमूल्य सेवा कर सकता है।

एक प्रधान पुस्तकाध्यक्ष लिखता है कि मैं बहुधा अच्छी, सुरुचिपूर्ण पुस्तके चुन कर उन की सिफारिश कर देता हूँ और बहुधा लायब्रेरी उन्हे खरीद लेती है।

(२) यदि किसी पुस्तकालय में कोई विशेष रूप से अच्छी पुस्तक न हो, तो आप और आप के मित्र पुस्तकों को क्रमबद्ध करने वाले पुस्तकालय के विभाग पर मित्रोचित प्रभाव डालकर उस पुस्तक को पुस्तकालय में रखवा सकते हैं। परन्तु इस बात का ज्ञान बहुत से लोगों को नहीं।

जो कर्मचारी पुस्तकालय की पुस्तकों की सूची तैयार करते हैं। वे पुस्तकालय का दूसरा काम पूरा करते हैं और वह काम

है पुस्तकों का संग्रह—खरीदी जा चुकने के बाद पुस्तकों को संगठित करने तथा सँभालने का काम, जिस से पाठक उन पुस्तकों से लाभ उठा सकें।

पुस्तकों की सूची या तालिका तैयार करने वाला सच्चा लोक-सेवक कई प्रकार से पुस्तकों को आगे लाकर जनता को पढ़वा सकता है।

३. लायब्रेरी का तीसरा काम पाठकों को परामर्श देना है। कोई प्रमाण या कोई वचन किस पुस्तक से और कहाँ लिखा है, इस का पता लगाने में लायब्रेरियन जनता को बड़ी सहायता देता है। अच्छे पुस्तकाध्यक्ष की शक्ति में यह बात है कि संसार को अच्छा बनाने में सहायता दे या लोगों को कुरुचिपूर्ण साहित्य पढ़ा कर स्वतंत्रता, समता तथा भ्रातृभाव का नाश कर दे।

पाठकों के साथ, एक व्यक्ति के द्वारा दूसरे व्यक्ति के साथ संपर्क उत्पन्न करके यह लायब्रेरियन सहस्रों लोगों के विचारों को गढ़ सकते हैं। कारण यह कि लोग प्रायः ऐसी पुस्तकें पढ़ा करते हैं जिन के पढ़ने का परामर्श उन को मित्रों द्वारा दिया जाता है।

४. फिरते पुस्तकालय इस विचारों के शस्त्रागार का चौथा कार्य है। उस में सचाई या बुराई करने की भीषण शक्ति रहती है। एक व्यक्ति ने बताया था कि जब मैं अभी अपरिपक्व आयु का १३ से २७ वर्ष तक की अवस्था में था, मुझे एक लायब्रेरियन ने एक ऐसी मनोविज्ञान की पुस्तक पढ़ने का परामर्श दिया, जिसे यदि मैं पढ़ लेता, तो जीवनसंबंधी मेरा दृष्टिकोण बहुत अंश में मिथ्या तथा तोड़ा-मरोड़ा होता। लायब्रेरियनों से लोग पूछते रहते हैं कि कौन पुस्तक अच्छी है?

लोक-सेवक लायब्रेरियन किसी मनुष्य को यह कह कर गन्दी पुस्तके पढ़ने से रोक सकता है कि मैंने यह पुस्तक पढ़ी है ; मैं नहीं समझता कि इस मे पढ़ने योग्य कुछ अधिक वस्तु है । गन्दी पुस्तकों की निन्दा के स्थान मे यह रीति अधिक उपयोगी है, क्योंकि किसी विलक्षण कारण से अनेक लोग ऐसी पुस्तके पढ़ना पसंद करते है, जिन को लोग स्पष्ट रूप से बुरा कहते है ।

५. लायब्रेरी का पॉचवॉ काम शाखाओं, फिरते-पुस्तकालयों और ऐसी दूसरी सुविधायों द्वारा, विशेषतः देहात मे, अपने काम को बढ़ाना है ।

लायब्रेरियन प्रौढ़ शिक्षा मे—जिस के अन्तगत पाठक भी है—परामर्श दाता, कम्यूनिटी वर्कर, ग्रुप-लीडर आदि लाखों लोगो के सम्पर्क मे आने के कारण जो वहॉ पढ़न आते है, बड़ी भारी सेवा कर सकता है । ऐसी सर्विसो के लिए आज सब ने अधिक मॉग टेकनालोजी तथा सामाजिक अध्ययन के क्षेत्र मे है ।

लायब्रेरियन ऐसे लोगो से बात-चीत द्वारा सत्य व्यवहार, प्रेम, परोपकार, निष्काम कर्म तथा मानवी समता का प्रचार कर सकता है । जेल के बंदियो के पुस्तकालयों मे अच्छी पुस्तके रख कर बंदियो को कानून का सम्मान करने वाले, अच्छे नागरिक बनाया जा सकता है ।

इसी प्रकार अस्पताल के रोगियो को ऐसी पुस्तके देनी चाहिए जिन से वे डर तथा चिन्ता को भूल कर चगे हो जाएँ और पुनः आत्म-निर्भरता प्राप्त कर ले । अस्पताल की लायब्रेरी का पुस्तकाध्यक्ष ऐसी स्थिति मे होता है जहॉ वह चगे हो रहे रोगियों के विचारो को सन्मार्ग पर ला सकता है ।

दैनन्दिन जीवन की चिंताओं मे फंसे हुए वे रोगी पहले कभी सोचने का अवकाश नहीं पाते थे। अस्पताल मे उन को चिंतन का अवसर मिलता है।

इसी प्रकार सैनिक पुस्तकालयों के लिए भी कई संयोग है।

लायब्रेरी से सार्वजनिक सम्पर्क बढ़ता है और इस जन-संपर्क से बड़ा काम हो सकता है।

बच्चों के पुस्तकालयों में ऐसी पुस्तकें रखी जानी चाहिएँ जो परमाणु बम के धड़ाके के समय आध्यात्मिक सहायता दे सकती हैं।

पब्लिक रीलेशन्स आफिसर धर्मात्मा हो तो अपने व्यापारों में धर्म-भाव पर बल दे सकता है।

जो लोक-सेवक इन नये साधनों द्वारा जन-सेवा करना चाहते हैं उन के लिए निम्नलिखित क्षेत्र हैं—चल-चित्र, फिल्म, माईक्रो-फिल्म, टेलीवीयन, साऊण्ड रीकार्डिङ्ग, संगीत-कार्य, मान चित्र तथा पेम्फलेट।

लायब्रेरियन की योग्यताएँ।

जो लोक-सेवक लायब्रेरियन बन कर जन-सेवा करना चाहते हैं उन में क्या-क्या योग्यता होनी चाहिए, इस का अनुमान उन कामों से लगाया जा सकता है, जो उन्हे वहाँ करने पड़ते है। वे काम हैं—पुस्तकों का संकलन, उनको क्रमबद्ध करना, उन की सूची तैयार करना, पाठकों का पथ-दर्शन और प्रौढ शिक्षा, इत्यादि।

इन कामो के लिए किस प्रकार के व्यक्ति चाहिएँ यह बात निम्नलिखित योग्यताएँ बताएँगी—

पुस्तकों तथा लोगों मे दिलचस्पी रखना, व्यापार तथा प्रबंध

की योग्यता, सुचारु व्यक्तित्व सौजन्यपूर्ण तथा उन्नत चरित्र, किसी प्रभाव के प्रति सत्वर प्रवृत्त होना, सूक्ष्म बुद्धि, किसी बात को तुरत ताड़ जाना, दुरुस्ती, सहिष्णुता, अवस्थाओ के अनुसार अपने आप को ढाल लेना, उपायज्ञता, सहस्र बुद्धि, उत्तम निर्णय-शक्ति . सामान्य बुद्धि, अटलता, अध्यवसाय, शुद्धता तथा विनय।

पुस्तकाध्यक्ष की शिक्षा की पृष्ठभूमि मे ये चीजे होनी चाहिएँ—चार वर्ष कालेज की और एक वर्ष लायब्रेरी स्कूल की शिक्षा। कालिज मे उसे भौतिक विज्ञान तथा समाज-शास्त्र के अध्ययन पर बल देना चाहिए। भारतीय, इंग्लिश तथा अमेरिकन इतिहास एवं साहित्य का अध्ययन करना और फ्रेञ्च, जर्मन तथा रूसी भाषा का काम-चलाऊ ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

बच्चों के पुस्तकालय के पुस्तकाध्यक्ष की योग्यताएँ प्रौढ़ों के पुस्तकालय के लायब्रेरियन की योग्यताओं से भिन्न होती हैं। वे संक्षेप मे ये है—

बालकों तथा नवयुवकों से प्रेम, उन के विचारों तथा दिलचस्पियों के लिए आदर बुद्धि, यह निश्चय कि अच्छी पुस्तकें उन के जीवन का अंश होनी चाहिए, परिस्थिति के अनुसार अपने को बदल लेने वाला व्यक्तित्व, उत्तम स्वाध्याय।

इन के अतिरिक्त उस मे ये गुण भी होने चाहिये—

बच्चों की पुस्तकों का ज्ञान और नई पुस्तकों का मूल्य आँकने तथा संकलन करने की योग्यता, सार्वजनिक भाषण करने मे अच्छी दक्षता, कहानी सुनाना, मौखिक आलोचना, रेडियो पर

वार्तालाप, पुस्तकालय की सुविधाओं के उपयोग की शिक्षा।

बाल-पुस्तकालय के पुस्तकाध्यक्ष की शिक्षा मे ये बातें होना आवश्यक हैं—कालिज में चार वर्ष और इसके साथ लायब्रेरी——स्कूल मे एक वर्ष बालोपयोगी साहित्य के अध्ययन मे विस्तृत अनुभव।

अधिकांश पुस्तकालयो में प्रति सप्ताह औसत ३६ से ४४ घण्टे काम करना पड़ता है। वर्ष में तीन-चार सप्ताह की छुट्टी होती है। जो लोग इन विचारों के शस्त्रागार का स्वामी बनना चाहते हैं उन्हे याद रखना चाहिए कि वे इस काम से अधिक धनोपार्जन की आशा नही कर सकते। धन कमाना हो तो उन्हे कोई दूसरा ही काम करना चाहिये। परन्तु लोक-सेवा यहाँ बहुत हो सकती है। इस काम के लिए त्याग आवश्यक है। यदि इस देश के उद्धार के लिए इस भीषण शक्ति का उपयोग करना है तो यह काम किसी न किसी को करना ही पड़ेगा।

यह ठीक है कि सब लोग एक दम प्रधान पुस्तकाध्यक्ष नही बन सकते। पर वे इस व्यवसाय मे छोटा से छोटा काम लेकर भी बड़े कामो पर अपना प्रभाव डाल सकते हैं और कालान्तर मे वे भी उच्च पद पर पहुँच सकते हैं।

पुस्तकाध्यक्ष का व्यवसाय बड़े उत्तरदायित्व का है। पुस्तकालयों मे गंदी पुस्तके रखना वैसा ही भयावह है जैसा कि औषधो की बोतले ऐसी जगह रखना जहाँ बच्चे उन्हे उठा सकते हैं। औषध बनाने वाला विषाक्त औषध का उपयोग जानता है। उसे उन विषाक्त रासायनिक पदार्थों के उपयोग का अधिकार

भी है। परन्तु बच्चा यह नहीं जानता। उसके माता-पिता को यह अधिकार बिलकुल नहीं कि वे उन दवाइयों को बच्चों की पहुँच मे रखें।

अच्छे पुस्तकाध्यक्ष पहले तो आपत्तिजनक पुस्तके लेते ही नहीं। वे प्रत्येक पुस्तक खूब देख-भाल कर लेते है। फिर किसी को पुस्तक देते समय वे देख लेते है कि जो व्यक्ति पुस्तक मॉग रहा है वह उसके उपयुक्त भी है या नहीं।

यह पुस्तकाध्यक्ष पुस्तको का केवल कस्टोडियन या रक्षक ही नहीं, वरन् एक ऐसा व्यक्ति भी है जो छात्रों और अध्यापकों—दोनो के लिए भोजन तैयार करता है। भोजन के सदृश पुस्तकों का उपयोग भी बड़ी समझदारी से ही करना चाहिये। प्रत्येक मानव प्राणी पर परमात्मा का प्रभाव सत्य से घोषित होता है और सत्य पुस्तकाध्यक्ष का व्यवसाय मे स्टाक है। आदर्श लायब्रेरियन विद्यार्थी का रेडीरेफ्रेंस अध्यापक का दाहिना हाथ, युवको का सच्चा मित्र. दुःखी माता-पिता की लाठी, अवकाश के समय को भली भान्ति बिताने के लिये पथदर्शक और कुटिल तूफानी दुनिया में आकाश दीप के समान है।

यदि वह उपर्युक्त सद्गुणों के उलट दुर्गुणों का गोदाम होगा तो वह हमारी सभ्यता के लिए खतरा बन जाएगा। अपढ़ तथा अयोग्य पुस्तकाध्यक्ष वैसा ही है जैसे एक अंधा दूसरे अंधे को मार्ग दिखा रहा हो।

अच्छी पुस्तको की अपेक्षा लोग निकम्मी पुस्तकें ही अधिक पढ़ते है। लोगों को अच्छी पुस्तके पढ़ने मे प्रवृत्त करना भारी

लोक-सेवा है। यह एक प्रकार से सब लोगों को पुण्यमय बना कर ससार को स्वर्गधाम बनाना है।

यदि आप स्वय लायब्रेरियन नहीं बन सकते, तो कम से कम एक दूसरे ऐसे मनुष्य को ही प्रेरणा करके लायब्रेरियन बना दीजिए, जो इस के द्वारा जन-सेवा कर सके।

सामाजिक सेवा

समाज-सेवा का काम दिन पर दिन बढ़ रहा है। परन्तु ऐसे पर्याप्त रूप से ट्रेण्ड, निर्दोष तथा विचारशील लोगों का अभाव है जो इस काम को अपने हाथ में ले सकते हैं।

इस के विपरीत रुपये-पैसे के लोभ से काम करने का भाव है। इसका प्रयोग राजकर्मचारी तथा अनेक सामाजिक समस्याओं का काम करने वाले लोग करते हैं। यह एक ऐसा भाव है जो प्रत्येक मानव प्राणी को प्रभु की सृष्टि नहीं, वरन् जो उसे एक ऐसा पशु मानता है, जिस की सहज बुद्धि थोड़ी भिन्न है।

कम्यूनिस्ट राज्य मनुष्य को शुभ शिकार मानते हैं और जनता से शिकार के पशु जैसा ही व्यवहार करना चाहते हैं।

जिस सामाजिक सेवा में धर्मभाव नहीं वह भयावह हो जाती है। इसका परिणाम वह पतन होता है जो जड़वादी उद्योगों के भाग्य में बदा है।

इस के विपरीत वह मनुष्य जो धर्म-भाव से सेवा करता है और जिस के मन में स्पष्ट कल्पना है कि मनुष्य को सब अधिकार उस के स्रष्टा की ओर से मिले हैं, जो प्रत्येक मानव-प्राणी के पवित्र भाव में विश्वास रखता है, ऐसे लोगों को चिरस्थायी आशीर्वाद दे सकेगा जो जीवन संग्राम को अधिक कठिन पा रहे हैं।

इस विश्वास के अभाव में अच्छे से अच्छे समाज-सुधारक का कार्य-क्रम भी उस के हाथ में उत्पीड़न का एक प्रबल साधन बन

जाता है। वह समाज-सेवा के बहाने प्रजा का उत्पीड़न करने लगता है। स्वार्थी तथा पुण्य-पाप पर विश्वास न रखने वाले लोग जब सत्तारूढ़ होते है तो जिस समाज-सेवा के कार्य से संसार सुखी बन सकता था वही उन के द्वारा प्रजा के दुःख का कारण हो जाता है। बुरे हेतु से अच्छा काम करना भी एक भारी राजद्रोह है।

सार्वजनिक, राजकीय, गवर्नमेण्ट तथा धार्मिक सस्थाएँ सामाजिक सेवा का काम किया करती है। इन को केन्द्रीय राज्य, लोगों के दान, स्थानीय सरकार तथा लोगो की छोड़ी हुई वसीयतो से धन मिलता है। ये संस्थाएँ बेकारी, विधवाओ, अनाथो, रोगियो तथा अपाहिजों की सहायता करती है। कई दूसरे ट्रस्ट ऐसे बने हुए है जो प्रौढ़ शिक्षा, प्रौढ़ अपराधियों के सुधार, वृद्धो, तथा शिक्षा के लिए विदेश जाने वाले नवयुवको को सहायता देते है। धर्मार्थ संगठनों की ओर से कही-कहीं अंधो की शिक्षा और लूले-लगड़ो को काम सिखा कर रोटी कमाने योग्य बनाने का भी काम हो रहा है। अनाथ बच्चो की देख-रेख, विपत्ति मे सहायता, कोढ़ियों के लिए आश्रम इत्यादि सभी सामाजिक सेवा के अन्तर्गत है। दरिद्रता तथा अभाव को दूर करने से भी बढ़ कर कई दूसरी सामाजिक सेवाएं है—जैसा कि अपराधों को बंद कराना तथा नवयुवकों के बुरे कर्मो को रोकना।

अब सामाजिक सेवा-कार्य का स्वरूप और उस के खतरे सुनिए।

इस क्षेत्र के काम दो प्रकार के है—

सोशल ग्रुप और सोशल कोर्स-वर्क। सोशल ग्रुप वर्क मे दो चीज़े आती है— लोगो को सच्चे भारतीय बनाना। कम्यूनिटी ऑर्गनाइज़ेशन, पंचायत के काम, मन बहलाव तथा उल्लास के काम, नागरिक काम।

सोशल कोर्स वर्क के अन्तर्गत है—

शिशु-कल्याण का काम, परिवार कल्याण, मेडीकल सोशल सर्विस, आचरण आदि का ध्यान, सुरक्षा की देख-भाल, मनोवैज्ञानिक सामाजिक काम, मानसिक तथा आध्यात्मिक व्यापार से संबंध रखने वाले काम, स्कूल की देख रेख, स्कूल मे बच्चो का भेजना, सामाजिक छान-बीन। यह काम व्यक्तित्व के विश्लेषण का है। इस मे इस मार्ग का उपयोग किया जाता है जिस का आधार विचार तथा टकनीक होता है।

जड़वादी लोग मनुष्य के अधिकार समाज के दिए मानते हैं। परन्तु समाज जो कुछ देता है उसे वह वापिस ले भी सकता है। जिस साधन के द्वारा समाज अपनी प्रथाएँ व्यक्ति पर ठूँसता है वह उन के मत से राज्य है। इस लिए राज्य उन सब अधिकारो को हम से छीन सकता है, जिन का उपयोग आज हम कर रहे है।

एक अमेरिकन समाज-शास्त्री कहता है कि प्रजा राजा है, और प्रजा ही कानून बन जाती है। यदि समाज वृद्धों को मार डालने की प्रथा स्वीकार करले तो इन जड़वादी समाज-शास्त्रियों के मत से यह प्रथा पूर्णत. मानने योग्य होगी। इन के विचार मे कोई काम ठीक या गलत उस समाज के संबंध से है जिस मे कि लोग रहते है।

जड़वादी लोग कहते है कि धर्म तथा नैतिकता जनता के लिए अफीम है, और कि मनुष्य केवल सहज-बुद्धि द्वारा ही प्रवृत्त होता है। इस सिद्धान्त को स्वीकार करने से घोर हानि हो सकती है। जड़वादी लोग यह भी कहते है कि मनुष्य इन्द्रिय-विकार या तीव्र आवेग की सृष्टि है। उस की कोई स्वतंत्र इच्छा नहीं। वह काम, क्रोध आदि आवेगो के द्वारा शासित होता है। इस भावना का अर्थ यह निकलता है कि मनुष्य एक आर्थिक पशु है, और उसे जो अधिकार मिले हैं वे सब राज्य से मिले है। इन जड़वादी लोगों की बातों का प्रचार इस लिए भी शीघ्र होता है, क्योंकि जिन सोशल वर्करो के सम्पर्क मे वे आते है वे बेपेन्दी के लोटे, अस्थिरचित्त तथा अनजान होते है। उन्हो ने कभी इस विषय पर गम्भीरता पूर्वक विचार नही किया होता। उनके घर अच्छे नहीं होते। उनके पास खाने-पहनने के लिए पर्याप्त नहीं होता। उनको उचित डाक्टरी सहायता तथा सुरक्षा का अभाव होता है। जड़वादियों के विषाक्त प्रापेगण्डा से लोगो को बचाने के लिए उनके इन प्रभावों को दूर करना परम आवश्यक है।

सामाजिक सेवा-क्षेत्र मे काम करने वाले लोक-सेवक की शिक्षा तथा व्यक्तित्व कैसा होना चाहिए? इस क्षेत्र मे पदार्पण करने वाले स्त्री-पुरुषों मे ये गुण होने चाहिएँ—

उन्होंने किसी सामाजिक सेवा की शिक्षा देने वाले स्वीकृत स्कूल मे मास्टर की डिग्री प्राप्त की हो। उन्हे शरीर शास्त्र, जीवन-विद्या (बायोलोजी), सामाजिक-शास्त्र, अर्थ-शास्त्र, इतिहास, राजनीति-शास्त्र तथा हिन्दी का भी अच्छा ज्ञान रहना चाहिए।

सामाजिक सेवा का काम करने वाला व्यक्ति ऐसा होना चाहिए जो लोगो को पसद करता हो, जो उनके साथ और उनके लिए काम करे। उस मे बुद्धि, साहस तथा आशावाद हो। उसके आशावाद का आधार वास्तविकता और पर्याप्त समझदारी हो। सामाजिक सेवा का काम करने वाले के लिए सब से अधिक सधे हुए तथा स्वस्थ चिन्तन की आवश्यकता है। उसे अपराधों का वैज्ञानिक अध्ययन करना चाहिए। उसे अपराधों के कारणो, अवस्थाओं तथा सम्भव उपचार का ज्ञान रहना चाहिए। समाज की वर्त्तमान अशान्ति समाजिक बुराइयों का परिणाम है, कारण नहीं। बुराइयो के अधिकांश कारण है—

आर्थिक अरक्षा, रहने के लिए मकान की तंगी, वर्त्तमान रहन सहन के ऊँचे खर्च के लिए अपर्याप्त मजदूरी, अधिकार (कब्जा) की लालसा, अधिक शक्ति की आकांक्षा, बाहरी सफलता के लिए उद्योग तथा ससारी माल की तलाश।

जो सामाजिक शास्त्र इन मूल कारणों पर ध्यान न देकर सामाजिक सुधार का कार्य करता है वह इस शताब्दी की दूर-दूर तक फैली हुई व्याधि की उपेक्षा करके केवल इसके बाहरी लक्षणों का उपचार करता है। वह उस के कारणों को नहीं लेता। वह अन्त मे रोग को और भी बढा देता है।

यदि आज लोगो के पास ऐसी वस्तुओं का अभाव है जिन का उन्हे प्रयोजन है, तो यह किसी एक पद्धति का दोष नहीं। इस का कारण यह है कि अधिकाश लोगो की आत्मा मे बहुत अधिक लोभ समा रहा है। वे थोडे से लोगों की भलाई का विचार करते है, बहुजन-समाज की भलाई का नहीं। ऐसे लोग अपने चिन्तन मे जडवादी ही है। सांसारिक पदार्थों के लिए यह

अमर्यादित लोभ ही प्रचलित सामाजिक बुराइयों का मूल कारण है। निःसंदेह सामाजिक सुधार की आवश्यकता है। परन्तु इस से भी बढ़ कर और अपरिहार्य आधार के रूप में मौलिक सिद्धान्तों पर वापस आने की आवश्यकता है।

बड़े आश्चर्य की बात है कि बहुत से लोग, जो सच्चे हृदय से मानवता की सहायता करने के इच्छुक हैं, एक बात भूल जाते हैं, अर्थात् वे स्वयं मनुष्य को भूल जाते हैं। वे भूल जाते हैं कि मनुष्य सुरक्षित मकान में रखे जाने तथा खाना कपड़ा पाने वाले पशु से कुछ बढ़ कर है। वे भूल जाते हैं कि वह एक व्यक्ति है जिसे आध्यात्मिक आवश्यकताएँ हैं जो उसके भौतिक प्रयोजनों से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। परमात्मा को छोड़ देने से सामाजिक सेवा अनिष्टकर हो जाएगी।

चिमनी के बुझ जाने पर कमरा गरम तो रहता है, पर उसी गरमी के कारण जो आग से निकल चुकी है। अँगेठी बुझ जाने पर कमरा ठंडा हो जाएगा। उस गरमी के स्रोत को फिर से जलाना पड़ेगा। यही बात ईश्वर-विश्वास की है।

भूत-दया तथा विश्व-प्रेम के पुनीत भाव से ही सच्ची सामाजिक सेवा हो सकती है। जब भगवान् इतने दयालु, सहायक तथा दुःख-निवारक हैं, तो उनके सेवकों को भी उनके यही गुण अपने में धारण करने चाहिएँ। भगवान् की अनुकम्पा मनुष्यों के द्वारा ही दुःखियों तथा जरूरतमन्दों तक पहुँचती है।

दया, उदारता आदि सद्‌गुण बहुधा ऐसे व्यक्तियों में भी देखे जाते हैं जिन को हम प्रायः तुच्छ समझते हैं। सामाजिक कार्यकर्ता सड़क के किनारे अपने मकान में नहीं बैठा रहता,

जब कि दूसरे लोग उसके सामने से हो कर निकल रहे हैं। वह स्वयं जनता की मंझधार में जाता है। वह उनके दृष्टि-कोण तथा कष्टों को समझने का प्रयास करता है, जिस से वह अपने लिए अधिक पूर्ण जीवन प्राप्त कर सके और अपने दूसरे अगणित बंधुओं की सहायता कर सके।

भगवान् सब को सुखी देखना चाहते हैं। लोक-सेवक इस संसार को सुखी बनाने का उद्योग करता है।

व्यक्तिगत शक्ति और सामाजिक दायित्व

आदर्श लोक-सेवक की प्रभु से यह प्रार्थना होनी चाहिए—

"हे प्रभु मुझे राज्य नहीं चाहिए, स्वर्ग नहीं चाहिए, मोक्ष भी नहीं चाहिए। भगवान्, यदि मुझे वरदान देना चाहते हो, तो यह वरदान दीजिये कि मैं दुःखी पीड़ित प्राणियो के कष्टों का विनाश कर सकूँ।

"भगवान्, मैं आप से सुख-भोग, या ऐश्वर्य की याचना नहीं करता। मुझे प्रबल के उद्धत अन्याय के विरुद्ध, निष्ठुर लोभी की सर्वग्रासी क्षुधा के विरुद्ध सग्राम करने का अजेय-साहस एवं शक्ति प्रदान कीजिए।

"हे प्रभु मुझे अपनी शक्ति का साधन बना। जहाँ घृणा है वहाँ मुझे प्रेम ले जाने दे। जहाँ अपकार है वहाँ क्षमा, जहाँ सदेह है वहाँ विश्वास, जहाँ निराशा है वहाँ आशा, और जहाँ उदासी है वहाँ आनन्द ले जाऊँ।

"हे प्रभु, मेरी प्रार्थना है कि मै अपने को अधिक देखूँ मै दूसरों से उतना संमान न पाऊँ जितना कि मै दूसरो को दूँ।

"लोग मेरे भाव को उतना न समझे, मेरी बात को उतना न सुनें जितना कि मैं उनको समझूँ और उनकी सुनूँ।

"लोग मुझे उतना प्यार न करें, जितना कि मै उन से करूँ।"

"हम दूसरो को देकर ही कुछ पाते है। दूसरों को क्षमा करने से ही हम क्षमा किए जाते है।

"मरने से ही हम शाश्वत जीवन लाभ करते है।'

इस प्रार्थना से हमारे युग की बड़ी आवश्यकता का निष्कर्ष भरा है। इस का भाव यह है कि हम मे से प्रत्येक अपने को शान्ति का साधन अनुभव करे। हम मे से सब कोई ससार मे प्रेम तथा शान्ति स्थापित करने के व्यक्तिगत सूत्रपात तथा दायित्व का अनुभव करे।

आप चाहे कौन है, क्या हैं और कहाँ है, इस की कोई बात नहीं। आप ससार को अच्छा बनाने मे कुछ न कुछ अवश्य कर सकते है। आप महत्वपूर्ण है। आप की गिनती है।

यदि दुर्बल श्रद्धा वाला मनुष्य दूसरे मनुष्य के साथ उस सचाई का सोझा करने लगता है जो उसके पास है, तो उस से उस की अपनी शक्ति बढ़ जाती है। यह उस दुबले व्यक्ति के सदृश है जो जितना व्यायाम करता है उतना ही सबल होता जाता है।

समूची प्रजा के प्रयत्न द्वारा नहीं, वरन उन लोगों के जान बूझ कर किए गये व्यक्तिगत प्रयत्नों से ही शान्ति प्राप्त होगी जो समाज को बनाते है। लोकोपकार करने वाला व्यक्ति [illegible] नहीं करता, वरन् भगवान् उसके द्वारा स्वय काम कराते है। इस से उस का विश्वास तथा शांति बढ़ता है।

संसार के लाखो-करोड़ो मनुष्य इस से बढ़ कर और कुछ नहीं—वे सब अकेले आप ही है जिन्हें बार-बार गुणा किया गया है। वे आप का ही कई गुणा बढ़ा हुआ रूप है।

व्यक्तिगत उत्तरदायित्व पर जितना भी बल दिया जाए, थोड़ा है। परन्तु इस बात से बचना चाहिये कि इस व्यक्ति के व्यक्तित्व को इस सीमा तक न बढ़ा दिया जाय कि उस से मनुष्य का सामाजिक रूप ही दृष्टि से ओझल हो जाय; कठोर, अशिष्ट व्यक्तिवाद का खतरा भीतर घुस आये और पर्याप्त हानि कर दे।

प्रत्येक मनुष्य प्राणी जन्म लेकर केवल व्यक्ति के रूप में ही संसार में नहीं आता। इस के साथ ही वह उसी प्रकार अपने परिवार के सदस्य के रूप में सामाजिक प्राणी के रूप में तथा समूची मानव जाति के एक अंग के रूप में भी जन्म लेता है। यह सच है कि उस के लिए एक व्यक्ति के रूप में जीवन बिताना आवश्यक है। परन्तु उस पर सामाजिक प्राणी के रूप में भी कुछ कर्तव्य है। यह परमात्मा की आज्ञा है। इस लिए प्रत्येक मनुष्य को जहाँ व्यक्तिगत रूप से अपने हित के लिए यत्न करना चाहिए वहाँ साथ ही ध्यान रखना चाहिए कि उस का यह हित समाज के हितों के विरुद्ध न हो।

जो मनुष्य दोनों प्रकार के कर्तव्यों का पालन करता है वह इस लोक तथा परलोक में शान्ति और सुख का उपभोग करता है।

प्रत्येक व्यक्ति में कुछ न कुछ अच्छाई अवश्य रहती है। उस अच्छाई को दूसरों को भी देना ही धर्म-जीवन है। यदि आप सब किसी के पास—वे जो आप से घृणा करते हैं और वे जो आप के पक्ष में हैं—पहुँचते हैं, तो आप महात्माओं का अनुकरण करते हैं।

एक लड़की कट्टर कम्यूनिस्ट थी। वह मुँहफट होने के लिए बदनाम थी। वह ईश्वर की खूब खिल्ली उड़ाया करती थी। एक

आस्तिक लोक-सेविका लडकी उसके पास गयी। कम्यूनिस्ट बोली, "मै ईश्वर मे विश्वास नहीं रखती, इसलिये ईश्वर को अलग रख कर बात कीजिये।" आस्तिक लड़की बोली, "मै ईश्वर मे विश्वास रखती हूँ। तुम भी उसकी मूर्ति हो। इसलिये मै तुम मे भी विश्वास रखती हूँ।"

इस पर कम्यूनिस्ट लड़की ढीली पड़ गई। वह बोली—"आप लोग यही बात दूसरे लोगो को क्यो नहीं सुनाते?" उसका विरोध ढीला पड़ गया। उस लड़की से बात करते पहले लोग बहुत घबराते थे। परन्तु इस आस्तिक लड़की ने साहस किया और उसे जीत लिया।

सचाई की बात कहने वाली छोटी-सी वाणी प्राय उन लोगो के लिये जो कुछ कर सकते है तुरही का काम किया करती है। एक व्यक्ति को किसी मजदूर सभा मे प्रतिनिधि बना कर भेजा गया। वह बोला, मुझे सभा की नीति का ज्ञान नहीं। लोगो ने कहा, आप सच तथा झूठ मे तो पहचान कर सकते है। जब कोई बात झूठ मालूम हो तो उसका खण्डन कर देना। वह चला गया। मजदूर सभा मे विभिन्न सभाओं के एक सहस्र प्रतिनिधि आये थे। वे सब जडवादी प्रस्ताव पास कर रहे थे उसने साहस करके खड़े होकर कहा—"प्रधान जी, यह ईमानदारी नहीं।" इस पर विवाद होने लगा। एक सहस्र सभासदो मे से केवल थोडे से ही चालाक मनुष्य दुष्टता कर रहे थे। शेष को कुछ पता ही न था। वे सो रहे थे। विवाद से वे जाग उठे सचाई उनकी समझ मे आ गई और सभा का रुख ही बदल गया। अनिष्ट होते होते रुक गया। यह सब काम केवल एक मनुष्य के साहस से हुआ चाहे उसे बहुत ज्ञान न था।

भलाई करने की आपकी शक्ति बुराई करने की शक्ति से कम नहीं। परन्तु आपको इसे केवल अपने आप तक ही सीमित न रखना चाहिये। आपको सारी मानव-जाति के कल्याण की चिन्ता होनी चाहिये। आपको केवल अपनी आत्मा के ही उद्धार में नहीं लगे रहना चाहिए, प्रत्युत उन अगणित करोड़ों मनुष्यों की आर्थिक सुरक्षा के लिए भी लड़ना चाहिए जो स्वयं अपने लिए नहीं लड़ सकते।

आपको अब और अधिक काल तक अलग-थलग नहीं रहना चाहिए। आपको केवल अपने लिए ही अच्छा भोजन, अच्छा मकान, अच्छे वस्त्र, आराम और आमोद-प्रमोद पाने में ही लीन न रहना चाहिए।

जब आप जैसे दस लाख व्यक्ति इसी प्रकार व्यक्तिगत तथा सामूहिक रूप से प्रयत्न करेंगे, तो इस बात का अनुमान करना कठिन नहीं कि न केवल इस देश का, वरन् समूचे संसार का रूपांतर हो सकता है।

घर के जगत को प्रभावित करना

संसार को बदलने का कार्य घर से आरम्भ होना चाहिए।

अमेरिका की बात है। एक स्त्री अपने पति को पहले कम्यूनिस्ट प्रभावाधीन मजदूर-सभा में जाने से रोका करती थी। वह कहती थी कि वहाँ जाने से हम और बच्चे दोनों विपत्ति में फँस जाएँगे।

कम्यूनिस्ट यही चाहते थे कि अच्छे मनुष्य समाज से निकल जाएँ, तो हमारा रास्ता साफ हो जाए। कुछ काल उपरांत उस स्त्री को समझ आ गई। उसने अपने पति को फिर उस सभा में भेजा और प्रत्येक बैठक में जाने, वरन् मंत्री या कोई दूसरा पदाधिकारी बनने को कहा। उसके रास्ते में कठिनाइयाँ बहुत आईं, पर वह सभा में डटा रहा। अन्त में पाँसा पलट गया। उसके पक्ष के लोगों का बहुमत हो गया। कम्यूनिस्ट भाग गए। इस प्रकार एक संगठित दल ने एक सभा पर अधिकार कर लिया।

देखिये, एक स्त्री ने अपने देश को बचाने का काम कैसे किया। उसका उद्देश्य पवित्र था। जो काम उसने अमेरिका में किया हमारे भारत की स्त्रियाँ वही काम देश को दूसरी बुराइयों से बचाने के लिए कर सकती हैं।

किसी भी लोकतन्त्र में घर सब से अधिक सारभूत सामाजिक इकाई होता है। वह समूचे समाज के वर्ग को प्रभावित करता है। परन्तु भलाई की चर्चा इसके द्वारा बहुत दूर तक बाहर भी ले

आनी चाहिए। इसमे घर के पुरुष को अपना पार्ट अवश्य खेलना चाहिए, न केवल नीति को गढ़ने तथा जानने मे वरन् उसे कार्य रूप मे परिणत करने मे भी। जिन सचाइयो पर सभ्यता आधारित रहती है, उनको जीवन की प्रधान धारा मे ले जाकर समाज को उन सचाइयो से ज्ञात तथा सचेत बनाए रखना, हे स्त्रियो, आपके कंधों पर है। आपका यह कर्त्तव्य आपके बच्चो के प्रति, अपने पति के प्रति, अपने पड़ोसियों के प्रति और आप के अपने आपके प्रति है। आप इन सचाइयो की परम्परा को अपने जीवन में धारण करे। आपके लिए यह केवल कोई आदर्श ही नहीं, वरन् एक गम्भीर कर्त्तव्य भी है। यदि सब स्त्रियाँ जात-पॉत को मिटाने और सत्य धर्म के पालन के महत्त्व का अनुभव करेंगी, तो शाश्वत शांति को एक ताजा और पवित्र करने वाली पवन समूचे देश में बहने लगेगी और आगे बढ़ती हुई, अन्ततः, सारे संसार मे फैल जायगी।

कम्यूनिज्म भी यक्ष्मा या विशूचिका के सदृश एक रोग है। रोग की भॉति यह भी रहन-सहन की बुरी दशाओं और रुग्ण तथा हताश हृदयो पर पनपता है।

जब लोगों के कष्ट दूर होकर शाश्वत शांति की प्राणदायिनी वायु बहने लगेगी, तो इस रोग का अपने आप अन्त हो जायगा। हे स्त्रियो! आप एक महान् शक्ति है। आप मे कल्याण करने की अपार क्षमता है। आप अपनी शक्ति को कम समझ रही है। आप सोचती है, हम असहाय, अल्प और दैनिन्दन जीवन की परिस्थितियो मे इतना जकड़ी हुई हैं कि हम कुछ नहीं कर सकतीं, पर यह आपका भारी भ्रम है।

यदि आप एक बार अपने प्रकृत-स्वरूप को पहचान जाएँ, तो संसार में ऐसा कोई भी काम नहीं जो नारी शक्ति के लिए असाध्य है। आप बहुधा सोचती हैं, कोई बड़ा काम करने के लिए आप का उच्च पदस्थ, बहुत ट्रेड या प्रतिभाशाली होना आवश्यक है। आप के ऐसे विचार हो सकते हैं। परन्तु जिन स्त्रियों के द्वारा भगवान् बुद्ध तथा महात्मा ईसा ने सैकड़ों-सहस्रों नर-नारियों को प्रभावित किया था वे किसी विश्वविद्यालय की स्नातिकाएँ न थीं। आम्रपालि, वासवदत्ता, मालिनी, विशाखा तथा सुमित्रा प्रभृति भगवान बुद्ध की प्रचारिकाएँ किस महाविद्यालय में पढ़ी थीं? राम, कृष्ण, नानक, मुहम्मद, पीटर तथा पाल कोई बहुत पढ़े-लिखे न थे। इन में से अधिकांश अनपढ़ ही थे। पर इन लोगों ने संसार में क्रांति कर दी थी। बुद्ध के शिष्य उपालि नाई तथा अंगुलिमाल डाकू प्रभृति लोगों ने संसार को हिला दिया था।

प्रत्येक मनुष्यप्राणि में, स्त्री-पुरुष में, व्यक्तिगतरूप से मानव-जाति को प्रभावित करके अच्छा बनाने की शक्ति परमेश्वर ने निहित कर दी है। हे देवियो, आप यदि एक बार इस बात का अनुभव कर लें, तो आप बहुत अच्छी लोक-सेविका तथा धर्म-प्रचारिका बन सकती हैं। अपने घर में, तथा कहीं भी इसी शक्ति का उपयोग करा कर आप इन लोगों को भी लोकोपकारी बना सकती हैं।

आप अपने परिवार को प्रत्येक [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

आत्म-विकास, अपने ही आप को पवित्र बनाने तथा आसुरी आनंद की प्रवृत्ति को रोक देंगी। आप को देख कर दूसरे परिवार भी आप का अनुकरण करने लगेंगे।

एक छोटी लड़की के धनाढ्य माता-पिता ने छोटी अवस्था से अपनी बच्ची को सिखाया कि जो भी पैसा तुम्हें मिले उसे बचा कर रखा करो। उस ने इस प्रकार कष्ट से जो भी धन जुटाया उस की तुलना वे अपनी सम्पत्ति से करते थे। ये माता-पिता बच्ची को मितव्ययता नहीं कंजूसी सिखा रहे थे। इस का प्रभाव लड़की के अगले जीवन में प्रकट हुआ। वह एक बड़ी ही आत्म-पोषी स्त्री बन गई है। उसे सदा अपने ही स्वार्थ की चिन्ता रहती है। उसे दूसरों के मरने-जीने की कोई चिन्ता नहीं।

अपने लिए सुरक्षा प्राप्त करना अच्छी चीज़ है। परन्तु इसे प्राप्त करने के बाद पहली चिंता दूसरों के लिए भोजन, मकान, वस्त्र तथा शिक्षा की चिन्ता होनी चाहिए।

सत्य को जानना एक आश्चर्य-जनक बात है। परन्तु आप लोग, जिन के पास सत्य है, संसार को भूल में छोड़ने का साहस न करें। जब युवक तथा युवतियाँ बन जाने पर आप के बच्चों को बुद्ध तथा दयानंद जैसी दृष्टि प्राप्त हो जाएगी तब वे अपनी ही तंग कोठरियों में, अपनी ही गुफाओं में छिप कर न बैठ जाएँगे। वे संसार का संचालन उन लोगों के हाथ में छोड़ कर जो भ्रष्टाचारी, स्वार्थी और पाप-पुण्य का विचार न करने वाले हैं, आप संसार से किनारा नहीं कर लेंगे। वे अपनी सारी शक्ति अपने स्त्री बच्चों तथा धन-सम्पदा की ही रक्षा में न लगा देंगे। कारण यह कि यह काम तो कोई पशु भी कर सकता है। वे अपना

जीवन संसार मे शान्ति लाने, भूखों को अन्न, प्यासों को जल और नंगो को वस्त्र देने मे लगायेंगे। वे संसार के सम्मुख सत्य का प्रकाश करने के लिए उत्सुक होंगे।

आप के हाथ मे एक जीवन है। आप के पास एक सुयोग है, अपने बच्चे को ट्रेड कर के नेता बनाने का, न कि अनुयायी बनाने का। आप को सुयोग प्राप्त है कि आप अपने बच्चे को ऐसा व्यक्ति बनाएँ जो कोई काम केवल वेतन के लिए ही नहीं, वरन् उस प्रभाव के लिए करेगा जो उस काम के द्वारा डाला जा सकता है। आप इस दायित्व को दूसरों के कंधे पर नहीं डाल सकते, और न डालने का साहस ही कर सकते है।

क्लासरूम अर्थात् स्कूल का कमरा घर का स्थान नहीं ले सकता। जो दायित्व माता-पिता पर है उसे अध्यापक पर डाल देने से भारी हानि होती है। यह एक प्रकार से स्कूल पर उस की शक्ति से बहुत बढ़ कर बोझ डालना है। यह एक बहुत बड़ा काम है। इस के सम्बंध मे आप को भूल मे नहीं रहना चाहिए। आप मे जो कुछ सर्वोत्तम है यह उस के लिए ललकार या चेलेंज है। परन्तु आप इस का सामना कर सकते है। आप को इस ललकार को अवश्य स्वीकार कर लेना चाहिए।

एक स्त्री ने एक पत्र मे एक लेख देखा। इस का शीर्षक था "युग के साथ साथ नैतिकता भी बदलती है।" किसी धर्माधर्म का विचार न करने वाले लेखक के इस लेख को पढ़ कर वह चुप नहीं बैठी रही। इस ने यह नहीं सोचा कि इस लेख के उत्तर मे कोई पत्र मेरा लेख नहीं छापेगा, वह कुड़कुड़ा कर या लेख के लेखक को कोस कर शान्त नहीं हो गई। इसने इसका

प्रतिवाद लिख भेजा। उसका उत्तर समाचार पत्र में छप गया। उसे पढ़ कर दूसरों को भी उसका प्रतिवाद करने का साहस हो गया। बस अश्लीलता तथा गन्दगी, जो बाहर फैलने लगी थी, वह बन्द हो गई।

आप स्त्रियाँ, जिनको विचार के आदान-प्रदान के आश्चर्य-जनक सुभीते हैं, जिनके पास अच्छे विचार हैं, समाचार पत्रों में लिख कर अद्भुत कार्य कर सकती हैं।

एक समाचार पत्र लिखता है—

"सार्वजनिक दायित्व की दुर्बलता इस बात में है कि बहुत से लोग इसे निजी या प्राइवेट तौर पर प्रकट करते हैं। वे जनता में अपने विचार को नहीं रखते।

घर में आप सबसे पहले अपने पति और बच्चों को प्रभावित कर सकती हैं, इसके बाद बाहर के संसार को। यदि तारुण्य की एक स्थिर धारा औसत अच्छे भारतीय घरानों से निकल कर जन सम्पर्क के चार बड़े क्षेत्रों—शिक्षा, गवर्नमेंट, श्रम-प्रबन्ध तथा लेख में प्रविष्ट होती रहे तो इन प्रभाव के महत्त्व-पूर्ण क्षेत्रों के सुधरने में देर न लगेगी।

पढ़ना एक महान् व्यवसाय है। इसके द्वारा आप सबसे अधिक भलाई कर सकते हैं। जो माता अपनी सन्तान को धर्म-शिक्षा नहीं देती वह बड़ी हानि करती है। आपको देखना चाहिए कि हमारे स्कूलों में उचित चीजें पढ़ाई जाती हैं। जहाँ माता-पिता अपने बच्चों की शिक्षा पर ध्यान नहीं देते, वहाँ स्कूली पुस्तकों में हानिकर बातें घुसेड़ दी जाती हैं।

स्त्रियाँ अपने पतियों, पुत्रों तथा भाइयों को प्रोत्साहित करके ऐसे कामों में लगा सकती है कि जहाँ आय बेशक कम है, पर जहाँ वे त्यागद्वारा संसार का उपकार अधिक कर सकते है। उनको सदा स्मरण कराती रहो कि आप त्याग द्वारा जनता जनार्दन की सेवा कर रहे है। त्याग उन्हे उस खाली आमोद की तालाश से बचा देगा जो लुभाता है, पर सन्तुष्ट नहीं करता।

बच्चों के मन मे ईश्वर, जन्मातर और कर्म-वाद मे विश्वास बैठाना चाहिए।

केवल निन्दा का प्रस्ताव पास करने से कोई बुराई रुक नही सकती। केवल बाते और कर्म न करने से कुछ नहीं बनता। जो कुछ नहीं करता उसे कुछ नहीं मिलता। आपको सुनिश्चित कार्य करना चाहिए।

अमेरिका के अन्तर्गत कैलेफोर्निया मे एक नीग्रो लड़का एक होटल मे जाकर नौकरी करने तथा पढ़ने लगा। होटल के ग्राहकों ने मालिक से कहा कि या तो इस नीग्रो लड़के को निकाल दो, या अपना होटल किसी दूसरी जगह ले जाओ। होटल वाला लड़के को नौकरी से निकालने ही जा रहा था कि एक पड़ोसी स्त्री ने सुना। उसने मालिक से कहा—"आपके कितने ग्राहक कम हो जाएंगे ?"

मालिक ने कहा—"बीस।"

इस पर वह बोली, "यदि मै आपको बीस ग्राहक ला दूं तो क्या आप उसे रक्खे रहेंगे ?" होटल के मालिक ने उत्तर दिया—"हाँ"

प्रतिवाद लिख भेजा। उसका उत्तर समाचार पत्र में छप गया। उसे पढ़ कर दूसरों को भी उसका प्रतिवाद करने का साहस हो गया। बस अश्लीलता तथा गन्दगी, जो बाहर फैलने लगी थी, वह बन्द हो गई।

आप स्त्रियाँ, जिनको विचार के आदान-प्रदान के आश्चर्य-जनक सुभीते है, जिनके पास अच्छे विचार है, समाचार पत्रों मे लिख कर अद्भुत कार्य कर सकती है।

एक समाचार पत्र लिखता है—

"सार्वजनिक दायित्व की दुर्वलता इस बात मे है कि बहुत से लोग इसे निजी या प्राइवेट तौर पर प्रकट करते है। वे जनता मे अपने विचार को नही रखते।

घर मे आप सबसे पहले अपने पति और बच्चो को प्रभावित कर सकती है. इसके बाद बाहर के संसार को। यदि तारुण्य की एक स्थिर धारा औसत अच्छे भारतीय घरानो मे निकल कर जन सम्पर्क के चार बड़े क्षेत्रो—शिक्षा, गवर्नमेंट, श्रम-प्रबन्ध तथा लेख मे प्रविष्ट होती रहे तो इन प्रभाव के महत्त्व-पूर्ण क्षेत्रो के सुधरने मे देर न लगेगी।

पढ़ना एक महान् व्यवसाय है। इसके द्वारा आप सबसे अधिक भलाई कर सकते है। जो माता अपनी सन्तान को धर्म-शिक्षा नहीं देती वह बड़ी हानि करती है। आपको देखना चाहिए कि हमारे स्कूलो में उचित चीजे पढ़ाई जाती है। जहाँ माता-पिता अपने बच्चों की शिक्षा पर ध्यान नही देते, वहाँ स्कूली पुस्तको मे हानिकर बाते घुसेड़ दी जाती है।

स्त्रियाँ अपने पतियों, पुत्रों तथा भाइयों को प्रोत्साहित करके ऐसे कामों में लगा सकती हैं कि जहाँ आय बेशक कम है, पर जहाँ वे त्यागद्वारा संसार का उपकार अधिक कर सकते हैं। उनको सदा स्मरण कराती रहो कि आप त्याग द्वारा जनता जनार्दन की सेवा कर रहे हैं। त्याग उन्हें उस खाली आमोद की तालाश से बचा देगा जो लुभाता है, पर सन्तुष्ट नहीं करता।

बच्चों के मन में ईश्वर, जन्मांतर और कर्म-वाद में विश्वास बैठाना चाहिए।

केवल निन्दा का प्रस्ताव पास करने से कोई बुराई रुक नहीं सकती। केवल बातें और कर्म न करने से कुछ नहीं बनता। जो कुछ नहीं करता उसे कुछ नहीं मिलता। आपको सुनिश्चित कार्य करना चाहिए।

अमेरिका के अन्तर्गत कैलेफोर्निया में एक नीग्रो लड़का एक होटल में जाकर नौकरी करने तथा पढ़ने लगा। होटल के ग्राहकों ने मालिक से कहा कि या तो इस नीग्रो लड़के को निकाल दो, या अपना होटल किसी दूसरी जगह ले जाओ। होटल वाला लड़के को नौकरी से निकालने ही जा रहा था कि एक पड़ोसी स्त्री ने सुना। उसने मालिक से कहा—"आपके कितने ग्राहक कम हो जाएँगे?"

मालिक ने कहा—"बीस।"

इस पर वह बोली, "यदि मैं आपको बीस ग्राहक ला दूँ तो क्या आप उसे रक्खे रहेंगे?" होटल के मालिक ने उत्तर दिया—"हाँ"

उसने बीस छोड़ उसे पच्चीस ग्राहक ला दिए । यह था, लोक-सेवा का सच्चा काम ।

एक यहूदी जोड़ा, आपस मे तलाक ले रहा था । एक व्यक्ति ने उन्हे समझा बुझा कर ठीक कर दिया । कोई अनीश्वरवादी कम्यूनिस्ट होता, तो वह तुरन्त उनको अलग-अलग कर देता । मेल कराने वाले धन्य है, क्योंकि वे भगवान् की सच्ची सन्तान कहलाएँगे ।

घर को देवालय बनाइए । इसके उपाय ये है—

संसार तथा मानव-जाति को दृष्टि मे रख कर सोचिए । चाहे आप संसार की भीड़ से कितनी दूर क्यो न रहते हों, आप उस तक पहुँचना आरम्भ कर सकते है । इस के करने की इच्छा तथा उद्योग से ही आप तथा आप के परिवार को भगवान् का आशीर्वाद प्राप्त हो जाएगा ।

एक स्त्री पहले भोजन बनाने, बर्तन माँजने तथा कपडे धोने मे ही लगी रहती थी । बाहर के संसार मे उसे कोई दिलचस्पी न थी । बाद को उसे एक लोक-सेवक मिला । तब से वह बाहर के संसार मे रुचि लेने लगी । पहले वह अपने जीवन मे ऊब रही थी । अब उस का जीवन सुखी, रुचिकर तथा आनन्दमय बन गया ।

संसार के तथा अपने घर के कल्याण के लिए भगवान् से प्रार्थना करो । सच्चा प्रभु-भक्त केवल अपने परिवार के लिए ही नहीं, वरन् सारे संसार के लिए मङ्गल-कामना करता है । प्रार्थना के पंखो पर सवार हो कर मनुष्य सारे ससार मे घूम जाता है ।

यदि अच्छा लगे तो विभिन्न विषयों तथा अपने उद्देश्यों पर मन को एकाग्र करो।

आप की प्रार्थना कुछ, इस प्रकार की होनी चाहिए—

हे प्रभो! हम में अपने देश के प्रति ऐसा गहरा प्रेम उत्पन्न कर कि हम इस के लिए तथा अपने देश-बन्धुओं के लिए सदा तत्परता-पूर्वक चिन्तित रहें।

हमें जन-सेवा तथा धर्म भावना में प्रचण्ड रुचि प्रदान कर, जिस के अभाव से देश में अनर्थ फैल रहा है।

हमें सचाई का मार्ग दिखा और उस पर चलने का सामर्थ्य भी प्रदान कर। हे प्रभु हमें मृत्यु से अमरता की ओर, अंधकार से प्रकाश की ओर और असत् से सत् की ओर ले चल।

हमारे राष्ट्रपति, हमारे प्रधान मन्त्री, हमारे लोक सदन तथा राज्य राजसदन के सदस्यों, हमारी प्रान्तीय सरकारों, हमारे राष्ट्र-संघ के डेलीगेटों, हमारे राज्यपालों, हमारे सामाजिक कार्य-कर्त्ताओं, राज कर्मचारियों और ऊँचे तथा नीचे पदाधिकारियों को, जिन के सिपुर्द उन अधिकारों की रक्षा करना है जो तू ने कृपा करके हमें प्रदान किए हैं, निःस्वार्थ भाव से जन-कल्याण का सामर्थ्य तथा बुद्धि प्रदान कर!

हमें ऐसा सामर्थ्य प्रदान कर जिस से हम अपने देश तथा समूचे संसार में सुख शान्ति फैलाने का साधन बन सकें।

स्त्रियों को चाहिए कि अपने बच्चों में उद्देश्य-युक्त जीवन बिताने की प्रबल इच्छा उत्पन्न करें। भारत के तीस करोड़ लोगों

मे से यदि एक करोड़ भी त्याग तथा लोक-सेवा का जीवन बिताने लगे तो संसार बदल कर पहले से बहुत अच्छा हो जाएगा। यदि प्रत्येक परिवार मे से एक-एक मनुष्य भी त्याग और तप का जीवन बिताने के लिए अपने को तैयार करे तो यह काम सरलता से ही हो सकता है। दुर्भाग्य की बात है कि बहुत से परिवार अपने बच्चों को ऐसे व्यवसाय करने के लिए प्रोत्साहित करते है, जहाँ वे वेईमानी से धन कमा सकते हैं, चाहे अनजाने उस से देश की घोर हानि ही क्यों न होती हो। जहाँ तक किसी भी रचनात्मक कार्य का सम्बन्ध है वे उन को उस मे जाने से रोकते है। वे उन को नेता के स्थान में निरुद्देश्य अनुयायी बनना सिखाते है। वे उन को सैकड़ों विभिन्न रीतियों से ढालते है। वे उन को ऐसे निश्चित कार्य-क्रम या रुटीन मे डाल देते है जिस से वे निष्क्रिय बने रह कर जो कुछ निकाल सकते है संसार मे से निकाल ले। दूसरे शब्दों, में वे अपने बच्चों को सिखाते है कि संसार को कुछ देना नहीं चाहिए, उस से लेते ही जाना चाहिए। बड़ी-बड़ी ईश्वर-भक्ति और जप-जाप करने वाले माता-पिता भी धन-दास होते जा रहे है।

भलाई करने की गुप्त शक्ति, जो प्रत्येक व्यक्ति मे है, उस की उपेक्षा करने की दु:खद प्रवृत्ति बढ़ रही है। यदि वह शक्ति प्रस्फुटित होने लगती है, तो उसे निर्जीव बना दिया जाता है। इस के स्थान मे वे रद्दी तथा निकम्मे उद्देश्य अपने बच्चों के सामने रखते है। वे अमित धन, पहले से अच्छे कपड़े, सुन्दर घर और बहुमूल्य मोटरकार, यही आदर्श उन के सामने सदा प्रस्तुत किया करते है।

परन्तु इसमे माता-पिता को बहुधा निराशा हुआ करती है।

जर्मनी में नाजियों ने नहीं, स्वयं माता-पिता ने अपने बच्चों के सामने ऐसे आदर्श रख कर अपने विनाश में भाग लिया था।

अपने जीवन के पहले पन्द्रह बीस वर्ष आप के बच्चे पथ-दर्शन के लिए आप की ओर देखा करते हैं, न केवल छोटी छोटी बातों में ही, वरन् जीवन की बड़ी-बड़ी बातों में भी। उस समय आप चाहें उन को धन-लोलुप बना सकते हैं और चाहें त्यागी, परोपकारी तथा धर्मात्मा। अपने बच्चों में सद्गुण विकसित करके उन को अच्छे नागरिक बना कर आप समाज के उद्धार का पुनीत कार्य आरम्भ कर देते हैं। जब वे देश के शासन-विभाग में काम करने लगेंगे तो वे न केवल आप वरन् उन के साथ कई दूसरे भी संसार की आशा बन जाएँगे। यदि वे आप के द्वारा उन में बोए हुए ये भलाई के बीज संसार में ले जाएंगे, आप उन में अभी से मिश्नरी भाव उत्पन्न कर देंगे तो वे अध्यापक, राज्यकर्मचारी, लेखक, श्रम-क्षेत्र के विशेषज्ञ, लायब्रेरियन, सोशल सर्विस वर्कर और वक्ता बन कर संसार में अगणित लोगों के जीवनों को प्रभावित करेंगे।

संस्थाओं तथा राष्ट्रीय प्रवृत्तियों में आप को भाग लेना चाहिए। आप को चाहे घरेलू कामों से बहुत कम अवकाश मिलता हो तो भी कुछ न कुछ समय बड़े-बड़े राष्ट्रीय उपायों तथा अपने इर्द-गिर्द की परिस्थिति की युक्तियों पर विचार करने में लगाइए। स्थानीय विचारणीय समस्याओं पर आँखें बन्द न कर लीजिए। वे महत्त्वपूर्ण हैं।

आप देखेंगी कि जितना अधिक आप बड़ी समस्याओं में दिलचस्पी लेंगी उतना ही अधिक आप स्थानीय विषयों के महत्त्व-

प्रधान धारा को विपाक्त करने के यत्न मे रहते है। उन से लोगों को सदा बचाती रहिए।

इस के विपरीत अच्छे लोग अपने आप मे मग्न रहते है। वे भीड़ मे जा कर बहुत कम मिलते है। इस से बड़ी हानि रहती है।

किसी सभा से रूठ कर त्याग-पत्र देना मानो, दुष्टों को अनिष्ट करने का और भी अवसर देना है। आप वहाँ रह कर जनता का भला कर सकती है।

सुख मूलतः एक आध्यात्मिक बात है। किसी दूसरी वस्तु की अपेक्षा धर्म-विश्वास साधारण मनुष्य को अधिक सुख-शान्ति देता है।

इस के कारण वह अनेक प्रकार की बुराइयों से बचा रहता है। नगरपालिका, पंचायत, असेम्बली तथा पार्लियामेंट के चुनाव मे न केवल आप ही भाग लीजिए, वरन् दूसरो को भी उन मे भाग लेने की प्रेरणा कीजिए। चुनाव मे पूरा मनोयोग दीजिए। लोगों को प्रत्येक बात समझाइए। उम्मीदवारो के विषय मे पूरी जानकारी प्राप्त कीजिए। स्कूलों की पाठ्य-पुस्तको मे देखिए कि उन मे कोई हानिकारक बाते तो नहीं भर दी गई है। उन मे आप को जो दोष दिखाई दें उन को पदाधिकारियों तक पहुँचाइए। इस काम मे दूसरों को भी अपने साथ लीजिए। यह आप का अधिकार है। आप टैक्स देती है।

पंजाब के स्कूलो की पॉचवी कक्षा मे "बाल-विलास" नाम की एक पुस्तक पढ़ाई जाती है। उस के आरम्भ मे ही एक प्रार्थना दी गई है। उस मे ऐसी बाते कही गई है जो जात-पॉत मूलक

ऊँच-नीच के भाव का प्रचार करती है। मैंने जब उसे पढ़ा तो उन्हें दूर करने के लिए भारत के प्रधान-मंत्री और पंजाब-सरकार को लिखा। लम्बे पत्र-व्यवहार के पश्चात् उन्हो ने मेरी आपत्ति नोट कर ली। मैंने असेम्बली के एक-दो सदस्यों से भी इस विषय मे प्रश्न करने को कहा। इस का परिणाम यह हुआ कि पंजाब के शिक्षा-विभाग ने मुझे वचन दे दिया कि पुस्तक के अगले संस्करण मे दोनो पाठ बदल दिये जायँगे। मैं भी यदि बुदबुदा कर चुप बैठ जाता तो सम्भवत: कुछ न होता।

किसी बुराई को रोकने के लिए समाचार-पत्रों मे चिट्ठी लिखना एक बड़ा उपयोगी साधन है। यह प्रबल साधन सभी माता-पिता के हाथ मे है। कम-से-कम एक स्त्री को बाते करने वाली के स्थान मे जन-कल्याण के लिए काम करने वाली बनाइए।

एक समय की बात है। एक स्त्री ने निम्नलिखित आशय की चिट्ठी छपाई :—

"मैं और आप अच्छे स्कूल, अच्छी गवर्नमेंट और अच्छा सब-कुछ चाहते है। परन्तु हम एक उँगली तक हिलाने को तैयार नहीं। मुझे एक भी ऐसी सहेली का पता नहीं जो अपने एक भी बच्चे को ऐसी ट्रेनिङ्ग दे रही हो, जिस मे वह अपना ही स्वार्थ सिद्ध न करे, वरन् देश-हित के लिए निजी स्वार्थ को न्योछावर कर दे।"

इस चिट्ठी का यह प्रभाव हुआ कि उस की एक सहेली का एक पुत्र अपना अधिक रुपये कमाने वाला काम छोड़ कर स्कूल-अध्यापक बन गया।

प्रगतिशील साहित्य के नाम पर आज जो पत्र-पत्रिकाओ में निर्लज्जतापूर्ण अश्लील कहानियाँ छप रही हैं और रेडियो पर जो गंदे गीत प्रसारित किए जाते हैं, उन के विरुद्ध जमनानगर से

एक लड़की ने अम्बाला छावनी के ट्रिब्यून पत्र मे एक चिट्ठी छपाई। इस से प्रोत्साहित हो कर और भी अनेकों ने उस के विचारो का समर्थन किया। इस का फल बहुत अच्छा हुआ।

गवर्नमेण्ट और शिक्षा-विभाग आदि हम पर शासन न करे, आप उन पर शासन कीजिए। आप टेक्स देती है। इस लिए आप अपनी आवाज सुनी जाने पर आग्रह कर सकती है। आप शिक्षा मे सचाई तथा ईमानदारी पर दृढ रह कर अपनी आवाज सुना सकती है। पाठ्य पुस्तकों मे से अवाञ्छनीय बाते निकलवाना तो बात ही कुछ नही, दूसरे माता-पिताओं को इस प्रतिवाद मे अपने साथ मिला कर आप उन के सहयोग से पर्वत को भी हिला सकती है।

गन्दे फिल्म न देख कर, गन्दे रेडियो न सुन कर, गन्दी पत्रिकाएँ न खरीद कर आप दूसरों के सामने बड़ा अच्छा उदाहरण प्रस्तुत कर सकती है। इसका आश्चर्यजनक परिणाम होता है।

आप अपना जीवन मन के लड्डू खाने मे बिताती है। आप प्रस्ताव पास करने या घर मे बैठ कर अवस्थाओ के विरुद्ध शिकायत करने मे समय नष्ट करती है। इस के विपरीत अनिष्ट-कारी लोग बहुजन से मिल कर अपना प्रचार करते है। इसलिए वे सफल हो जाते है।

आप अपने ज्ञान-दीपक को जला कर श्रद्धा, विश्वास, इच्छा तथा साहस के साथ भूल, गड़बड़, घृणा तथा भ्रष्टता के अंधकार मे ले जा सकती है।

देवियो, आप मे असीम शक्ति है। आप संसार की बहुत बड़ी भलाई कर सकती है। आप सारे संसार को स्वर्ग-धाम बना सकती है इसे नया बना सकती है।

चिट्ठी लिखना

समझदारी के साथ ऐसी चिट्ठी लिखना जिस में कोई रचनात्मक संदेश हो उन स्वतन्त्रताओं की रक्षा के लिए जो भगवान् ने हमारे समाज को प्रदान की हैं, एक बड़ी भारी सेवा है। जो चिट्ठी आप आज लिखते है, हो सकता है कि वह कल आप के घर तथा सहस्रों मील दूर के घरों की रक्षा का कारण बन जाए। वास्तव में ऐसी रचनात्मक चिट्ठियाँ हमारे राष्ट्र के लिए एक प्रकार से जीवन की इंश्यूरेन्स है।

कुछ समय की बात है अमेरिका मे हूवर को निकालने का षड्यन्त्र रचा गया। जनता में अपवाद फैला दिया गया कि उसे किसी ऊँचे पद पर भेज देना चाहिए। यह देख कर एक स्त्री ने एक लोक सेवक को चिट्ठी लिख दी। उस लोक-सेवक ने दस मित्रों को बुला कर बात की। फिर उन्हो ने अपने लेजिस्लेटरों को चिट्ठियाँ लिखनी आरम्भ कीं। वाशिङ्गटन में चिट्ठियों का ढेर लग गया। परिणाम यह हुआ कि षड्यन्त्र का भण्डा-फोड़ हो जाने से उपद्रव रुक गया।

फिल्म, समाचार-पत्र, उत्तरदायित्व के पदों पर आरूढ लोग, लेजिस्लेटर, संवाद-पत्रों तथा मासिक पत्रिकाओं में लिखने वाले, रेडियो डायरेक्टर प्रभृति लोग जितना समझा जाता है उस से कहीं अधिक सार्वजनिक मत से प्रभावित होते हैं। रचनात्मक चिट्ठियों ने कई चलचित्रों का सुधार कर दिया है।

रीडरस डायजस्ट अमेरिका का एक बहुत प्रसिद्ध मासिक-पत्र है। उस मे एक सज्जन ने लिखा है—"प्रतिदिन दस बजे वाशिंगटन मे ४३५ प्रतिनिधि और ६६ सेनेटर वही काम करते—अपनी डाक पढ़ते—मिलेंगे। एसंबली तथा ससद् के सदस्य हो सकता है कि पार्टी मीटिङ्ग मे न जाएं, लोक-सदन की बैठक मे अनुपस्थित रहे, परन्तु वे अपनी चिट्ठियाँ अवश्य पढ़ते है। साठ सहस्र चिट्ठियाँ प्रतिदिन कांग्रेस में आती है। एक अकेला जिला या निर्वाचन-क्षेत्र १२२ चिट्ठियाँ प्रतिदिन भेजता है। अपनी डाक से लेजिस्लेटरो को पता लगता रहता है कि हमारे देश-बन्धु क्या चाहते है।"

हमारे भारत मे भी यदि सब मतदाता लोग एसबली तथा पार्लियमेण्ट मे अपने प्रतिनिधियो को इसी प्रकार चिट्ठियाँ लिखा करें, तो अवस्था का बहुत सुधार हो सकता है।

जो चिट्ठी किसी एसंबली के सदस्य से केवल इतना ही कहती है कि अमुक विषय मे अमुक पक्ष मे वोट देना, ऐसी एक दर्जन चिट्ठियो से एक चिट्ठी जो कोई रचनात्मक सुझाव देती है, अधिक महत्त्व-पूर्ण समझी जाती है।

अपनी स्टेशनरी पर किसी अयत्न-संभूत आवेग अर्थात् मन मे अपने आप उठे हुए विचार को अपनी चिट्ठी मे लिखना एक सौ एक ही तरह की स्टीरियोटायपड चिट्ठियो, समाचार-पत्रो के कतरनों और टेलीग्रामों से अच्छा है। किसी दूसरे की तैयार की हुई चिट्ठी पर हस्ताक्षर करने या उस की नकल करने मे समय नष्ट न कीजिये। सदा अपने ही सोए हुए विचार लिख कर भेजिये।

एक मनुष्य जो दस वर्ष अमेरिका की कॉंग्रेस का मेम्बर रहा था, लिखता है कि जिन चिट्ठियो को सच-मुच महत्त्व दिया जाता है वे है जो आप के चुने हुए मेम्बर पर आगे लिखी तीन बातें प्रकट करती है—१ वह चिट्ठी आप ने स्वयं लिखी है। २. आप को उस विषय का ज्ञान है। ३. आप ने कुछ विचार किया है।

यदि एक वर्ष मे एक भी पत्र प्रत्येक मत-दाता अपने चुने हुए लेजिस्लेटर को लिखे तो हमारी एसम्बलियॉ अब से अधिक अच्छी हो जाऍ। इस लिए अच्छी चिट्ठी की शक्ति को भी कम नहीं समझना चाहिए।

अनेक बार एक ही पत्र वरन् एक छोटे से नोट ने कई स्त्रियो तथा पुरुषो की जीवन-धारा को बदल दिया है। थोड़ी सी अच्छी, निष्कपट तथा मौके की चिट्ठियॉ लाखो लोगो के चिन्तन को प्रभावित कर देती है।

अनेक लोग इसी लिए चिट्ठियॉ नहीं लिख सकते, क्योकि उन का भाव होता है कि चिट्ठी लिखने से क्या भलाई होगी, जो होना था सो हो गया। यह तर्क बहुत सदोष है। एक रेडियो वाले ने कहा था कि यदि आप को रेडियो पर अच्छे गाने या दूसरी अच्छी चीजें इच्छा के अनुकूल सुनने को नहीं मिलती, तो यह आप का ही दोष है। हम तो अपने सुनने वालो की इच्छा के अनुसार प्रोग्राम बनाते है। आप हमे बताते ही नहीं। तो हम क्या करे ? इसलिए चिट्ठी लिखने का बड़ा प्रभाव होता है। यही शक्ति दूसरी जगह भी काम कर सकती है।

एक स्त्री ने चल-चित्र वालों को लिखा कि नवयुवको को गन्दे चित्र नहीं दिखाने चाहिऍ। उन्हे साहस, वीरता तथा विज्ञान आदि के हितकर चित्र ही दिखाने चाहिये।

पर फिल्म के प्रबन्ध-कर्त्ता ने उस के पत्र की पर्वाह ही न की। उस ने चिट्ठी को दबा लिया। वह मन में कहने लगा, वह आप ही ठण्डी हो जाएगी। परन्तु वह कोई मौजी स्त्री न थी। वह एक गम्भीर स्त्री थी। उस ने अपने परिचितों मे बात-चीत कर के बहुत सी चिट्ठियाँ लिखाई। फलतः, जनता की सम्मति इतनी प्रबल हो गई कि फिल्म कम्पनी को अपना ढंग बदलना पड़ा।

चिट्ठी संक्षिप्त तथा सारगर्भित होनी चाहिए।

एक लड़की ने एक समाचारपत्र-सम्पादक को तलाक अश्लील कहानियों तथा गन्दे विज्ञापन आदि के विरुद्ध लिखा। सम्पादक को उस का पत्र इतना पसंद आया कि उसने सम्पादकीय में उसका उल्लेख करके पाठकों से उस पर गम्भीरता-पूर्वक विचार करने को कहा।

कभी-कभी लिखी जाने वाली चिट्ठी माँग करती है कि उसे उस से अधिक जोरदार भाषा में लिखा जाए जिस में कि साधारण रूप मे चिट्ठियाँ लिखी जाती है।

अच्छी चिट्ठी लिखने के लिए पहली तैयारी यह है—

पर्यवेक्षण—पढ़ना तथा सोचना। पहले ठीक, सही तौर पर देखना और उसे याद रखना सीखना चाहिए। एसम्बली और संसद में जो कुछ हो रहा है उसे पत्र-पत्रिकाओं में पढ़ते रहने का महत्त्व बताने की आवश्यकता नहीं। इस मे चिट्ठी लिखने में बड़ी सहायता मिलती है साथ ही यह अच्छी शिक्षा भी है।

देखे तथा पढ़े पर यदि मनन न किया जाए तो दोनों की उपयोगिता बहुत कम हो जाती है। जो मनुष्य मनन नहीं करता

वह उस व्यक्ति के सदृश है जो मानव-जीवन के नाना-प्रकार के चित्रों से युक्त दीवार पर लटके हुए कपड़े के परदे को उलटी ओर से देखता है और कोई बात नहीं सुना सकता।

हम पत्र द्वारा दूसरे को प्रभावित करने में कभी सफल नहीं हो सकते, यदि हम उस वस्तु को अपने पास रखने का दिखलावा करते है जो वास्तव में हमारे पास नहीं।

जो कुछ हम जानते है उस का अधिक से अधिक उपयोग करने में कोई डर नहीं।

हमें स्वल्प तथ्यों के साथ चिपटे रहना चाहिए और अपने ईमानदाराना भाव प्रकट करने चाहिएं। इस के विपरीत ऐसे विचार प्रकट करना जो हमारे नहीं, कठिनाई को बुलाना है।

अनुकरण के लिए चार निश्चित नियम

सब प्रकार के लेखन का—चिट्ठी, पुस्तक, कहानी, उपन्यास तथा निबंध का—आधार ये चार मौलिक नियम है—१. एकता, २. संलग्नता, ३. किसी शब्द पर बल, ४. रुचि।

१. एकता का अर्थ है कि चिट्ठी एक ही विषय के संबंध में हो। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि अच्छी व्यापारिक रीति यह है कि एक चिट्ठी में एक ही बात का उल्लेख हो।

एकता को प्राप्त करने के लिए बहुत अधिक उद्योग की अपेक्षा नहीं। हाथ में लेखनी लेने या टायपरायटर के सामने बैठने से

हूँ ? इस प्रश्न को न पूछने से ही सब प्रकार के लेखकों से अधिक भूलें होती है।

२. चिट्ठी मे संगति को बनाए रखने के लिए एक अंश दूसरे अंश के बाद तर्क-संगत तथा स्वाभाविक रूप से आए। लिखने के लिए बाते ऐसे क्रम से रखीं जाएँ कि पढ़ने वाले को उन के महत्त्व का क्रम स्पष्ट देख पड़े।

-. आपकी चिट्ठी के कुछ अश दूसरे अशो से अधिक महत्त्व-पूर्ण होगे। इस लिए आप कुछ बातो पर अधिक ध्यान दिलाना चाहेंगे। इस का अर्थ यह है कि विचारो को सोच-समझ कर आगे पीछे रखा जाए। इसी से किसी एक बात पर जोर पड़ता है।

४. लोगो की प्रवृत्ति उस चीज को याद रखने की ओर होती है जो किसी चिट्ठी या पुस्तक मे पहले लिखी जाती है, या अंत मे लिखी जाती है। यदि महत्त्वपूर्ण बात अंत मे कहनी हो तो चिट्ठी इतनी दिलचस्प बनाओ कि पढ़ने वाला उसे अत तक पढ़ जाए।

किसी विचार को लिखने मे आप अपनी चिट्ठी मे जितना स्थान देते हैं उस से पता लगता है कि आप उसे पढ़ने वालो के लिए कितना महत्त्व देना चाहते है, पाठको के मन पर उस विचार को कितना गहरा अंकित करना चाहते है।

पाठक की दिलचस्पी को पकड़ने की हृदयग्राही रीति यह है कि ठोस बाते खूब खोल कर लिखी जाएँ। उदाहरण, दृष्टांत, तुलना, कहानी-वर्णन और सम्वाद-पत्रो से सत्य घटना सम्बन्धी संकेत इस काम मे बड़ी सहायता देंगे। जिन विचारो को आप प्रस्तुत करना चाहते हैं ये चीजे उन के साथ पाठक के ध्यान को बॉध देंगी।

अपनी चिट्ठियों में अपना आप उँडेल दीजिए। जिस बात के बारे में आप लिख रहे हैं, उसे समझिए। जिस बात को आप सिद्ध करना चाहते हैं उस के समर्थन में पर्याप्त साक्ष्य इकट्ठे कीजिए। अपने विचारों को चित्ताकर्षक रीति से प्रस्तुत कीजिए। सक्षेप से काम लीजिए। परन्तु रूखे न बनिए। अपनी सभी चिट्ठियों में सयत स्वर से काम लीजिए। यदि आप की इच्छा आलोचना करने की ही हो तो मित्रोचित तथा रचनात्मक आलोचना ही कीजिए। यह क्रोधपूर्ण आवेग की अपेक्षा अधिक काम करेगी।

अरुचिकर हुए बिना असहमत होने का एक उदाहरण निम्न-लिखित चिट्ठी है। यह चिट्ठी एक स्त्री ने एक पत्र-सम्पादक को लिखी थी।

'प्रिय महाशय,

दूसरे लाखों मनुष्यों की तरह मैं भी वर्षों से आप का पत्र पढ़ती हूँ। इस से मुझे आनन्द भी बहुत मिलता है। परन्तु कुछ दिन से मैं हैरान हूँ कि मैं आप का पत्र मँगाऊँ या नहीं। मेरे घर में दो बच्चे भी हैं। आप के पत्र में नंगी नहाती हुई युवतियों के चित्र छपा करते हैं। आँख से देखी हुई बुरी चीज का कान से सुनी या पढ़ी हुई बुराई से भी अधिक गहरा प्रभाव पड़ता है। इन चित्रों को देख कर काम-वासना का भड़कना अवश्यम्भावी है। यह कहना ठीक नहीं कि जिन बच्चों को घर पर अच्छी चारित्रिक शिक्षा मिली है उन पर बाहर की बातों का प्रभाव नहीं होता। गन्दा वातावरण सब कहीं हानिकारक प्रमाणित होता है। आज मैं इस सोच में पड़ी हूँ कि आप का पत्र मँगा कर अपने बच्चों का चरित्र बिगड़ने दूँ या उसे न मँगा कर

हूँ? इस प्रश्न को न पूछने से ही सब प्रकार के लेखकों से अधिक भूलें होती हैं।

२. चिट्ठी में संगति को बनाए रखने के लिए एक अंश दूसरे अंश के बाद तर्क-संगत तथा स्वाभाविक रूप से आए। लिखने के लिए बातें ऐसे क्रम से रखी जाएँ कि पढ़ने वाले को उन के महत्त्व का क्रम स्पष्ट देख पड़े।

-. आपकी चिट्ठी के कुछ अंश दूसरे अंशों से अधिक महत्त्व-पूर्ण होंगे। इस लिए आप कुछ बातों पर अधिक ध्यान दिलाना चाहेंगे। इस का अर्थ यह है कि विचारों को सोच-समझ कर आगे पीछे रखा जाए। इसी से किसी एक बात पर जोर पड़ता है।

४. लोगों की प्रवृत्ति उस चीज को याद रखने की ओर होती है जो किसी चिट्ठी या पुस्तक में पहले लिखी जाती है, या अंत में लिखी जाती है। यदि महत्त्वपूर्ण बात अंत में कहनी हो तो चिट्ठी इतनी दिलचस्प बनाओ कि पढ़ने वाला उसे अंत तक पढ़ जाए।

किसी विचार को लिखने में आप अपनी चिट्ठी में जितना स्थान देते हैं उस से पता लगता है कि आप उसे पढ़ने वालों के लिए कितना महत्त्व देना चाहते हैं, पाठकों के मन पर उस विचार को कितना गहरा अंकित करना चाहते हैं।

पाठक की दिलचस्पी को पकड़ने की हृदयग्राही रीति यह है कि ठोस बातें खूब खोल कर लिखी जाएँ। उदाहरण, दृष्टांत, तुलना, कहानी-वर्णन और सम्वाद-पत्रों से सत्य घटना सम्बन्धी संकेत इस काम में बड़ी सहायता देंगे। जिन विचारों को आप प्रस्तुत करना चाहते हैं ये चीजें उन के साथ पाठक के ध्यान को बाँध देंगी।

अपनी चिट्ठियों मे अपना आप उँडेल दीजिए। जिस बात के बारे मे आप लिख रहे है, उसे समझिए। जिस बात को आप सिद्ध करना चाहते है उस के समर्थन मे पर्याप्त साक्ष्य इकट्ठे कीजिए। अपने विचारों को चित्ताकर्षक रीति से प्रस्तुत कीजिए। संक्षेप से काम लीजिए। परन्तु रूखे न बनिए। अपनी सभी चिट्ठियों मे संयत स्वर से काम लीजिए। यदि आप की इच्छा आलोचना करने की ही हो तो मित्रोचित तथा रचनात्मक आलोचना ही कीजिए। यह क्रोधपूर्ण आवेग की अपेक्षा अधिक काम करेगी।

अरुचिकर हुए बिना असहमत होने का एक उदाहरण निम्नलिखित चिट्ठी है। यह चिट्ठी एक स्त्री ने एक पत्र-सम्पादक को लिखी थी।

'प्रिय महाशय,

दूसरे लाखों मनुष्यों की तरह मैं भी वर्षों से आप का पत्र पढ़ती हूँ। इस से मुझे आनन्द भी बहुत मिलता है। परन्तु कुछ दिन से मैं हैरान हूँ कि मैं आप का पत्र मँगाऊँ या नहीं। मेरे घर मे दो बच्चे भी है। आप के पत्र मे नंगी नहाती हुई युवतियों के चित्र छपा करते है। आँख से देखी हुई बुरी चीज का कान से सुनी या पढ़ी हुई बुराई से भी अधिक गहरा प्रभाव पड़ता है। इन चित्रों को देख कर काम-वासना का भड़कना अवश्यम्भावी है। यह कहना ठीक नहीं कि जिन बच्चों को घर पर अच्छी चारित्रिक शिक्षा मिली है उन पर बाहर की बातों का प्रभाव नहीं होता। गन्दा वातावरण सब कहीं हानिकारक प्रमाणित होता है। आज मैं इस सोच मे पड़ी हूँ कि आप का पत्र मँगा कर अपने बच्चों का चरित्र बिगड़ने दूँ या उसे न मँगा कर

अपनी प्रसन्नता का बलिदान कर दें। आप के पत्र में यदि नग्न-स्त्रियों के चित्र न छपे तो भी वह इतना अधिक चित्ताकर्षक है कि सभी लोग उसे खरीदे बिना न रहेंगे।

आप रचनात्मक सुझाव सुनने के लिए सदा तैयार रहते हैं। इसी लिए यह पत्र लिख रही हूँ। जिस शुद्ध भाव से मैं ने ये पंक्तियाँ लिखी हैं आशा है आप उन्हें उसी भाव से ग्रहण करेंगे।"

आप की—

क० दे०

संस्थाएँ और पत्र-सम्पादक रचनात्मक आलोचना और सुझावों का स्वागत तथा आदर करते हैं। परन्तु इस के साथ प्रशंसा तथा आदर का भाव भी दिखलाना चाहिए। आलोचना में गुण-ग्राहिता तथा उच्च धारणा भी रहनी चाहिए। प्रोत्साहन का एक संक्षिप्त सा नोट भी दूर तक पहुँचने वाला परिणाम रखता है।

एक व्यक्ति ने अमेरिका में एक रेडियो कम्पनी वाले को लिखा कि आप ने यह जो नया प्रोग्राम आरम्भ किया है, यह कम्यूनिस्ट षड्यंत्र का पोल खोलने के लिए बहुत अच्छा है। आशा है यह आप के अच्छे प्रोग्राम का आरम्भ मात्र होगा और आप उसे आगे भी जारी रखेंगे। इस काम में परमात्मा का आशीर्वाद आप के साथ है। आप की पूर्णत. योग्य निर्देश के अधीन ऐसे चित्र भविष्य में सुकार्य को जारी रखने के लिए प्रोत्साहन का काम देते हैं।

इस पत्र की प्रतिक्रिया यह हुई कि रेडियो वालों ने कृतज्ञता प्रकाशित की कि आप हमारे इस काम में इतनी दिलचस्पी ले रहे हैं।

एक रेडियो-प्रबन्धक ने लिखा कि आप की सुखदायक टिप्पणी

के लिए धन्यवाद। जिन कर्मचारियों के साथ इस का सम्बन्ध था उन सब को आप की चिट्ठी दिखाई गई और स्वभावत: ही वे बड़े प्रसन्न हुए। आप जैसे सज्जन के पत्र से जो प्रोत्साहन हमें मिलता है उस के लिए मैं कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

आप का पत्र अखबार में छपे या न छपे, उस का उत्तर आए या न आए, विश्वास रखिए कि यदि वह अच्छे शब्दों में लिखा गया है तो उस का प्रभाव अवश्य होगा और उस को सम्पादक या सरकारी पदाधिकारी जिसे वह लिखा गया है अवश्य पढ़ेगा।

प्रोपेगण्डा. प्रशंसा या रचनात्मक आलोचना का एक पत्र प्रति सप्ताह लिखिए। फिर ऐसा ही पत्र आप प्रतिदिन भी लिख सकते हैं। आप के केवल कुछ मिनट और डाक में भेजने में केवल चार पैसे लगेंगे। आप का पत्र अच्छा है, यह जानने के लिए आप को ये नियम याद रखने चाहिएँ—

१. इस प्रकार लिखिए, मानो आप अपने किसी मित्र को लिख रहे हैं—व्यक्तिगत रूप से, निजी तौर पर न कि एक पराये के रूप में।

२. रचनात्मक बातें लिखिए, विध्वंसात्मक नहीं।

३. निश्चित बातें लिखिए अनिश्चित नहीं।

४. अपना उद्देश्य बताइए, परन्तु इसे बार-बार दुहराते न जाइये।

५. संक्षेप से काम लीजिये परन्तु रूखे न बनिये

६. अपना आप वनिये, अपने लिए आप सोचिये और अपने लिए लिखिये ।

७. इस प्रकार लिखिए मानों आप बातें कर रहे है ।

८ कोई निश्चित सुझाव रखिए, केवल शिकायत ही न कीजिए ।

९. तथ्यों के साथ नियोजित भाव भी प्रविष्ट कीजिए ।

१० अपना नाम तथा पता साफ-साफ और ठीक-ठीक लिखना न भूलिए । जिन चिट्ठियों पर लेखक का नाम नहीं लिखा रहता उन पर ध्यान नहीं दिया जाता ।

लोक-सेवक के रूप मे आप का कर्तव्य है कि प्रत्येक ऐसे विषय पर अपने विचार प्रकट करें जो आप तथा आप के पडोसी पर प्रभाव डालता है ।

आप समाचार-पत्र, रेडियो, असेम्बली के सदस्य और सरकारी पदाधिकारी को पत्र लिख कर सहस्रों लोगों के मनोभाव उन तक पहुँचाते है । यह एक बड़ी सेवा है ।

व्यापारियों के प्रति ललकार

एक अच्छे व्यापारी मे ये गुण होने चाहिएँ—

वह वचन का पक्का तथा ईमानदार होता है वह अपनी धन-सम्पदा तथा सत्ता से किसी मनुष्य को नीचा दिखाने का यत्न नहीं करता. उसे अपमानित नहीं करता। उस की उपाधियाँ उसके सम्मान को नहीं बढ़ातीं, वरन् उस के कारण उन उपाधियों का मूल्य बढ़ जाता है। वह दूसरों को अपना रुपया ही नहीं देता, वरन् समय तथा अपना आप भी उन को दे देता है। जो भी उस से काम माँगने जाता है उसे वह कभी हताश नहीं लौटाता; ऐसा ही एक सद्गुणी व्यापारी जब इस संसार से चला तो मजदूर. माली, कुली, आढ़ती, सभी लोग उस की अर्थी के साथ थे।

बहुत लोग धनी लोगों को पूञ्जीपति या रक्त-शोषक कह कर उन से घृणा किया करते है। परन्तु उपर्युक्त धनी मनुष्य ने अपने यौवन-काल मे जो धर्म-भाव प्राप्त किया था उस के कारण उस का जीवन इतना परोपकारमय बन गया था कि छोटे से बड़े तक सभी घर-बारी लोग उस पर प्रेम और उस का आदर करते थे। उसे दूसरो को सुखी बना कर सुख मिलता था। वह बड़ा आनन्दी था। वह उन दरिद्र लोगो पर विशेषरूप से दया करता था जिन पर कोई ध्यान नहीं देता। रुपया-पैसा उस के लिए कोई वस्तु न थी।

इसी प्रकार एक लोहार का उद्देश्य संसार को पहले से थोड़ा-सा भी अधिक सुखी बनाना था। वह लोहार उस धन कुबेर से कहीं

अच्छा था जो अपना रुपया केवल अपने सुख-भोग के लिए ही व्यय करता है।

इस लोहार को राष्ट्र-संघ (यू. एन ओ.) का पहले-पहल वैलट-बॉक्स बनाने का विशेषाधिकार प्राप्त हुआ था। उस मे उस ने एक चौपाई लिख कर डाल दी थी। उस कविता का आशय यह था—

"मैं पहला वोट डालूँ। भगवान् राष्ट्र-संघ के प्रत्येक सदस्य के साथ हो। आप लोगों के पवित्र उद्योग से संसार मे स्थायी शांति हो, ऐसी मेरी प्रभु से प्रार्थना है।"

इस साधारण से काम से उस ने संघ के सदस्यों को उपदेश दिया। उस जैसे सहस्रों व्यापारी तथा शिल्पी और भी है। पर वे भलाई करने की अपनी शक्ति का अनुभव नहीं करते। वे अपने को अपने संकीर्ण क्षेत्र में ही बंद रखते है। वे भलाई करने मे उतनी तत्परता के साथ भाग नहीं लेते जितनी तत्परता से वे भाग ले सकते है। वे यह तो मानते है कि संसार रोगी है, पर वे उनके साधारण से उपचार की भी उपेक्षा कर देते है, जो उस रोग को दूर कर सकता है। वे कुछ भी यत्न नहीं करते। इस प्रकार वे दुष्टता करने वालों के लिए मैदान खाली छोड़ देते है।

जो भी व्यक्ति विचार का नियन्त्रण करता है वह शेष सब कुछ का नियन्त्रण करता है। जिस व्यक्ति के विचारो को बदल कर आप अपने साथ मिला लेते या अपने अधीन कर लेते है उसे आप अपनी उँगली पर नचा सकते है।

रूस मे अनीश्वरवादियों की एक अल्प परन्तु सगठित संस्था वहाँ की समूची राज-सत्ता को हथियाए हुए है। राबर्ट रियली नाम का एक सज्जन अपनी "विश्वास करो या न करो" नामक

पुस्तक में रूस की दशा का वर्णन इन शब्दों में करता है—

एक सोवियट नागरिक भूमि का स्थायी स्वामी नहीं हो सकता। वह अपना व्यवसाय नहीं चुन सकता। वह हड़ताल नहीं कर सकता, मजदूर नहीं लगा सकता, अपने पास रत्न नहीं रख सकता, ज्यूरी द्वारा न्याय नहीं करा सकता, काम से अनुपस्थित नहीं हो सकता। वह हड़ताल में मजदूरों को काम करने से नहीं रोक सकता। वह यात्रा नहीं कर सकता। वह गिरजे की घंटी नहीं बजा सकता। वह किसी विदेशी से मित्रता नहीं कर सकता।

रूसी नागरिक को धर्म की स्वतंत्रता एवं इकट्ठे होने की स्वतंत्रता से वंचित कर दिया गया है।

हमारे देश में दान देते समय पात्र और कुपात्र का ध्यान नहीं रखा जाता। बड़े-बड़े सेठ-साहूकार ऐसी चीजों और मन्दिरों के लिए दान करते हैं जहाँ पुण्य के स्थान में पाप होता है, जहाँ स्वयं दाता के विश्वास के विरुद्ध शिक्षा दी जाती है। ये लोग ईंट-पत्थर के मकानों या साइन्स के ब्लाक बनाने के लिए तो दान देते हैं, परन्तु जात-पाँत जैसी घातक रूढ़ियों को हटाने के लिए एक पाई भी दान नहीं करते। वे उस सामाजिक सुधार के लिए कुछ नहीं देते जो मानव स्वतन्त्रता तथा लोक-राज्य का आधार है।

मकाले ने अँगरेजों को संबोधन करके कहा था कि जिस प्रकार ५वीं शताब्दी में बाहर के बर्बरों ने आकर रोमन साम्राज्य को नष्ट कर दिया था, उसी प्रकार तुम्हारे लोक-राज को भी **बर्बर**

लोग नष्ट कर देंगे। पर ये वर्बर बाहर के नहीं, स्वयं तुम्हारे स्कूलों तथा कालेजों के पढ़े लोग होंगे। मकाले की यह चेतावनी हम भारत-वासियों को भी ध्यान से सुननी चाहिए।

बहुत से व्यापारी मानव-भ्रातृभाव—सब मनुष्य भाई है—को भूल गये हैं। वे जात-पॉत को मिटा कर समता, बधुता तथा स्वतंत्रता के पुनीत भाव के प्रचार के लिए कुछ नहीं देते। वे भूल जाते है कि इस संसार का धन तथा राज-शक्ति क्षणभगुर एवं अस्थायी है और कि धर्म-जीवन ही अमर है। जात पॉत अर्थात् एक मनुष्य को जन्म से नीच तथा दूसरे को उच्च समझना भारतीय जीवन मे एक नासूर है।

इस ने हिन्दुओं के सभी सद्गुणो को मिट्टी मे मिला दिया है। यह चरस-कोटि की नास्तिकता है। यह देश के अध.पतन तथा चिरकालीन दासता का प्रधान कारण है। इसे दूर करने के लिए कुछ न देकर ईएट-पत्थर के मकानो या निकम्मे लोगो को पालने के लिए दान देना भारी भूल है। जात पॉत परले दरजे की फूट है। जिस राष्ट्र मे एकता नही, जो छोटी-छोटी असंख्य जातियों और उपजातियो मे बॅटा पड़ा है, उस की रक्षा परमाणु बंब और भारी टैक भी नहीं कर सकते। यूनानी तत्त्वदर्शी ईपिक्टेटस ने ठीक ही कहा है कि जिस नगर के अधिवासियों मे भ्रातृ-भाव तथा एकता नहीं उस की रक्षा चित्र-विचित्र पत्थरो की सुदृढ़ प्राचीर भी नहीं कर सकती।

शरीर में रोग कीटाणुओं की शक्ति के कारण नही, वरन् शरीर मे रोगों का सामना करने की शक्ति के कम हो जाने के कारण फैलता है। इसी प्रकार कई अच्छे मनुष्य भी अनेक

सार्वजनिक भूलों के सुलभ लक्ष्य बन रहे है। यदि दानी व्यापारियों को एक बार विश्वास करा दिया जा सके कि देश को जितनी हानि जात-पॉत से हो रही है, तो वे निःसदेह जात-पॉत को मिटाने के लिए उस से भी अधिक दान देंगे जितना कि वे मंदिरो और अन्न-क्षेत्रो के लिये देते है। हमारे देश की स्वतन्त्रता तथा सभ्यता की रक्षा के लिए समता और बन्धुता के भावो के प्रचार की भारी आवश्यकता है। इन विचारो को फैलाने के लिए ये व्यापारी तब उसी भक्ति और श्रद्धा से दान देने लगेंगे जिस से कि वे अपना निजी व्यवसाय करते है।

तब वे संसार को उतना अच्छा बना देंगे जितना कोई दूसरा नहीं बना सकता। बड़ी प्रसन्नता की बात है कि बहुत से व्यापारी इस का अनुभव भी करने लगे हैं।

राज्य मनुष्य का स्वामी नहीं। इसके विपरीत राज्य मनुष्य का नौकर है। इसे मनुष्य ने चुना है—ईश्वर-प्रदत्त अधिकारों की रक्षा के लिए चुना है। स्वतन्त्र समाज मे ही स्वतन्त्र मनुष्य रह सकता है।

अमेरिका मे अनेक व्यापारी, वकील और दूसरे लोग अपने अधिक धन कमाने के व्यवसाय छोड़ कर देशोद्धार के पुनीत भाव से ही अध्यापक, सरकारी कर्मचारी तथा लोक-सेवक बनते और अपने बच्चों को बनाते है। इसी सेवा-भाव को भारतीय जनता मे उत्पन्न करने की आवश्यकता है।

देश की स्वतन्त्रता का अर्थ अश्लील तथा निन्दात्मक बाते छापना नहीं। हमारी सब स्वतन्त्रताऍ उस बिन्दु पर सीमित हो

जाती है जहाँ उनका दुरुपयोग समूचे समाज के अधिकारों, सुखों तथा सुरक्षा को संकट में डाल सकता है।

कम्यूनिस्टो का उद्देश्य, जहाँ भी वे सत्ता प्राप्त करें, स्वतंत्रता को नष्ट कर डालना है। कम्यूनिस्टों मे लेने और देने का भाव नहीं। वे संकीर्ण तथा असहिष्णु हैं। षड्यंत्र रचना, चोरी से घुसना, पीठ मे छुरा घोपना, मालिक से झगड़ा हो जाने पर कारखाने को नष्ट कर डालना, संगठित उपद्रव, खलबली तथा आन्दोलन, ये सब हमारे मोर्चों के पीछे ऐसे सैकड़ो निरुपद्रव नामो के नीचे छिपाए जाते है जिन पर कोई संदेह न कर सके।

कम्यूनिज्म मौलिक स्वतंत्रता मे विश्वास नहीं करता और न लोगों को स्वतन्त्रता देता ही है। परन्तु अपने ध्येय की पूर्ति के लिए ये स्वतन्त्रता जहाँ भी उसे मिल सके वहाँ उसे प्राप्त करने का पूरा प्रयत्न करता है।

जो लोग देश की समस्याओ के संबध मे उदासीन, दिलचस्पी न रखने वाले, असावधान तथा अनभिज्ञ रहते है वे विपत्ति तथा कष्टो के चंगुल मे फँस जाते है। इस बात का खूब खण्डन होना चाहिए कि मनुष्य कुछ चीज नहीं, वह राज्य की सृष्टि है।

रुकने के लिए हमारे पास कोई समय नहीं। सब पदार्थ द्रुत गति से दौड़े जा रहे है। या तो लोगो को अपने पीछे चलाना होगा या आप को उन के पीछे चलना पड़ेगा। या तो आप को लोगों पर प्रभाव डालना होगा या उन के द्वारा आप को प्रभावित होना पड़ेगा।

मनुष्य के लिए आवश्यक है कि वह दूसरो को जीता बना

रहने में अविचल-भाव से सहायता करें। अब एक बात है और यह बात पहले कभी नहीं हुई। वह यह कि एक सब के लिए है और सब एक के लिए है।

व्यापारियों का कर्त्तव्य है कि इन विचारों को फैलाने में सहायता दें। वे बुराई के वशीभूत न हों, वरन् बुराई को अभिभूत करें।

विद्यार्थी

अवस्था और ऋतु के अनुसार मनुष्य को अपने खान-पान और रहन-सहन मे परिवर्तन करना आवश्यक होता है।

एक युवक का आहार एक शिशु के लिए हितकर प्रमाणित नहीं होता। शीतकाल मे ग्रीष्म के पतले और ठंडे वस्त्र सुखदायी नही होते। इसी प्रकार प्रत्येक देश और प्रत्येक राष्ट्र सभ्यता, शिक्षा तथा विकास की दृष्टि से भिन्न-भिन्न स्तरों पर है। कोई पाँचवीं कक्षा मे पढ़ रहा है तो कोई एम. ए. पास कर चुका है। इस लिए एक देश को दूसरे की नकल अंधाधुन्ध, विना सोचे-समझे, नहीं करने लग जाना चाहिए। उसे उन्नति के सिद्धान्तो को समझ कर दूसरे राष्ट्रों से वे बातें ले लेनी चाहिएँ जो उस के लिए हित कर है। दूसरे के अन्धानुकरण मे अपना घर नही जला देना चाहिए। हो सकता है कि जो दूध ज्वर के रोगी के लिए अमृत है, वही अतिसार के रोगी के लिये विप प्रमाणित हो। कम्यूनिज्म, सोशलिज्म, पूञ्जीवाद, डिक्टेटरशिप और लोकतन्त्र को भी हमे इसी कसौटी पर कस कर उन की अच्छी बाते लेना और हमारे लिये अहितकर बाते छोड़ देना चाहिए।

इस समय लोक-तन्त्र तथा साम्यवाद की टक्कर चल रही है। कम्यूनिस्ट लोग लोक-तन्त्री अमेरिका मे घुस कर उसे अपने रंग मे रँग देना चाहते है। अमेरिका कम्यूनिज्म को सदोप और अपने लिए हानिकारक समझता है। वह कम्यूनिस्ट लोगो की चालो को मात करने के लिए सावधान और सतर्क है। भारत भी

अपने देश का अहित करने वाली बातों को रोकने के लिए अमेरिका से शिक्षा ले सकता है। इस बात मे छोटे से छोटा मनुष्य भी देश-हित के लिए कुछ-न-कुछ अवश्य कर सकता है।

अमेरिका मे एक कुचले हुए लूले लड़के ने संसार को उससे अधिक अच्छा बनाने का निश्चय किया जितना कि उसने अपने जन्म पर उसे पाया था। उसने शार्ट वेव रेडियो पर काम करना सीख लिया। वह रेडियो पर दूसरे लूले-लंगड़ों को सान्त्वना देने लगा। पर रेडियो पर वह अपने दु.ख की बात न करता था। इसके बाद वह दूसरे महायुद्ध मे शत्रु देशो के गुप्त रेडियो से सन्देशों को पकड़ने के काम पर नौकर हो गया। इस प्रकार उसने राष्ट्र की बड़ी भारी सेवा की। इसके बाद वह धर्म-प्रचार मे लग गया। वह प्रचार मे कहा करता था—"यदि आप कम्यूनिस्ट बन जायँगे तो परिणाम यह होगा कि आप पशु बन जायँगे। आप का सिर सदा धरती की ओर दबाया हुआ रहेगा। आप को ऊपर की ओर सिर उठाने और ईश्वर की सृष्टि के सौन्दर्य तथा आश्चर्य को देखने की अपेक्षा न होगी।"

विद्यार्थियो, आपका काम सब के निकट जा कर ज्ञानालोक फैलाना है। जब कोई महामारी फैल रही हो तो कोई भी भला डाक्टर अपने घर पर बैठ कर समाज के स्वास्थ्य को बुरा कह कर सन्तुष्ट नहीं हो जाता। वह रोगियो के पास जा कर उनकी सेवा करता है।

विद्यार्थियो, अपने दूसरे विद्यार्थी बधुओ के पास जा कर उनको भी अपना ज्ञानालोक दीजिए। जब आप ऐसा करने लगेंगे, जब आप अपने विचार दूसरो तक भी पहुँचाने लगेंगे तो एक ही रात मे ससार की सब बुराइयाँ दूर हो जाएँगी।

एक धनी ने अपने पुत्र को भ्रमण के लिए रुपया दिया। पर वह छुट्टी मे मज़े उड़ाने के स्थान मे एक नीग्रो गॉव मे चला गया। वहॉ वह चालीस बच्चों को धर्म-शिक्षा सिखलाता था। वह उनको अपना रुपया भी दे सकता था। पर उसने उसके साथ ही उनको अपना समय तथा चिन्ता भी दे दी।

यदि भारत के विद्यार्थी भी इस अमेरिकन बालक का अनुकरण करे तो देश स्वर्ग बन जाय!

इसी प्रकार एक स्त्री ने एक ऐसी नौकरी छोड़ दी थी जिसमें काम थोड़ा वेतन अधिक और छुट्टियॉ बहुत होती थीं, परन्तु लोगो के सपर्क में आने और उनको प्रभावित कर के सन्मार्ग दिखाने के सुयोग कम थे। उसने यह नौकरी छोड़ कर दूसरी कम वेतन वाल नौकरी कर ली। पर इस दूसरे काम मे उसे सन्तोप था कि मैं लोक-सेवा कर रही हूँ।

भारत को भी ऐसे लड़के-लड़कियों की आवश्यकता है जो संकल्प करे कि विद्योपार्जन के बाद हम कष्ट सहन कर के भी ऐसे ही सेवा के काम करेगी जिनसे देशकी स्वतंत्रता की रक्षा और सुख-सम्पत्ति की वृद्धि होगी।

एक लड़का इसी लिए लेखक बना था जिससे वह पुस्तके लिख कर देश-सेवा का काम कर सके।

महात्मा ईसा का कहना है—"अपने शत्रुओं से प्रेम करो। जो तुम से घृणा करते है उनका भला करो। जो तुम्हे सताते और तुम्हारी निन्दा करते हैं उनके लिए प्रार्थना करो।"

आप अपने विद्यार्थी-काल से ही सैकड़ों रीतियों से लोक-सेवा का काम आरम्भ कर सकते है।

अपने को अभी से उस महान् कार्य के लिए तैयार कीजिए जिसे आप स्कूल या कालेज से निकलने पर करेंगे और जिसके द्वारा आप देश तथा संसार में सुख-वृद्धि कर सकते है।

इस पुस्तक का अध्ययन करते हुए भी अपने जीवन-कार्य के संबंध मे सोचना आरम्भ कर दीजिए। किसी काम मे यों ही फिसल कर न चले जाइए। सदा ऐसा काम ढूंढ़िए जिसमें आप अपने विचारो का प्रचार कर सके।

किसी काम को उससे मिलने वाले केवल वेतन के लिए ही मत-ग्रहण कीजिए। उस लड़के के सदृश बनिए जिससे जब पूछा गया कि पढ़ने के बाद क्या करोगे, तो वह बोला—"ओहो! मुझे पता नहीं। मैं कोई काम ढूंढूँगा। नौकरी मिल जाने पर रुपया कमाऊँगा रुपया कमाने के लिए ही मुझे ट्रेनिङ्ग मिली है।"

बैंक मे अपने रुपये की रकम बढ़ाने और धन कमाने के लिए ही आप को शिक्षा नहीं दी गई। और न ही दी जानी चाहिए। आप को शिक्षा इस लिए दी जा रही है कि आप अपने निर्दोष और ठोस विचारों को सहस्रों दूसरों तक पहुंचाएँ। आप शायद धन-कुबेर न बन सके। परन्तु इस बात को जानने से आप को उस समय तथा अनन्तकाल के लिए गहरा सन्तोष होगा कि संसार आपके इसमें होने से पहले की अपेक्षा कुछ अच्छा हो गया है।

आप अपने चारों ओर बातें बहुत सुनते परन्तु कर्म होता बहुत कम देखते है। आप सब कहीं लोगों को भ्रष्टाचार, जात-पाँत, घूँस खाना और सरकार की निन्दा करते सुनेंगे। परन्तु उनकी यह निन्दा बहुधा केवल बातें ही होती हैं और कुछ नहीं।

स्वराज्य हो जाने पर भी जनता को दयावान्, शीलवान्, चरित्रवान, धर्मात्मा तथा ईमानदार बनाने का प्रश्न बना रहता है। कम्यूनिज्म एक ऐसा रोग है जो दुर्बलता पर पनपता है। रोग के कारण को दूर कर दीजिए और रोग दूर हो जाएगा।

जीवन मे से निकालिए कम और उसमें डालिए अधिक। सब से प्रेम करना सीखिए। अपने पड़ोसी को भी सेवा द्वारा जीतिए। अपने जीवन से लोगों के सामने त्याग तथा सेवा का आदर्श रखिए।

एक जहाज समुद्र मे टूट कर डूब गया। नगे, भूखे तथा प्यासे यात्री इक्कीस दिन तख्तों पर तैरते रहे। एक महात्मा के ये शब्द उनके साहस को बनाए रख रहे थे—"इस लिए इस बात की कोई चिन्ता न करो कि हम क्या खाएँगे, या हम क्या पिएँगे, या हम क्या चाहेंगे, क्योंकि तुम्हारा पिता परमेश्वर जानता है कि तुम्हे इन वस्तुओं का प्रयोजन है। परन्तु प्रभु के वास्तविक स्वरूप को समझो और उसकी साधुता तथा पुण्य-शीलता सब तुम को मिलेगी।"

विद्यार्थियो, ऐसे शब्द आपके जीवन को बनाने मे बड़ा महत्व रखते हैं।

कबीर जी ने कहा है :—

साधु गाँठ न बाँधहि उदर समाता ले।
आगे पीछे हरि खड़े जब माँगे तब दे॥

कालेज-काल मे बोलना-लिखना तथा मतदान के लिए अपने परिवार को तैयार करना सीखिए। केवल नाम पाने के लिए ही किसी सभा-समाज के सदस्य न बनिए।

जिस प्रकार शान्त जल गहरा होता है, या जिस प्रकार खमीर चुपचाप दूध को जमा कर दही बना देता है, उसी प्रकार आप जो कुछ करते है उसका पता लोगो को लगना चाहिए, न कि इस बात का कि आप किस ढग से करते है।

लेजिस्लेटरो, अखबारों, रेडियो आदि को पत्र लिखिए। इसे समय का व्यर्थ नाश न समझिए। सब किसी को यत्न करना चाहिए। इससे आप अपने राष्ट्र तथा समूचे संसार की सेवा करेंगे—आप उनको भूलो से बचायेंगे।

लोग जैसे है उनको वैसा ही समझ कर व्यवहार कीजिए, न कि इस बात पर आग्रह करके कि वे ऐसे होने चाहिएँ। चाहे कितना भी कष्ट हो, वहाँ जाइए जहाँ आप कुछ भी काम कर सकते हों। 'इस प्रकार के लोग हों तभी मैं काम कर सकता हूं', या 'मूर्खों को कौन समझाए'. ऐसा भाव रखना अच्छा नहीं।

किसी सभा या बैठक से अनुपस्थित रहने मे काम नहीं बनता।

धैर्य रखना चाहिए। याद रखिए, कोई भी काम हो, एक ही रात मे सफलता नहीं मिल जाया करती।

धर्म प्रचार या जिस बात को आप संसार के लिए हितकर समझते है उसके प्रचार मे उत्साह से जल उठने मे मत डरिए। कम्यूनिस्ट अपने विचार प्रकट करने मे डरते नहीं।

भगवान से प्रार्थना कीजिए कि मैं जो कुछ लिख रहा हूँ उससे संसार का कल्याण हो। इससे आपके लेख मे ठोसपन आ जाएगा। इस बात से मत डरिए कि पत्र-सम्पादक आपका लेख

अपना स्वीकार न करके उसे लौटा देगा। लोगों पर प्रेम कीजिए चाहे वे कितने ही गन्दे और मैले क्यों न हों। तभी वे आपके पास आयँगे।

जो लोग किसी उद्देश को लेकर संसार में चलते हैं, वे उनसे आगे निकल जाते हैं जो केवल इधर से उधर निरुद्देश्य मँडराते फिरते हैं।

प्रथम कोटि के प्रचारक

दूसरे लोग जिन मे हमारे जैसी श्रद्धा तथा धर्म-विश्वास नहीं, जो हमारे मत के नहीं, उनको पूर्ण अंधकार मे मानना भारी भूल है। उन मे भी विभिन्न अंशों मे वह सच्ची ज्योति है जो मनुष्य को आलोकित करती है। वे भी कुछ न कुछ काम दे सकते है। बुद्ध और ईसा जैसे धर्म-प्रचारको ने ऐसे सभी मनुष्यो को अपने साथ लिया था। परन्तु उन्हो ने उन मे से चुन कर थोड़े से लोगो को ही अपना धर्म-प्रचारक बनाया था। उन को जिस से जितनी भी सहायता मिल सकती थी वे ले लेते थे। जो आपके साथ नहीं वह आवश्यक नहीं कि आपका विरोधी हो।

ईसा ने अपने पहले शिष्यो को तब तक के लिए बैठा नहीं रखा, जब तक कि वे पूर्णरूप से उस की शिक्षा को ग्रहण न कर ले। इस के विपरीत उस ने उन को तत्काल अपना दूत बना कर प्रचारार्थ भेज दिया, ताकि जो कुछ उन के पास है उसे वे दूसरों तक पहुँचाएँ। इस प्रकार अभ्यास से उन का अपना ज्ञान बढ़ जाता और श्रद्धा गहरी हो जाती है।

हमारी प्रकृति का यह नियम है कि हम नई सचाई पुरानी सचाई के रूप मे ही ग्रहण कर सकते है—उसे पुरानी सचाई के नाम से या पुरानी भाषा मे ही ले सकते हैं। कोई भी धर्म प्रचारक लोगो की धार्मिक बेहूदगियो की हँसी उड़ा कर, जिन के पास वह अपना प्रचार करने जाता है, अपना काम नहीं कर सकता। इसके

विपरीत वह ऐसी बातों को अपने प्रचार का आधार बनाता है जो उस मे और उन लोगों मे सामान्य होती हैं।

यदि कोई रोगी डाक्टर की बताई सभी बातों पर नहीं चल सकता तो इसका अर्थ यह नहीं कि जिन बातो का वह पालन कर सकता है उन का पालन भी उस से न कराया जाए।

सचाई को किसी अंश मे मानना उसे बिल्कुल न मानने से तो अच्छा है।

कम्यूनिज्म तथा फासिज्म आदि रोग नहीं, वरन् रोग के बाहरी लक्षण है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि अछूतपन कोई रोग नहीं, वरन् वह जात-पॉत-रूपी भयानक रोग का ही बाह्य लक्षण है। ये बताते है कि रोगों का सामना करने की हमारी शक्ति संकटबिन्दु से भी नीचे चली गई है। कोई मनुष्य जन्म से अपराधी या पापी नहीं होता। वह अपराध तथा पाप करना सीखता है। लोग अपराध किस लिये करते है? क्योकि उनमे दायित्व का भाव अपर्याप्त मात्रा मे होता है। जब तक मनुष्य को चारित्रिक तथा नैतिक शिक्षा नहीं मिलेगी वह अपराध करता ही रहेगा।

यदि युवको को धर्म की शिक्षा दी जायगी, तो वे थोड़ा वेतन ले कर भी ऐसे व्यवसाय करने लगेगे जिन से थोडो का नहीं बहुतो का भला होगा। वे हताश नहीं होगे, घबरायेंगे नहीं सेवा करेंगे। आप के सामने विजय करने के लिए एक संसार पड़ा है। अशोक की भॉति धर्म-विजय कीजिए, शस्त्र-विजय नही।

संगठन में व्यक्तिगत सूत्रपात

कोई भी समूह हो, समाज हो या क्लब हो, वह फुटबाल टीम के सदृश होता है। यदि वह खूब संगठित है तो उस का कुछ मूल्य है। यदि उस टीम के ग्यारह खिलाड़ियों में व्यक्तिगत दायित्व का भाव नहीं है और उन में व्यक्तिगत सूत्रपात नहीं है तो उस टीम का उद्देश पूरा नहीं होगा।

संगठन के सम्बन्ध में भी यही बात ठीक है, चाहे उस संगठन का उद्देश्य अच्छा हो या बुरा। एक छोटी सी दुष्ट मण्डली ने एक महत्त्वपूर्ण लेबर यूनियन की बाग-डोर अपने हाथ में ले ली, क्योंकि व्यक्तिगत रूप से उन्होंने अपने दल के प्राथमिक उद्देश्य को कभी दृष्टि से ओझल नहीं होने दिया और शेष सब बातें इसी लक्ष्य के अधीन कर दीं। इसलिए वे सफल हो गए, जहाँ वे अन्यथा विफल रहते। जो लोक-सेवक लेबर यूनियन को अवाञ्छनीय लोगों के हाथ में पड़ने से बचाना चाहते हैं उनको चाहिए कि वे यूनियन की सब बैठकों में जायें, जो सदस्य अनुपस्थित रहते हैं उनको साथ बैठक में ले जायें, प्रत्येक प्रस्ताव पर विचार करें और सभा वालों तथा लोगों को समझाएँ। इसी रीति से वे अनिष्ट को रोक सकते हैं।

बुराई करने वाले छोटे से दल की सफलता का कारण उस दल की शक्ति नहीं होती, वरन् अच्छे लोगों की उदासीनता ही होती है।

अमरीका की बात है। सरकारी कर्मचारियों का एक दल सद

के समय प्रार्थना किया करता था कि रूस फिर ईसा का अनुयायी बन जाए। यह समाचार एक रेडियो वाले ने सुना। उसने यह बात रेडियो पर प्रसारित कर दी। बस, यह विचार समूचे अमरीका मे फैल गया।

सभा और संगठन मे सम्मिलित तो अनेक होते है, पर काम थोड़े ही किया करते है।

एक सदस्य दूसरे को अपने मत का बनाता है, फिर वे दो चार को बनाते है। और इस प्रकार संख्या बढ़ती जाती है। सभा की नीति का नियत्रण करने के लिए थोड़े से चुस्त सदस्यों को वश मे कर लेना पर्याप्त होता है। दूसरे लोग तो मीटिङ्ग मे नहीं जाते। वे तो केवल नाम ही लिखा छोड़ते है। जो सदस्य सभा मे जाता है, उसका उसके साथियो के काम तथा बातो से प्रभावित होना अनिवार्य है।

प्रकृति का यह एक अटल नियम है कि या तो आप दूसरो को प्रभावित करेगे या फिर दूसरो द्वारा स्वयं प्रभावित होगे। प्रचारक लोग जनता को जानने की कला मे निपुण होते है। उनको निम्नलिखित बातो का अच्छा ज्ञान रहता है—लोगो से मिलना-जुलना, उनकी समस्याओ को समझना, उनकी भावनाओ को जानना, उनके दुःखो मे समवेदना प्रकट करना और उनकी खुशियो मे खुश होना, इत्यादि।

परन्तु यदि आप अपने निजी स्वार्थ के लिए जनता मे जायेगे तो वह आपकी ईमानदारी को तुरन्त ताड़ जायेगे।

आपकी संस्था थोड़े से मनुष्यो का ही स्वार्थ सिद्ध करने वाली न हो, वरन बहुतों की भलाई ही उसका लक्ष्य हो।

सभा में आलोचना करने से, केवल बातें करने से ही कुछ नहीं बनता, जब तक कि उसके सदस्य स्वयं कुछ नहीं करते। सभा के सदस्यों को चाहिए कि वे जनता के विचार तथा कर्म को प्रभावित करें, अपने विचार बहुत से लोगों को सुनाएँ और उनसे कहें कि समाचार-पत्रों में लिखा करें। कभी बंद न होने वाला निश्चित भलाई का कर्म ही किसी स्वतंत्र देश की सुख-शान्ति की अचूक गारण्टी होता है।

महात्मा ईसा ने ठीक ही कहा है—"जो मुझे 'प्रभु-प्रभु' कहता है वह स्वर्ग राज में नहीं जायगा, वरन् जो मेरे पिता परमेश्वर की इच्छा पर चलता है वही स्वर्ग में प्रवेश कर सकेगा।"

किसी दल का अगुआ बनिए, न कि कोई दूसरा आपको अपने पीछे लगा ले।

जहाँ लोग इकट्ठे होते हैं वहाँ उनके विचारों को सूक्ष्मरूप से बदलने का अच्छा सुयोग रहता है। हमारे देश में सहस्रों सभाएँ तथा संगठन हैं। उनमें सम्मिलित होकर बड़ा काम हो सकता है।

जात-बिरादरी की विभिन्न सभाओं को अपनी छोटी सी बिरादरी का ही ध्यान रहता है, बड़ी बिरादरी विशाल मानव-जाति वरन् समूचे भारत की भलाई का नहीं। यह संकुचित भावना ही इस देश के लिए पतन सिद्ध होती रही है। जिस समय दूसरे लोग दुष्टता फैला कर अपना स्वार्थ सिद्ध कर रहे हों, केवल इकट्ठे होकर किसी घटना के घटित होने की प्रतीक्षा में हाथ पर हाथ धरे बैठे रहना मानो इतर अस्तित्व में अपना जीवन नष्ट करना है।

माल वेचने के लिए आपको बाजार मे दूसरों के पास जाना पड़ता है। घर पर चुप-चाप बैठे रहने से काम नहीं चलता।

कोई मनुष्य समाचार-पत्र मे जुकाम की दवाई का विज्ञापन पढ़ता है, पर उसी समय दवाई खरीदता नहीं। एक दिन उसे जुकाम हो जाता है। वह किसी दुकान पर जाता है। वहाँ उसे जुकाम की बहुत सी दवाइयाँ दिखाई जाती है। परन्तु वह झट वही दवाई खरीदता है जिसका विज्ञापन उसने कई वार पढ़ा है।

इसी प्रकार मनुष्य भी सभा मे उसी विचार को ग्रहण कर लेता है जिसके विषय मे उसने पहले अपने किसी मित्र से सुन रखा है। फिर वह उस विचार को अपना बना कर प्रकट करने लगता है।

किसी बात को वार-वार कहने का प्रभाव पड़ता है। इस लिए अपने विचारो को दूसरो पर वार-बार प्रकट करना चाहिए।

थोड़ी सी भूमि वह गई तो क्या हुआ, वोने के लिए और बहुतेरी पड़ी है—इस प्रकार के भाव से ही देश की बहुत सी धरती ऊसर हो गई है। इसी प्रकार यह समझना कि थोड़े से लोग खराबी करते हैं तो वे क्या विगाड़ लेगे, हानिकारक है। सौ पचास अछूत मुसलमान या ईसाई हो गए तब क्या हुआ ? इस प्रकार कहीं हिन्दुओं का वीज-नाश तो थोड़े ही हो जाएगा। हिन्दुओ के इसी भाव का परिणाम पाकिस्तान की स्थापना है।

देश-सेवा का काम कठिन है पर इसका पारिश्रमिक भी बहुत वड़ा है।

सार्वजनिक भाषण

सार्वजनिक भाषण या वक्तृत्व कला का आधार-भूत नियम यह जानना है कि मै क्या कहना चाहता हूँ और उसे कैसे कहना चाहिए।

इसी आधारभूत आवश्यक चीज के अभाव से भाषण निष्फल हो जाता है।

प्रत्येक वार्तालाप मे कोई निश्चित उद्देश रहना चाहिए। वह किसी विशेष बात पर बल दे। इस उद्देश की जड़ सचाई मे जितनी गहरी गड़ी होगी उतना ही अधिक उसकी निष्कपटता झकृत होगी। आप किसी भी विषय पर भाषण करे, आप का भाषण निःस्वार्थ तथा निष्कपट भाव मे रँगा होना चाहिए। आप का अपना दृढ़ विश्वास आप के श्रोताओ तक पहुँच जाएगा और उन त्रुटियो तथा टेकनीकल दोषों को दवा देगा जो आप मे है। इस बात का ज्ञान होने से कि भगवान् आप के द्वारा कोई लोक-सेवा का पुण्य कार्य करा रहा है, आप को सुरक्षित तथा निश्चित कर देगा। यदि जो कुछ आप कहना चाहते है उसका आपको ज्ञान तथा उसमे विश्वास है, जिस सचाई को आप जानते है यदि उसे यथासम्भव अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचाने की आप को लालसा है, तो समुचित रूप से प्रकट करने की रीति आप को अपने आप मिल जायगी।

परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि आप एक ही रात में प्रभाव-शाली वक्ता बन जाएँगे। दूसरी योग्यताओं के सदृश जनता मे

भाषण देने की योग्यता भी विकसित की जाती है। यह वंश-परम्परा मे माता-पिता से नही मिलती।

घंटों कड़ा अभ्यास करने से ही मनुष्य सफल वक्ता बनता है। जिस मनुष्य के मुख से इस समय आप को चमकते हुए शब्दो की झड़ी निकल रही लगती है, एक समय था जब वह भी मुँह खोले अवाक् रह जाता था। जब आरम्भ मे उसने बोलना आरम्भ किया था तब उसके मुँह से शब्द नहीं निकलते थे. क्योकि वह अपनी त्रुटियो के ज्ञान के कारण डरता था।

इसके अतिरिक्त बहुत से स्त्री-पुरुष ऐसे भी है जो मेज पर बैठे आपस मे बड़े आनंद से बात-चीत कर सकते है। परन्तु सभा मे श्रोताओं के सामने व्याख्यान देते समय वे घबरा जाते है। यह बात प्रायः उन लोगों मे भी हो जाती है जो प्रतीयमान रूप से अपने आप मे भरोसा रखने वाले व्यक्ति जान पड़ते है।

परन्तु ऐसी घबराहट सर्वथा असुविधा ही नही होती। एक मनुष्य सहस्रों सभाओं और सम्मेलनों मे भाषण कर चुका है। वह बोलने की तैयारी पर उतना समय लगाता है जितना कि किसी दूसरी बात पर नहीं। किन्तु अब तक भी वह कहता है कि जब भी मैं जनता मे बोलने जाता हूँ, तो पहले कुछ हिचकिचाहट या तनाव का अनुभव करता हूँ। वह कहता है कि इस हिचकिचाहट के लिए मै आभारी हूँ। कारण यह कि सार्वजनिक भाषण वैसा ही मन की एकाग्रता चाहता है जैसा कि बेस-बॉल को हिट करने के लिए होती है। बेस-बॉल को हिट करते समय शरीर का प्रत्येक अंग, प्रत्येक नाड़ी कस जाती है। इस प्रकार भाषण करते समय अच्छे वक्ता को अनुभव करना चाहिए कि उस का शरीर तथा मस्तिष्क

खूब कस कर काम कर रहे हैं। इस कस कर काम करने में कोई ऐसी चीज नहीं जिस से आप डरें। वरन् यदि इस का उचित उपयोग किया जाय तो इसे एक लाभ समझना चाहिए। एक मात्र संकट की बात यह है कि आप इतने न तन जायँ कि अपने विचारों को योग्य रीति से प्रकट ही न कर सकें।

यदि और जब ऐसी घटना हो तो दो-एक मिनट यह सोचने से कि मैं तो भगवान् का कार्य कर रहा हूँ यह घबराहट दूर हो जायगी।

इस के साथ ही यह भी संकल्प कीजिए कि अधिक से अधिक जितनी बार भी जनता में बोलने का अवसर मिले उतनी बार अवश्य बोलिए। जितनी अधिक बार आप बोलेंगे और जितनी अधिक बार आप जनता के सामने जायेंगे, उतना ही वेदी पर से बोलने का आप का डर दूर होता जायगा।

शारीरिक दृष्टिकोण से यह घबराहट इन तीन में से किसी एक कारण से उत्पन्न हुआ करती है—(१) अपनी सामग्री को नियन्त्रित न कर सकना। (२) अपने आप को काबू में न रख सकना। (३) अपने श्रोताओं को काबू में न रख सकना।

सामग्री का नियन्त्रण—स्पष्ट रूप से बोलना मानो उच्च स्वर से साफ़-साफ़ सोचना है। सहज ज्ञान के भरोसे रहना भूल है। इस के भरोसे रहने का परिणाम यह होता है कि बाद को पछताते हुए कहना पड़ता है कि कई महत्त्व-पूर्ण बातें ऐसी थीं जो मैं कहना चाहता था, पर कह नहीं सका।

किसी बात को कहने के पहले उस पर विचार कर लीजिए। एक सफल भाषण की पहली आवश्यकता अपने विषय की सामग्री

की तैयारी है। आशु भाषण मे भी यह तैयारी आवश्यक होती है। जिन भाषणों को हम समझते है कि वक्ता ने बिना पहले से तैयारी किए ही तत्काल किया है ऐसे सर्वोत्तम आशु भाषण भी प्राय: न तैयार किए हुए नहीं होते, जैसे कि ऊपर से देखने मे वे मालूम पड़ते है। अनेक अवस्थाओं मे वे कई छोटे-छोटे टुकड़ो के बने होते है—उन भाषणों के टुकड़ो के, जो वक्ता पहले कई बार कर चुका है। वह कागज के टुकड़ो के सदृश ही अपने भाषणो के उन टुकड़ो को अपने मन मे लिए रहता है। उस की बिना पहले की तैयारी किए बोलने की प्रतिभा वास्तव मे पहले कही हुई या मानी हुई बातों को ही मन मे क्रमबद्ध करने की ही क्रिया है।

प्राय: सभी अच्छे वार्तालाप तथा गोष्ठियॉ पहले से तैयार की जाती हैं।

तैयारी की रीति अंशतः भाषण के स्वरूप पर निर्भर करती है। यदि आप को पहले से मालूम हो कि अमुक अवसर पर मुझे बोलना पड़ेगा, तो आप पहले से उस की तैयारी कर सकते है। आप अनुसन्धान कर सकते है, फायले देख सकते है, परामर्श ले सकते और सारे वार्तालाप की परीक्षा अपने परिवार या मित्रों मे कर सकते है।

इस के विपरीत यदि आप को अचानक बोलना पड़े तो बात भिन्न होगी।

आप को दो चीजों पर भरोसा करना चाहिए—अपने मस्तिष्क और अपनी पृष्ठ-भूमि पर। जब कभी आप को बोलने के लिए कहा जायगा, आप के मस्तिष्क को इस काम के लिए जल्दी से

तैयार होना पड़ेगा। जो सब से अधिक महत्त्वपूर्ण बात आप दूसरो को बताना चाहते है उस के विषय मे आप को तुरन्त निश्चय करना पड़ेगा। और यदि सम्भव हो तो यह निश्चय आप के बोलने के लिए खड़े होने के पूर्व ही हो जाना चाहिए, न कि खड़े होने के बाद। एक बार निश्चय हो जाने पर फिर उस क्रम का अनुसरण कीजिए। प्रसग को छोड़ कर इधर-उधर की बाते मत कीजिए। इससे न केवल आप के श्रोता ही आप के विषय को भूल जायँगे, वरन् आप भी अधिकाधिक घबरा जायेगे और गड़बड़ मे पड़ जायेगे। आप वाग्मिता की भूल भुलैयॉ मे इतना फँस जायेगे कि फिर अपने विषय पर आना आप के लिए कठिन हो जायगा।

अपने ज्ञान के क्षेत्र को विस्तृत करने में अध्ययन तथा पढ़ना एक बड़ी निधि या फण्ड का काम देता है। आप को सुझाव दिया जाता है कि अपने भाषण मे इस जानकारी का उपयोग कीजिए। वार्तालाप का विषय आप के भीतर से निकले।

इस दृष्टि से लोक-सेवक को लाभ रहता है। वह अपना ध्येय जानता है। उसका कोई उद्देश्य रहता है। उसकी सारी प्रेरणा उसी उद्देश्य के साथ बँधी रहती है। वह स्थिरता-पूर्वक काम करता है। इस लिए वह अपनी सफलता के विषय मे निश्चिन्त है।

यदि आप को बहुत बार बोलने की आशा है तो आप अपनी भाषण-सामग्री का क्षेत्र बहुत ही विस्तृत कर सकते है। जिन के पास गहरे अध्ययन के लिए पर्याप्त समय है उन्हे अपनी जानकारी के क्षेत्र को बढाने के लिए एकाग्रचित्त से अनुसन्धान करना चाहिए।

अपनी पृष्ठ-भूमि को विस्तृत करने की ओर भी कई रीतियाँ है। आप समाचार-पत्रों से काट कर विभिन्न विषयों पर कतरन रख सकते है। इस से आप अपेक्षाकृत बहुत थोड़े समय मे ज्ञानार्जन कर लेगे।

इससे दो लाभ होंगे। आप अपनी ज्ञान-राशि को बढ़ा लेगे और दूसरे आपके पास किसी बात का पता झटपट लगाने के लिए एक चिट्ठा, (हेण्डी रेफरेंस फायल) हो जाएगा।

कभी-कभी आप अखबार मे ऐसी चीजे पढ़ेगे जो आपको कभी आगे काम आयेंगी। ऐसी चीज को काट कर या लिख कर रख लीजिए, इस संबंध मे अच्छा यह है कि आप किसी स्टेश्नरी की दुकान से एक लैटर फायल और दूसरी ३×५" कार्ड फायल खरीद लें। इनमे से कोई भी चीज बड़े मूल्य की नहीं।

लैटर फायल उन चीजो के लिए काम मे आ सकता है जिनमे विस्तार के साथ जानकारी देने वाली बाते लिखी है। कार्ड साइज फायल उन चीजो के लिए है जिनमे अपेक्षाकृत थोड़े शब्दो मे बात पूरी कर दी गई है।

समय-समय पर अपने इस संग्रह का पाठ करते रहिए। इसमे से अपने काम की बाते छाँट कर बाकी निकालते जाइए। इस प्रकार अपटूडेट बना रहना भाषण की तैयारी है—ऐसे भाषण की जो जनता को प्रसन्न करता है और आपका संदेश भी पहुँचाता है।

जब कोई अच्छी साहित्यिक चीज, कोई उत्कृष्ट रचना, कोई प्रसिद्ध योग्यतापूर्ण भाषण या कोई महत्त्वपूर्ण दस्तावेज आपको छपा मिले तो उसके अधिक सारगर्भित वाक्यो का उच्चारण करने मे मत हिचकचाएँ। उन्हे बार-बार उच्च स्वर से पढ़िए। इस प्रकार,

उनको जानबूझ कर कण्ठस्थ किये बिना ही, वे जल्दी ही आपका अंग बन जायँगे।

आप उस भाषण के वाक्य, विचार तथा प्रवाह आत्मसात् कर लेंगे। उस भाषण की सामग्री तथा उसके बढाने का ढग दोनों आपके हो जायगे।

पर हम यह नहीं कहते कि आप किसी का अनुकरण करने का यत्न करे। आप आप ही रहें। किन्तु महापुरुषो तथा विदुषी देवियो की रचनाओं को पढ़ सुन कर अपनी आँखो तथा कानो को उनकी रचनाओ के सामने आने देकर—अपना सुधार करने मे आपको हिचकचाने की आवश्यकता नहीं।

आपकी भाषण की तैयारी के अन्तर्गत ऊँचे स्वर से बोलना भी है। पर यह आवश्यक नहीं कि आप बहुत से श्रोताओं के सामने ही बोले। यदि आपके पास लोगो को देने के लिए कोई विचार है तो अच्छा यह है कि आप उनकी परीक्षा अपने परिवार या अपने मित्रो पर अनिश्चित वार्तालाप से कीजिए।

इससे आपको अपने विचारों को मूर्तरूप में संगठित करने में सहायता मिलेगी। इससे आपको श्रोतागण की प्रतिक्रिया का भी आभास मिल जाएगा।

वार्तालाप की तैयारी में पहले से उसकी रूप रेखा बनाना एक बात उपयुक्त होती है। यदि भाषण लम्बा—पन्द्रह मिनट या इससे अधिक का—हो तो रूप-रेखा तैयार करना परम आवश्यक है। और यदि भाषण संक्षिप्त—दो से पन्द्रह मिनट का—है तो भी रूप-रेखा तैयार करना वाञ्छनीय है।

रूप-रेखा मे आपके भाषण की प्रधान-प्रधान बाते आ जानी चाहिएँ। परन्तु यह बहुत सविस्तार नहीं होनी चाहिएँ, ताकि आप बोलते समय कहीं अपनी रूप-रेखा के अनुकरण मे ही मग्न न हो जाएँ और अपने श्रोताओं पर कुछ ध्यान ही न दे सके।

आपकी रूप-रेखा आपके तर्क की केन्द्रीय रूप-रेखा हो। यह आपके भाषण का स्थूल वर्णन हो। यह पूरे का पूरा लिखा हुआ भाषण नहीं होना चाहिए। जो-जो बातें आप कहना चाहते हैं यह रूप-रेखा उनका स्मरण कराने वाली हो। कभी-कभी आप की रूप-रेखा मे छोटी-छोटी बातें भी आ जाएँगी। छोटे-छोटे ब्योरे या मद्दे भी लिखी रहेगी। उदाहरणार्थ, यदि आप आँकड़े, स्टेटिस्टक्स, देना चाहते है तो उनको विस्तार के साथ भी लिख लेना और श्रोताओ को पढ़ कर सुनाना बिलकुल ठीक होगा। आपके श्रोता ऐसी संक्षिप्त मध्यवर्तिनी बातो का आदर करेगे और आपके भाषण को प्रामाणिकता प्राप्त हो जायगी।

महात्मा बुद्ध, महात्मा ईसा तथा दूसरे धर्म-प्रचारक अपने उपदेशों मे नीति के वचन तथा कथाएँ सुनाया करते थे, जिससे लोग उनकी बात को भली-भाँति समझ जाएँ।

अच्छे वार्तालाप का, अच्छी कहानी के सदृश, आरम्भ, मध्य तथा अन्त होता है। यह बात शायद नई जान पड़े। फिर भी यह सार्वजनिक भाषण का एक रूप है जिसके लिए सज्ञान, एकाग्रता तथा मनोयोग अपेक्षित है।

आपने ऐसे भी कई वक्ता देखे होगे जो देर तक बोलते रहते है, परन्तु पता नहीं लगता कि उन्होंने कब आरम्भ किया। फिर कई ऐसे भी वक्ता हैं जो मध्य से आरम्भ करते है और वहीं समाप्त

कर देते है। हो सकता है कि ऐसे वक्ताओ के पास कहने के लिए अच्छी बाते हो। परन्तु क्योंकि वे अपनी भूमिका द्वारा उनको सुनाने तथा ग्रहण करने के लिए अपने श्रोताओ को तैयार नही करते और भाषण के अन्त मे अपना विषय संक्षेप मे नहीं दुहराते, इस लिए उनका सारा भाषण प्राय: व्यर्थ हो जाता है, श्रोतागण उसे ग्रहण नहीं करने पाते।

इसके विपरीत कई ऐसे भी वक्ता है जो अपने प्रवचन के अन्त के साथ अपना भाषण आरम्भ करते है। हो सकता है कि श्रोतागण उनका उद्देश समझ जायँ। परन्तु वे उदासीनता अनुभव करेंगे, क्योंकि वह अपनी बातो को प्रभावशाली रूप मे विकसित नहीं कर सकते।

मुख्य बात को बार-बार कहना अच्छे वार्तालाप का प्रधान लक्षण है। एक सफल वाग्मी ने सफल भाषण के लिए यह सूत्र बताया था—

"पहले मै उनसे कहता हूँ कि मै उन को क्या बताने जा रहा हूँ। तब मै उन्हे बताता हूँ कि मैंने उनसे क्या कहा था। विभिन्न शब्दो तथा उदाहरणो द्वारा एक ही बात को बार-बार कहने की जितनी आवश्यकता भाषण मे होती है उतनी लेख मे नहीं। पाठक किसी छपे पन्ने को फिर से देख सकता है। पर वह लौट कर आपके शब्दो को नहीं देख सकता। जो कुछ आप कह रहे है उसमे से कुछ को खोए या छोड़े बिना वह पीछे मुड कर नहीं सोच सकता। बोला हुआ शब्द भागा जा रहा है।

किसी महत्त्वपूर्ण विचार को आप को बार-बार कहना चाहिए जिससे आप के श्रोता उसका भाव याद रख सके।

अपनी—रूप-रेखा का उपयोग करते समय अपने आप से एक पग आगे रुकने का प्रयास कीजिए।

जब आप एक विषय को समाप्त करने को हों तो अपनी रूप-रेखा पर शीघ्रता से एक बार झाँक कर अगले विषय देख लीजिए इससे आपका कथन स्वभावतः आप को अगले विषय पर ले जायगा।

इससे एक बात के बाद दूसरी बात पर जाना सुगम होता है। यह बात विशेष रूप से उस जगह आवश्यक होती है जहाँ एक बात दूसरी बात की पूरक होती है।

आपके भाषणों की शैली तथा दृष्टान्त बदलते रहने चाहिएँ। परन्तु उनमें अप्रासंगिक बातें न हों। एक ही बात का बाहुल्य चाहे वह बात कितनी ही अच्छी क्यों न हो आपके श्रोताओं को अन्त में उदासीन बना देगी। वे उसमें दिलचस्पी लेना छोड़ देंगे।

अच्छा भाषण तैयार करना, अच्छा भोजन तैयार करने के सदृश है। खाने वालों तथा सुनने वालों को प्रायः अनजाने आनन्द मिलता है। अच्छे रसोइए के लिए यह जानना आवश्यक होता है कि भोजन कितना बनाना चाहिए, किसी खाने में कौन चीज कितनी डालनी चाहिए और कौन-कौन खाने बनाने चाहिएँ। अच्छे भोजन का संतुलित होना, आकर्षक होना और उसके परोसने का ढंग सुन्दर होना भी आवश्यक है। यही बात वाग्मी तथा भाषण की है। अच्छा भाषण भी बोलने के बहुत पहले सोच समझ कर तैयार कर लेना आवश्यक होता है। उसमें कौन-कौन बातें कहनी चाहिएँ, कब कहनी चाहिएँ और कितनी मात्रा में तथा किस ढंग से कहनी चाहिएँ, यह सब पहले से सोच लेना चाहिए।

वक्ता को अपने आप को जानना चाहिए। उसके लिए अपने आप को जानना उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कि अपनी भाषण-सामग्री को जानना। यह काम बहुधा उससे भी कठिन होता है।

अपने भाषण के विषय मे आप उससे अधिक वास्तविक हो सकते है जितना कि आप अपने आप के विषय मे आलोचनात्मक हो सकते है। अपने आप को जानना एक मृदु कल्पना है। यह इस योग्य है कि इसके लिए उद्योग किया जाय। कारण यह कि सार्वजनिक भाषण में श्रोतागण निरन्तर आपका तथा आपकी सामग्री का विचार किया करते हैं।

व्याख्यान देने का काम आरम्भ करने वाले मे पहली प्रवृत्ति यह होती है कि वह किसी काल्पनिक वास्तविक पात्र का अनुकरण करता है और उसी की भाँति बोलने का प्रयास करता है। इस बात का प्रभाव श्रोताओ पर बुरा होता है। वे अनुभव करने लगते है कि आप न तो अपने आप के साथ और न उनके साथ न्याय कर रहे है।

आप मे एक व्यक्तित्व है, जिस मे अपने कुछ विशेष गुण है। हो सकता है कि आप एक ठण्डे तर्क-सगत प्रकार के मनुष्य है, जो आग बरसाने वाले भाषण नहीं करते। इस पर भी आप का प्रभाव बहुत हो सकता है। ऐसी दशा मे यदि आप मे यह विचार घर कर जाय कि आप के भाषण मे सनसनी उत्पन्न करने वाली बाते बहुत हो तो आप अपने श्रोताओं को अन्त मे यह विश्वास करायेंगे कि आप की रुचि बहुत हल्की तथा घटिया है।

इस के विपरीत हो सकता है कि आप [illegible] [illegible] के एक

भाव-प्रधान व्यक्ति हों, जिस की सारी प्रवृत्ति जोरदार भाषा में बोलना हो। ऐसी दशा मे गम्भीरता-पूर्वक संयत भाषा मे बोलने के स्थान मे आप के लिए आग उगलने वाले शब्द बोलना ही बुद्धिमत्ता होगा। अपनी प्रकृति के प्रतिकूल प्रकार का भाषण करने पर अपने को विवश करना भारी भूल होगी। सारांश यह कि अपने भाषण की शैली यह रखिए जो आप की प्रकृति के अनुकूल है। अपने शब्दो की गति अपनी मानसिक प्रक्रियाओं के अनुसार रखिए। बनावटी स्वर मे बोलना या चालाकियो से काम लेना अनावश्यक है।

यदि उत्तेजित हो जाने पर आप चिल्लाने लगते है और आपका यह स्वभाव ही है, तो अच्छी बात है। यदि यह आप का स्वभाव नहीं, तो अच्छा यही है कि आप इस रीति का उपयोग न करे।

सार्वजनिक भाषण का गुण शब्दों की मात्रा से नहीं मापा जाता। एक जोरदार बात निष्कपटता, शान्ति तथा धीरे से कही जाने पर ऊँचे से ऊँचा गरज कर कहने से भी अधिक फलदायक तथा प्रभावोत्पादक हो सकती है।

अपनी बातों को श्रोताओ पर प्रभाव डालने के लिए समय तथा अवसर दीजिए। यदि आप जल्दी-जल्दी बोलने वाले है तो भी प्रत्येक महत्त्वपूर्ण वाक्य तथा वचन के बाद कुछ देर के लिए रुक जाइए। अपने वाक्य बोलिए। उन्ही शब्दों का प्रयोग कीजिए जिन का आप को भली-भाँति ज्ञान है। हाँ, अवकाश के समय मे नये शब्दों के अर्थ देखते रहा कीजिए, जिस से वे आप के शब्द-भाण्डार का भाग बन जाये। बढ़ाया हुआ शब्द-भाण्डार बढ़ाए हुए ज्ञान-भाण्डार के सदृश है। यह आप को सब प्रकार के भाषणों के लिए तैयार कर देता है।

अपने आप को जानने के अन्तर्गत अपनी शारीरिक चेष्टाओं को जानना भी है। पुराने ढंग की भाषण-शैली में बताया जाता है कि विशेष भाव को प्रकट करते समय विशेष प्रकार का संकेत करना चाहिए। परन्तु आज इस प्रकार के भाषण को जीर्ण तथा निकम्मा समझा जाता है। स्वाभाविक संकेत ही अच्छे संकेत होते हैं।

सब से बुरी बात अपने श्रोताओं पर यह संस्कार डालना है कि जो बात कहने का प्रयास आप कर रहे हैं, उस की अपेक्षा आप को उस की अधिक चिन्ता है जो आप अपने हाथों तथा पांवों से कर रहे हैं। कुछ काल के उपरांत आप के श्रोता सन्देह करने लगेंगे कि आप के सार्वजनिक दर्शन में महत्त्वपूर्ण बात आप के विचार नहीं, वरन् आप के शरीर के हाथ-पांव हैं। इसके विपरीत यदि आप अपने संकेत भूल जायेंगे तो श्रोतागण भी उन्हें भूल जायेंगे।

यदि आप अपना समस्त ध्यान उन्हीं पर एकाग्र करेंगे जो कुछ आप को कहना है, तो आप के श्रोतागण आप के [illegible] को प्रतिबिम्बित करेंगे।

यदि आप दो-तीन मिनट चुप रह कर अपने शब्दों को अपने श्रोताओं के अन्तःकरण पर अंकित होने देने की अनुमति देते हैं, तो मत समझिए कि इससे आपके श्रोता रुष्ट हो जायेंगे। वे उल्टा आपका धन्यवाद करेंगे कि आपने उनको अपने विचारों को पचाने के लिए अवकाश दिया है

[illegible] के साथ किसी [illegible] है। यदि आपको [illegible]

तो इस बात का विज्ञापन करने की कोई आवश्यकता नहीं। बहुत से श्रोता-गण आप जो कुछ बोलेंगे उसी के अनुसार आपका मोल आँकेंगे। यदि आपके शब्द आपके विश्वास की निष्कपटता को लिए है, तो आपके श्रोता आपके सदेश को उसी भाव से ग्रहण करेंगे। वक्ता के रूप में आपका काम उन लोगो पर जो आपको सुन रहे है अपने हेतु को अंकित करना, उनके मन पर उसकी छाप लगाना है, जिस हेतु की प्रेरणा से आप बोल रहे है। यदि आप सचाई और भलाई से प्रेरित होकर कार्य कर रहे है तो यह काम आपके लिए सरल होगा।

अपने श्रोताओं को जानना आपके लिए आवश्यक है। सब श्रोताओ में बहुत सी बाते सामान्य होती है। वे सब प्रकार के श्रोताओ मे एक ही तरह की पाई जाती है। फिर भी उनमें से कुछ के व्यक्तिगत विशेषता-सूचक गुण होते है। इसलिए श्रोताओ को जानना उनके सामने अधिक फलदायक रूप से बोलना है। इसके लिए कई बातो का ध्यान रखना होता है। उदाहरणार्थ, आपके श्रोताओं की रुचि क्या है।

सब लोगों की एक ही बात मे एक सी रुचि नही होती। यदि आपको पता है कि वे किस कारण से आपका भाषण सुनने आए है, तो आप उनकी रुचि का उपयोग उनकी चिंता को बढ़ाने मे कर सकते है। पहले वे बाते कहिए जिनका आपके श्रोताओ पर प्रभाव पड़ता है, जिनका उनके भले-बुरे से सबध है और फिर उन्ही को लेकर आगे अपना व्याख्यान बढ़ाइए। यह सफलता की निश्चयात्मक पथ-दर्शक है।

आपके श्रोताओ की पृष्ठ भूमि क्या है, इसका ज्ञान भी

आपको रहना चाहिए। जब कोई शिक्षक बच्चों को पढ़ाने लगता है तो वह पहले देखता है कि उनको इस विषय का पूर्व ज्ञान कितना है। तभी वह समझ सकता है कि जो कुछ मैं उन्हें सिखाने जा रहा हूँ उसे वे ग्रहण कर सकेंगे या नहीं। यही बात वक्ता की भी है। प्रत्येक अच्छा भाषण एक नये पाठ के सदृश होता है। श्रोतागण को इस विषय का जितना ज्ञान है उसके आगे चलना होगा।

भाषण के लिए अवसर को भी देखना आवश्यक होता है। भाषण ऐसा होना चाहिए जो उस अवसर के अनुकूल हो। वह उस अवसर का एक अंग हो।

श्रोताओं की संख्या का भी विचार करना आवश्यक होता है। आप देखेंगे कि छ मनुष्यों के सामने बोलना उतना प्रभावोत्पादक नहीं होता जितना कि छ. सौ के सामने होता है।

श्रोताओं की संख्या थोड़ी हो तो उनके साथ प्रगाढ़ मित्रता दिखला कर बोलना चाहिए। बड़ी बड़ी सभाओं के उपचारों का पालन करने की आवश्यकता नहीं होती

दृष्टांतों का उपयोग कीजिये। मानव-मन मूर्त उदाहरणों को जितनी आसानी से समझ सकता है उतनी आसानी से अमूर्त या कल्पित उपदेश को नहीं।

सार्वजनिक भाषणों मे दृष्टांतों से काम लेना सदा अच्छा रहता है। अपना भाव उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिये। कहानियों का उपयोग कीजिये। वास्तविक घटनाएँ सुनाइये। समाचार पत्रों से विवरण प्रस्तुत कीजिये। आप देखेंगे कि एक ही दृष्टांत को सजीव तथा स्पष्ट रूप से सुना कर आप अतीव उदासीन श्रोताओं को भी दिलचस्पी लेने वाले बना लेंगे।

अपने श्रोताओ पर दृष्टि डालिए। इसका अर्थ यह है कि आप को अपने श्रोताओ मे से एक से अधिक व्यक्तियो के साथ बात करनी चाहिए। आप सारे श्रोताओ से बात कीजिए। उन पर ध्यान दीजिए। परन्तु उनमे से किसी एक मनुष्य के साथ बात करने और उससे आँख मिलाने के लिए रुकने मे मत हिच-कचाइए। इस प्रकार आप को इस बात का कुछ भान हो जायगा कि श्रोताओं पर आप के भाषण की क्या प्रतिक्रिया हो रही है— उन पर आप के शब्दो का क्या प्रभाव हो रहा है। इससे श्रोताओ के साथ आप का सम्पर्क भी स्थापित हो जाता है।

अपने श्रोताओं के साथ रुष्ट कभी न हूजिए। अरुचिकर हुए बिना ही मत-भेद रखना लोक-सेवक की विशेषता होनी चाहिए। आप चाहे कितने ही क्रोध मे आये क्यो न हो, परन्तु आप को यह बात श्रोताओ पर प्रकट नहीं होने देनी चाहिए।

चिल्लाइए मत। आपे से बाहर मत हूजिए। वक्ता के रूप मे आप का काम अपने श्रोताओ को प्रेरणा करना है, उनको उन

सचाइयो की ओर आकर्षित करना है जो आप के तत्त्वज्ञान का आधार है। यदि आप थोड़े से श्रोताओ के व्यवहार से चिढ़ कर सभी श्रोताओ के विरुद्ध हो जाते है, तो आप हार जाते है और आप के विरोधी जीत जाते है। धर्मप्रचारक के लिए यह बात बड़े महत्त्व की है। आप के श्रोताओ मे शायद दो चार ही ऐसे हो जो आप के विरोधी हो। उनसे भी चिढ़िए नहीं, प्रेम कीजिए। तभी आप सारे ससार को प्रेम का सदेश सुना सकेंगे।

धर्म-प्रचारक के प्रति

संसार मे अधिकाश मनुष्य ऐसे है जिनके विपय मे कहा जा सकता है कि—"वे रोगी है, पर वैद्य को नही चाहते। वे रोते है, पर रोने के कारण को दूर करना नहीं चाहते।" नैतिक वल ही एक ऐसा वल है जो संसार मे वड़े काम कर सकता है।

अध्यापक मे ये गुण होने चाहिए—समर्पण का प्रवल भाव। दूसरो की सेवा के लिए ढकेलने वाला संकल्प। संसार को अपने जन्म पर जैसा पाया था उससे अच्छा वना कर यहाँ से जाने की इच्छा। जीवन मे यथा सम्भव अधिक से अधिक डालना और उसमे से कम से कम निकालना।

प्रत्येक अच्छे अध्यापक मे दैवी चिङ्गारी रहती है। उस चिगारी को शब्दो मे प्रकट करना कठिन है। वह अपने विद्यार्थियो मे सच्ची दिलचस्पी तथा प्रेम है। यह दिव्य प्रेम ही लोगो को दूसरो के लिए, देश के लिए और अपने लिए कुछ करने को प्रेरित करता है।

ससार मे धर्म प्रचार के वाद अध्यापन से वढ़ कर पवित्र दूसरा काम नहीं। एक अध्यापिका कहती है कि जव मैं अपनी जिम्मेदारियो का अनुभव करती हूँ तो मेरी टाँगे लड़खड़ाने लगती है। मै अनुभव करती हूँ कि मैं मानव-समाज की सेवा कर रही हूँ और भगवान् की भी।

किसी भी प्रकार के काम मे अच्छे गुण उस चीज का असर होते है जिसका कारण श्रद्धा, आशा तथा दान होता है।

इस पुस्तक का उद्देश पाठकों में पवित्र जीवन के लिए प्रेम उत्पन्न करना है चाहे वे किसी भी प्रकार का काम कर रहे हों।

सारे संसार की चिन्ता कीजिए, केवल अपने ही एक स्थान की नहीं।

जनता को परमेश्वर के निकट और परमेश्वर को जनता के निकट लाना हमारा कर्तव्य है।

लोगों में जाइये। उनसे परहेज न कीजिए। विवाहों तथा उत्सवों में सम्मिलित हूजिए। सब प्रकार के लोगों से बातें कीजिए।

पहाड़, दरिया, झरना, खेत वन और उद्यान सब कहीं जा कर लोगों से मिलिए।

जिस मनुष्य की किसी बात मे रुचि नहीं उस से बढ़ कर रूखा और दूसरा कोई नहीं। दयनीय लोग वे है जो अपने जीवन मे दर्शक बनना चाहते है, काम मे हाथ बटाने वाले नहीं।

सब से दुःखी वे तमाशा देखने वाले है जो जान बूझ कर जलूस पर अपनी पीठ फेर लेते है।

सुख केवल तभी मिलता है, जब हम किसी उद्देश के लिए अपने आप को खर्च कर देते है।

मृदु बनिए, किसी को दुःख न दीजिए। आप जितनी मक्खियाँ मधु से पकड़ सकते है उतनी सिरके से नहीं। मृदुल होने के लिए थोड़ा अधिक समय और कुछ अधिक उद्योग की अपेक्षा रहती है। परन्तु इस से अन्त मे लिहाजी फायदा बहुत होता है। जल्दी से बोले हुए व्यंगपूर्ण शब्द भलाई के लिए उठाए गये अनेक पगो को उलट या नष्ट कर सकते है। कचित् ही किसी व्यक्ति को तग कर के अपने पक्ष मे किया जा सकता है। चिढ़ कर या मूर्ख बन कर उन लोगो को कष्ट देना जो हमारे या धर्म के विरुद्ध है उन को अपने से दूर भगाने की निश्चित रीति है।

दूसरो पर अपने विचार प्रस्तुत तो करने चाहिए पर ठूसने नहीं चाहिए। बहुत से लोग बीच मे हस्तक्षेप को बुरा मानते हैं। यह प्रमाणित करना कि मैं ठीक हूँ और दूसरे गलती पर है, इस विध्वंसक भाव से बचते रहिए।

इस के विपरीत लोग सचाई को अधिक स्वीकार करते है जब वह उन के सामने प्रस्तुत की जाती है, न कि उन के गले के नीचे उतारी जाती है। भीतर ठूसने से सतर्क होकर बचिए।

लोक-सेवक आग तैयार करता है, परन्तु दियासलाई नही
गड़ता ।

निराशावादी की अपेक्षा आशावादी होना अच्छा है। किसी
नुष्य को झाड़ी मे पड़ी मदिरा की बोतल मिली। उसने उसे
ठा कर कहा, वाह वाह ! मदिरा की बोतल मिल गई। पर बाद
ो वह बोला, ओह ! यह तो आधी भरी है। इस पर उसका
ाथी बोला ‘अरे भरी तो है, चाहे आधी भरी है।” वह
सन्न था।

धर्म-प्रचारक को सब से बढ़ कर आशा-जनक पक्ष पर बल
ेना चाहिए। परन्तु साथ ही उसे यथार्थवादी भी रहना
ाहिए।

यह सच है कि ससार मे बहुत से सदोष विचार फैलाए गये
है। फिर भी लोग उतने ही अच्छे है जितने कि वे उत्साह-वर्धक
तथा आश्चर्यकारी है। वे सारे बुरे भी हो तो भी उनके सुधार
की आशा है। हताश होना धर्म-प्रचारक का काम नहीं। आशा-
वादी मनुष्य प्रत्येक विपत्ति मे भी सुयोग देखता है। निराशा-
वादी प्रत्येक सुयोग मे भी विपत्ति देखता है।

प्रफुल्लित रहिए, प्रसन्न रहिए, उदास मत हूजिए।

कोई भी राग इतना अच्छा नहीं कि जिस का दरद न
मिलता हो। दूसरों पर हँसने के स्थान मे हम अपने पर हँसें, यह
अच्छा लक्षण है। निरुत्साहित करने वाली विघ्न-बाधाओं मे भी
मुस्कराते रहना एक बड़ा सद्गुण है। यह इस बात को प्रकट
करता है कि आप को परमेश्वर तथा दूसरों मे प्रबल विश्वास है।

जिन का विश्वास उनके अपने आप के बाहर किसी दूसरे

लोक-सेवक आग तैयार करता है, परन्तु दियासलाई नही रगड़ता।

निराशावादी की अपेक्षा आशावादी होना अच्छा है। किसी मनुष्य को झाड़ी मे पड़ी मदिरा की बोतल मिली। उसने उसे उठा कर कहा, वाह वाह! मदिरा की बोतल मिल गई। पर बाद को वह बोला, ओह! यह तो आधी भरी है। इस पर उसका साथी बोला "अरे भरी तो है, चाहे आधी भरी है।" वह प्रसन्न था।

धर्म-प्रचारक को सब से बढ़ कर आशा-जनक पक्ष पर बल देना चाहिए। परन्तु साथ ही उसे यथार्थवादी भी रहना चाहिए।

यह सच है कि ससार मे बहुत से सदोष विचार फैलाए गये है। फिर भी लोग उतने ही अच्छे है जितने कि वे उत्साह-वर्धक तथा आश्चर्यकारी है। वे सारे बुरे भी हो, तो भी उनके सुधार की आशा है। हताश होना धर्म-प्रचारक का काम नही। आशावादी मनुष्य प्रत्येक विपत्ति मे भी सुयोग देखता है। निराशावादी प्रत्येक सुयोग मे भी विपत्ति देखता है।

प्रफुल्लित रहिए, प्रसन्न रहिए, उदास मत हूजिए।

कोई भी काम उतना अच्छा नहीं कि जिस का दण्ड न मिलता हो। दूसरो पर हँसने के स्थान मे हम अपने पर हँसे, यह अच्छा लक्षण है। निरुत्साहित करने वाली विघ्न-बाधाओं मे भी मुस्कराते रहना एक बडा सद्गुण है। यह इस बात को प्रकट करता है कि आप को परमेश्वर तथा दूसरो मे प्रबल विश्वास है।

जिन का विश्वास उनके अपने आप के बाहर किसी दूसरे

जिस मनुष्य की किसी बात मे रुचि नहीं उस से बढ़ कर रूखा और दूसरा कोई नहीं। दयनीय लोग वे है जो अपने जीवन मे दर्शक बनना चाहते है, काम मे हाथ बटाने वाले नहीं।

सब से दुःखी वे तमाशा देखने वाले है जो जान बूझ कर जलूस पर अपनी पीठ फेर लेते है।

सुख केवल तभी मिलता है, जब हम किसी उद्देश के लिए अपने आप को खर्च कर देते है।

मृदु बनिए, किसी को दुःख न दीजिए। आप जितनी मक्खियॉ मधु से पकड़ सकते है उतनी सिरके से नहीं। मृदुल होने के लिए थोड़ा अधिक समय और कुछ अधिक उद्योग की अपेक्षा रहती है। परन्तु इस से अन्त मे लिहाजी फायदा बहुत होता है। जल्दी से बोले हुए व्यंगपूर्ण शब्द भलाई के लिए उठाए गये अनेक पगो को उलट या नष्ट कर सकते है। क्वचित् ही किसी व्यक्ति को तग कर के अपने पक्ष मे किया जा सकता है। चिढ़ कर या मूर्ख बन कर उन लोगो को कष्ट देना जो हमारे या धर्म के विरुद्ध है उन को अपने से दूर भगाने को निश्चित रीति है।

दूसरो पर अपने विचार प्रस्तुत तो करने चाहिए पर ठूसने नहीं चाहिए। बहुत से लोग बीच मे हस्तक्षेप को बुरा मानते है। यह प्रमाणित करना कि मैं ठीक हूँ और दूसरे गलती पर है, इस विध्वंसक भाव से बचते रहिए।

इस के विपरीत लोग सचाई को अधिक स्वीकार करते है जब वह उन के सामने प्रस्तुत की जाती है, न कि उन के गले के नीचे उतारी जाती है। भीतर ठूसने से सतर्क होकर बचिए।

जिस मनुष्य की किसी बात मे रुचि नहीं उस से बढ़ कर रूखा और दूसरा कोई नहीं। दयनीय लोग वे है जो अपने जीवन मे दर्शक बनना चाहते है, काम मे हाथ बटाने वाले नहीं।

सब से दुःखी वे तमाशा देखने वाले है जो जान बूझ कर जलूस पर अपनी पीठ फेर लेते है।

सुख केवल तभी मिलता है, जब हम किसी उद्देश के लिए अपने आप को खर्च कर देते है।

मृदु बनिए, किसी को दुःख न दीजिए। आप जितनी मक्खियाँ मधु से पकड़ सकते है उतनी सिरके से नही। मृदुल होने के लिए थोड़ा अधिक समय और कुछ अधिक उद्योग की अपेक्षा रहती है। परन्तु इस से अन्त मे लिहाजी फ़ायदा बहुत होता है। जल्दी से बोले हुए व्यंगपूर्ण शब्द भलाई के लिए उठाए गये अनेक पगो को उलट या नष्ट कर सकते है। क्वचित् ही किसी व्यक्ति को तग कर के अपने पक्ष मे किया जा सकता है। चिढ़ कर या मूर्ख बन कर उन लोगो को कष्ट देना जो हमारे या धर्म के विरुद्ध है उन को अपने से दूर भगाने की निश्चित रीति है।

दूसरो पर अपने विचार प्रस्तुत तो करने चाहिए पर ठूसने नहीं चाहिए। बहुत से लोग बीच मे हस्तक्षेप को बुरा मानते है। यह प्रमाणित करना कि मैं ठीक हूँ और दूसरे गलती पर है, इस विध्वंसक भाव से बचते रहिए।

इस के विपरीत लोग सचाई को अधिक स्वीकार करते है जब वह उन के सामने प्रस्तुत की जाती है, न कि उन के गले के नीचे उतारी जाती है। भीतर ठूसने से सतर्क होकर बचिए।

लोक-सेवक आग तैयार करता है, परन्तु दियासलाई नही रगड़ता।

निराशावादी की अपेक्षा आशावादी होना अच्छा है। किसी मनुष्य को झाडी मे पड़ी मदिरा की बोतल मिली। उसने उसे उठा कर कहा, वाह वाह! मदिरा की बोतल मिल गई। पर बाद को वह बोला, ओह! यह तो आधी भरी है। इस पर उसका साथी बोला "अरे भरी तो है, चाहे आधी भरी है।" वह प्रसन्न था।

धर्म-प्रचारक को सब से बढ़ कर आशा-जनक पक्ष पर बल देना चाहिए। परन्तु साथ ही उसे यथार्थवादी भी रहना चाहिए।

यह सच है कि संसार मे बहुत से सदोष विचार फैलाए गये है। फिर भी लोग उतने ही अच्छे है जितने कि वे उत्साह-वर्धक तथा आश्चर्यकारी है। वे सारे बुरे भी हो, तो भी उनके सुधार की आशा है। हताश होना धर्म-प्रचारक का काम नहीं। आशा-वादी मनुष्य प्रत्येक विपत्ति मे भी सुयोग देखता है। निराशा-वादी प्रत्येक सुयोग मे भी विपत्ति देखता है।

प्रफुल्लित रहिए, प्रसन्न रहिए, उदास मत हूजिए।

कोई भी काम उतना अच्छा नहीं कि जिस का दण्ड न मिलता हो। दूसरों पर हँसने के स्थान मे हम अपने पर हँसे, यह अच्छा लक्षण है। निरुत्साहित करने वाली विघ्न-बाधाओं मे भी मुस्कराते रहना एक बड़ा सद्गुण है। यह इस बात को प्रकट करता है कि आप को परमेश्वर तथा दूसरो मे प्रबल विश्वास है।

जिन का विश्वास उनके अपने आप के बाहर किसी दूसरे

मे नहीं वे ही हतोत्साह तथा हताश हुआ करते है। जो लोग स्वनिष्ट है, जिन की ईश्वर मे निष्ठा नहीं उन मे श्रद्धा तथा कौतुक का अभाव रहता है।

जो लोग मूलतः धर्म विश्वासी है, वे ही हृदय से प्रसन्न तथा सुखी होते है। लोगो को दो अधिक और उन से लो कम। देने के लिए जाओ लेने के लिये कम जाओ।

डरपोक नही साहसी बनो। साहसी का अर्थ धृष्ट नहीं।

"जिन खोजा तिन पाया गहरे पानी पैठ।" अपनी भूले स्वीकार कीजिए। उन से इनकार न कीजिए।

विश्वविद्यालय तथा अखबार सत्य के समर्थक माने जाते है। परन्तु जर्मनी मे जब क्रान्ति आई तो दोनो दब गये। वे हिटलर के हाथ की कठपुतली बन गये। अकेला धर्म-सघ (चर्च) ही ऐसा निकला जो सचाई के लिए डटा रहा। उसने नाजियो के संकेत पर उलटी-सीधी बातो का प्रचार करने से इनकार कर दिया। प्रसिद्ध वैज्ञानिक आईस्टीन कहता है कि केवल धर्म-सघ ने ही बौद्धिक सत्य और नैतिक स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए काम किया।

अपनी भूल स्वीकार करना भी अभिमान तोड़ने तथा नीचा दिखाने वाला होता है। परन्तु अपनी इच्छा से नीचा देखने से ही हम अपनी आध्यात्मिक जडो को गहरा तथा सुदृढ़ करते है।

अभिमानी नहीं, विनीत बनिए। दु:ख का कारण यह होता है कि हम अपने को पूर्ण बताने का प्रयास करते है। हम अपने को वह दिखलाना चाहते है जो वास्तव मे हम है नही। यदि परमात्मा ने हमे कोई एक क्षमता दी है तो समझिए कि प्रभु

चाहता है कि हम उसी का निपुणता के साथ उपभोग करें। अपने से बहुत सी क्षमताएँ होने का ढोंग रच कर अपने संसार को मूर्ख न बनाए।

भगवान् इतना चतुर है कि वह जानता है कि आप क्या नहीं जानते। अभिमान बुरी बला है।

विश्वास और भरोसा भरिए, किसी को हतोत्साह न कीजिए।

प्यार किए जाने से बढ़ कर जादू-भरा विस्मय और दूसरा नहीं। प्रेम मनुष्य के कंधे पर परमेश्वर की उँगली है।

बुरे से बुरे मनुष्य में भी कुछ न कुछ कुलीनता या चरित्र की उच्चता रहती है कारण यह कि सभी मनुष्य भगवान् के अमृत पुत्र हैं और वह भगवान् का दिव्य अंश कभी पूर्णरूप से मिटाया नहीं जा सकता।

किसी मनुष्य को कभी निराशा-जनक समझ कर फेंक मत दीजिए। आशा सदा रहती है कि वह भी किसी दिन सचाई पर आ सकता है। उसकी सहायता करना धर्म-प्रचारक का विशेषाधिकार है। वह उससे कह सकता है कि आप ने बहुत कुछ अच्छाई का अंश है। मित्रोचित शब्दों या दृष्टि से वह उसमें विश्वास भर सकता है। यह भी उदारता का एक रूप ही है।

उदारता क्या है ?

जब दूसरों के शब्दों से आप का दिल दुखे तो मौन रहना उदारता है। जब आपका पड़ोसी रूखापन दिखाए तो धैर्य रखना

उदारता है। जब आप की कोई निन्दा फैल रही हो तो कानो को बहरा कर लेना उदारता है।

उदारता दूसरो के दुःखो से चिन्तित रहना है। यह वह तत्परता है जो कठोर कर्तव्य बुलाता है। यह विपत्ति पड़ने पर साहस है।

अरुचिकर हुए बिना मत-भेद रखिए। सत्य बोलिए पर अप्रिय सत्य न बोलिए। केवल प्रिय सत्य ही बोलिए।

कई धर्म-प्रचारक जो दूसरी सभी दृष्टियो से बड़े धर्म-प्रेमी होते है, अप्रिय बनने का प्रयास करते है। मत-भेद रखते हुए भी प्रिय बना रहना सरल होता है। यदि ऐसे धर्म-प्रचारक को मालूम हो कि उसके मुँह से निकले हुए कड़वे तथा अरुचिकर शब्द कितने लोगों को उसका धर्मग्रहण करने से रोक देते है, तो वह-तुरन्त अपना सुधार कर ले।

दृढ़ बना रहना ठीक है, परन्तु अप्रिय बनना दुर्बलता का लक्षण है।

दोनो दृष्टियो से देखिए, केवल अपनी ही दृष्टि से नही। एक लेखक कहता है—

"जब कोई दूसरा मनुष्य किसी ढंग से काम करता है तो आप उसके ढंग को घृणित तथा भद्दा कहने लगते है जब आप उसी ढग से काम करते है तो आप उसे साहस तथा धैर्य समझने लगते है। जब वह अपनी बात पर डटता है, तो आप उसे हठीला और जिद्दी कहने लगते है। जब आप वैसा ही करते है तो वह दृढ़ता हो जाती है। जब वह आप के मित्रो को पसंद नहीं करता, तो वह पक्षपाती है। पर जब आप उसके मित्रों को पसद नहीं करते, तो आप मानव-प्रकृति की अच्छी जानकारी प्रकट कर रहे

है। जब वह उपकारी बनने का प्रयास करता है तो वह सेब को पालिश कर रहा है। जब आप वैसा करते है, तो आप चतुराई से काम ले रहे है।

धीर बनिए। प्रचण्ड न बनिए। धैर्य से, पर अविचलित भाव से आगे बढ़िए।

अरुचिकर भाव से असभ्य बनने से कई बार बड़ी हानि हो जाया करती है। जिन लोगो को हम महात्मा या सन्त कहते है वे महात्मा और सन्त क्यों कहलाते थे ? क्योंकि वे ऐसे अवसरो पर प्रसन्न रहते थे जब कि प्रसन्न रहना कठिन होता था। वे ऐसे समयो मे धैर्यवान थे जब धैर्य रखना कठिन था। वे आगे ढकेलते थे जब उनका मन चाहता था कि निश्चल ठहरे रहे।

वे चुप रहते थे, जब कि उनका मन बोलने को चाहता था। वे प्रिय होते थे जब कि उनका मन चाहता था कि वे अप्रिय हो। बस इतनी ही बात थी।

यह बात बिलकुल सरल थी और सरल बनी रहेगी।

काम करने वाले बनिए, न कि बाते बनाने वाले।

एक कैद होने वाले जन का आदर्श वाक्य था—"अपमान से पहले मृत्यु", बाते ही करने और उन पर आचरण न करने से श्रद्धा भी नष्ट हो जाती है। अच्छा बनने का सब से सुगम मार्ग अच्छाई करना है।

कष्ट से दूर मत भागिए। इसका उपयोग कीजिए।

एक लड़की की दोनों टॉगे मोटर दुर्घटना से कुचल गई थीं। वह कहती है—

"मेरा यह अनुभव है कि दुःख तथा व्यथा दुर्भाग्य ने बड़े

भारी चरित्र-निर्माता है। इसलिए नहीं कि दु ख अपने आप मे कोई अच्छी वस्तु है, वरन् इसलिए कि यह बहुधा हमे सुख की प्रत्याशा को बाहर से हटा कर उसे भीतर तलाश करने मे सहायता देता है। कबीर जी ने भी कहा है—

सुख के सिर पर सिल धरूँ।
जो हरि का नाम भुलाए॥
बलिहारी उस दुःख के।
जो क्षण-क्षण नाम जपाय॥

पदार्थों और व्याकुलता से हमारा इतना सॉस घुट रहा है कि सुख की सच्ची तलाश प्राय. असम्भव है। मै अनुभव करती हूँ कि हमे अकेले होने मे न डरना सीखना चाहिए। तब हमे अकेले-पन से भाग कर व्याकुलता मे नही चले जाना चाहिए। अपने आप को समझना सुख का सब से बड़ा अग है। यह भीतर से या मौन मे ही किया जा सकता है—निश्चलता, निस्तब्धता तथा एकान्त मे ही प्राप्त किया जा सकता है। सुख मूलत. अन्तर की वस्तु है और भीतर से ही प्राप्त होती है। दूसरे शब्दो मे ब्रह्मानन्द हमारे भीतर है।"

दुःख से हमे आत्म-बोध होता है। जितना अधिक हमे आत्म-बोध होगा उतना ही अधिक हम दूसरो को भी समझ सकेंगे।

पदार्थों की तलाश या उन पर अधिकार से सुख नही मिलता। यह दु.ख उठाने तथा दूसरो के दु.ख मे भाग लेने से उसी प्रकार मिल जाता है जिस प्रकार पत्थर के कोयले की गैस बनाते समय उसके साथ ही कोलतार या खॉड बनाते समय उसके साथ शीरा और मदिरा भी प्राप्त हो जाती है।

क्लेशो के द्वारा ही हम भगवान् के स्वर्ग-राज मे प्रवेश कर सकते है।

पहली चीजों को पहले रखिए

हमे वे चीजे पहले करनी चाहिएँ जिन्हे हम मे से बहुत से लोग सब से अन्त मे करने पर झुके रहते है।

अपने पड़ोसी पर वैसा ही प्रेम कीजिए जैसा आप अपने पर करते है।

सॉप के सदृश चतुर और पण्डुक के सदृश सरल बनिए।

देखिए, यह नहीं कहा गया कि पहले अपने पर प्रेम कीजिए या पहले पण्डुक के समान सरल हूजिए, वरन् पहले पड़ोसी पर प्यार करने और सॉप के समान चतुर बनने और बाद को अपने पर प्यार करने और पण्डुक के समान सरल बनने को कहा गया है। आप को चतुर और सरल दोनों होना चाहिए।

पहले बड़े स्थानो मे और बाद को छोटे स्थानो मे प्रचारार्थ जाइए।

महात्मा कहते हैं—

सदा सत्य की ही जय होती है, झूठ की नहीं। यदि तुम उन पर प्रेम करते हो जो तुम पर प्रेम करते है, तो इसमे बड़ाई ही क्या है।

यदि तुम उसे नमस्कार करते हो जो तुम को अभिवादन करता है, तो इसमे बड़ाई ही क्या है ?

अपने शत्रु से भी प्रेम करो। जो रोगी नहीं उसे वैद्य की आवश्यकता नहीं। जो रोगी है उसे ही वैद्य की आवश्यकता है।

जब तक दाना गलता नही वह अकेला ही रहता है। गलने पर ही उसे बहुत से दाने लगते है।

तुम व्यभिचार न करो। जो किसी स्त्री को व्यभिचार की दृष्टि से देखता है, वह हृदय मे पहले ही उसके साथ व्यभिचार कर चुका है।

जो न्याय के लिए दु:ख उठाते है वे धन्य है, क्योकि उनके लिए स्वर्ग का राज्य है।

जब लोग तुम्हारी झूठे ही निन्दा करे तो इसे ईश्वर का आशीर्वाद समझो। प्रसन्न हो, क्योकि स्वर्ग मे तुम्हारा पुरस्कार बहुत बड़ा है।

शरीर को कष्ट देने वाले से मत डरो, वरन् शरीर तथा आत्मा को नरक मे नष्ट करने वाले अन्याय से डरो।

अपनी आत्मा का नाश करके ससार का राज्य पाने से क्या लाभ ?

इस विचार से किसी को भोजन न खिलाओ कि वह तुम्हे भी खिलायेगा। लूलों-लगड़ों को खिलाओ जो तुम्हें नहीं खिला सकते। उसका बदला तुम्हे अगले जन्म मे मिलेगा।

यदि तू अपनी निन्दा आप करता रहेगा, अर्थात् अपने दोषो पर दृष्टि रखेगा, तो दूसरो को तेरी निन्दा का अवसर न मिलेगा।

ब्रह्मचारी को कहीं भी दुःख नही होता। उसे सब कुछ प्राप्त है। ब्रह्मचर्य के प्रभाव से अनेक ऋषि ब्रह्म-लोक मे स्थित है।

धन अहङ्कार करने के लिए नहीं, दान के लिए है। जरूरत मन्द गरीबो का जिससे निर्वाह होता है वही धन है, नहीं तो मिट्टी का ढेला है।

विपत्ति के समय धीरज न छोड़ो। बड़ी से बड़ी तंगी मे भी किसी के सामने हाथ जोड़ कर अपना मान न गँवाओ।

विपत्ति में धीरज, अभ्युदय मे क्षमा, सभा मे वाक्-चातुर्य, युद्ध मे विक्रम, यश मे रुचि और श्रुति मे व्यसन, ये महात्माओं के स्वभाव-सिद्ध गुण है।

प्रत्येक मनुष्य को समाज-हितकर नियम पालन मे परतंत्र रहना चाहिए और प्रत्येक स्वहितकारी नियम पालन मे स्वतंत्र रहना चाहिए।

जो मनुष्य अपनी चिन्ता छोड़ कर दूसरों की चिन्ता करता है, उसकी चिन्ता स्वयं भगवान् करते है।

कोई कोयला इतना काला नहीं होता जो जल कर लाल न हो सके।

जैसे निकम्मी पुस्तक नहीं पढ़नी चाहिए वैसे ही निकम्मे विचार भी मन में नहीं आने देने चाहिएँ।

सम्पत्ति प्राप्त करके सपने में भी अभिमान नहीं करना चाहिए। जैसे चंचल जल में बर्त्तन स्थिर नहीं रह सकता, वैसे ही सम्पत्ति भी कभी स्थिर नहीं रहती।

नेत्रों को सकट देखने का अभ्यास हो जाए तो बहुत सा भय कम हो जाता है।

सहिष्णुता दैव को भी जीत लेती है। अपनी दैनन्दिन आवश्यकता का बोझ हलका करना यह अपना काम है। यह ईश्वर का निर्माण किया हुआ पवित्र काम है और यही स्वर्गीय सन्देश है।

धनवानों की निन्दा नहीं करनी चाहिए। उन्हीं के कृपा-कटाक्ष से निर्धनों के दुःख दूर होते है। जो धनी निर्धनों की सहायता नहीं करते वे ईश्वर के सामने पापी है।

उचित कामों को जहाँ तक हो सके शीघ्र कर डालना चाहिए। किसी शुभ मुहूर्त्त की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए, क्योंकि शुभ कामों का मुहूर्त्त शीघ्रता ही है।

इस संसार के सदा बदलते हुए नाना रूपों में जो केवल एक अद्वितीय एक को देखते है उन्हीं को सनातन सत्य के दर्शन होते है, और किसी को नहीं।

दूसरों की बढ़ती देख कर खेद न करो और न अपने शत्रु की आपत्ति देख कर प्रसन्न हो। यदि तुम ऐसा करोगे तो अवसर पड़ने पर दूसरे भी तुम्हारी नक़ल करेंगे।

चाहे कोई काम धूम-धड़ाके और गाने बजाने से किया गया हो, केवल इसीलिए उसकी प्रशंसा न करो। महात्मा लोग बड़े बड़े काम करते है, पर उनके लिए ढोल पीटते नहीं फिरते।

पात्र तथा अपात्र की परीक्षा किए बिना और बिना विचारे दान देने की पद्धति भगवान् की अखण्ड धन-राशि का सब से बड़ा दुरुपयोग है।

समवेदना का उच्च और सबल स्वरूप आँसू गिराने, दृष्टि डालने और अनुकम्पा प्रदर्शन मे ही नहीं, वरन् प्रत्यक्ष सहायता द्वारा उसकी साक्षात् मूर्ति देखी जाती है।

जनता के दु खो को घटाने और सुखो को बढ़ाने का प्रयास करना चाहिए।

दु:खी मनुष्य को प्रेम युक्त सत्य वचनों से आश्वासन दो। उसके हृदय मे उत्साह की बिजली दौड़ाओ। परिश्रम हो तो भी उनकी सहायता करो।

निराशा और अज्ञान मे पड़े हुए मनुष्यो को छुड़ाओ।

मनुष्य के उस मन के लिए, जो सौन्दर्य-पथ का यात्री है, जो ईश्वर की ओर स्थिर भाव से सलग्न है, जो सत्य की छुरी पर घूम रहा है, भूमण्डल ही स्वर्गलोक है।

मन पॅखेरू इन्द्रियों में तब तक उड़ता फिरता है जब तक ईश्वरीय आध्यात्मिक ज्ञान-बाज के सदृश उस पर नहीं टूटता और उसे अपने चगुल मे दबा नहीं लेता।

प्रति दिन कम से कम एक व्यक्ति की ऐसी सेवा करना अपना काम बनाओ जिसके लिए तुम रुपये के रूप मे वेतन पाने की न

प्रत्याशा करते हो और न उसे स्वीकार ही करते हो। पूर्ण विश्वास के साथ यह प्रयोग करो तुम जितनी सेवा करोगे उससे कहीं अधिक फल प्रकृति से तुम्हे मिल जायगा। तुम को यह सेवा प्रसन्नता पूर्वक और दूसरो को लाभ पहुँचाने के भाव से करनी चाहिए। तुम को इसका पुरस्कार मिलना अवश्यम्भावी है। यदि तुम किसी अकृतज्ञ स्वामी के यहाँ सेवा कर रहे हो, तो उसकी और भी अधिक सेवा करो। परमेश्वर को अपना ऋणी बनाओ। प्रत्येक कर्म का फल मिलता है। जितने अधिक काल तक तुम्हारा पारिश्रमिक रुका रहेगा उतना ही तुम्हारे लिए अच्छा होगा, क्योंकि भगवान् रूपी साहूकार के यहाँ चक्रवृद्धि ब्याज देने का नियम है। दूसरो की सफलता मे सहायता देने से तुम को सर्वोत्तम और बहुत शीघ्र सफलता प्राप्त हो सकती है।

ज्ञान से तृप्त हुआ मनुष्य शोक नहीं करता।

जो कर्म बुद्धि-पूर्वक किया जाता है वही श्रेष्ठ है।

पुरुषार्थ ही सब से बढ़ कर है। जो भाग्य को ही बलवान मानता है, वह मोह को प्राप्त होता है।

दुःख की अचूक औषध यही है कि मनुष्य दुःख का चिन्तन ही न करे।

प्रवीणता को प्राप्त करने मे कठनाई होती है। परन्तु उसका फल सुख होता है। सत्य के समान दूसरा कोई सुख नहीं।

घृणा से घृणा दूर नहीं होती, घृणा प्रेम से दूर होती है, ठीक उसी प्रकार जैसे आग से आग नहीं बुझती, आग पानी से बुझती है।

तामसिक दान से सात्विक ग्रहण श्रेष्ठ है। अर्थात् ईमानदारी से धन कमाना कीर्ति के लिए दान देने से अच्छा है।

केवल सत्य की ही जय होती है, झूठ की कभी नहीं। सत्य की सहायता से ही ऋषिगण देवयान मार्ग से परमात्मा के परमधाम तक पहुँचते हैं।

स्तुति-निन्दा समकर जाने और मान अपमाना।
हर्ष-शोक से रहे अतीता तिन जग-तत्व पहचाना॥

जो अभिवादन शील है, जो बड़ो को सेवा करता है, उसकी आयु, यश, सुख और बल यह चार बाते बढ़ती है।

जो मनुष्य अपनी जाति, धन और ज्ञान के अत्यन्त अहङ्कार से अपने दूसरे भाई का अपमान करता है। उसका नाश अनिवार्य है।

शुभाशुभ प्रवृत्तियाँ और धारणाएँ सब मनके अनुसार प्रकट होती हैं। अर्थात् वे शुद्ध मन के अनुसार शुभ और दूषित मन के अनुसार अशुभ उत्पन्न होती हैं। अतएव दूषित मन के द्वारा यदि मनुष्य कोई बात करता है या कर्म करता है तो गाड़ी के बैलों के चलने के साथ-साथ जैसे पहिया चलता है उसी प्रकार दुःख भी उस कर्ता के पीछे-पीछे चलता है और यदि परिशुद्ध मन से वह कोई बात कहता या कर्म करता है तो सुख भी उस मनुष्य की छाया की भाँति उसके पीछे-पीछे चलता है।

"मेरा क्रोधी स्वभाव चला जाय", ऐसी यदि तुम्हारी इच्छा है तो क्रोध की प्रवृति का पोषण मत करना। ऐसी कोई आहुति न देना जिससे वह प्रवृत्ति और भी भड़क उठे।

पहले से ही शान्त-भाव धारण करो और कितने दिन बिना क्रोध के बीतें, इसकी गणना करते रहो। इस बार मैं एक दिन क्रुद्ध नहीं हुआ—इस बार मै दो दिनो तक क्रुद्ध नही हुआ—इस बार तीन दिनों तक क्रुद्ध नही हुआ—इस प्रकार यदि तीस दिनो तक बिना क्रुद्ध हुए रह सको, तो यह प्रवृत्ति धीरे-धीरे निर्बल हो कर सर्वथा निकल जायगी।

जो लोग चन्द्र, सूर्य, तारा नक्षत्र देख कर परमानन्द प्राप्त करते है, जो लोग पृथ्वी और समुद्र को देख कर उल्लसित हो उठते है, वे न अकेले होते है, न असहाय और न निरुपाय हो।

अपने को तत्त्वज्ञानी कह कर कभी प्रसिद्ध मत करना, दूसरे साधारण लोगो के सामने तत्त्वज्ञान की बाते अधिक न बोलना, तत्त्वज्ञान के जो उपदेश है उन्हे कार्य में परिणत करो। किसी भोज मे किस प्रकार भोजन करना चाहिए—इस विषय मे तुम्हारे जो विचार हो वक्तृता द्वारा प्रकट करने के बजाय उचित यह है कि जिस प्रकार भोजन करना उचित है उस प्रकार तुम स्वयं भोजन करो। सुकरात क्या करते थे?—वे किसी प्रकार का आडम्बर नहीं करते थे। वे अपने को ज्ञानी समझ कर अभिमान नहीं करते थे। उनके पास यदि कोई तत्त्व-ज्ञान की खोज मे आता, तो वे उसे दूसरो के पास ले जाते। वे सब प्रकार के तिरस्कार तथा अनादर को प्रसन्नता-पूर्वक सहन कर लेते। तुम लोगो को अपने नगर की चारदीवारी विचित्र रंग के पत्थर से बनाने की आवश्यकता नहीं है। नगर-निवासियो के मन मे, तथा राष्ट्रपति के मन मे जिससे सयम तथा सुशिक्षा का पूर्ण प्रवेश हो ऐसा उपाय करो। विद्वान् लोगों के उन्नत विचारो के द्वारा ही नगर आदि सुप्रतिष्ठित होते है, काठ-पत्थर के द्वारा नहीं।

यदि तुम लोग अपने घरो को सुप्रतिष्ठित करना चाहते हो तो स्पार्टा नगर-निवासी महात्मा लाइकर्गस के दृष्टान्त का अनुसरण करो। उन्होने जैसे नगर को चारदीवारी से नहीं घेरा था, परन्तु नगर-निवासियो के मन मे धर्म-दुर्ग की दृढ़ रूप से स्थापना करके समस्त नगर को चिरकाल के लिए सुरक्षित कर दिया था, उसी प्रकार तुम लोग भी दरबार, गृह और प्रासाद-शिखरो से नगर को न घेर कर गृह-वासियो के हृदय मे पवित्र विचार, भगवद्भक्ति और मैत्री को सुप्रतिष्ठा करो। ऐसा करने से तुम मे कोई असंगल घुसने न पायगा।

तुम कितना मार्ग चल चुके हो, यह उतने महत्त्व की बात नहीं जितनी कि यह बात कि तुम किधर चल रहे हो। कराची की ओर मुंह किए दौड़ते हुए भी तुम कभी कलकत्ता नहीं पहुँच सकोगे।

आयु का अमृत क्या है?—प्रसन्नता। प्रतिदिन करने वाली बात क्या है?—आत्म-परीक्षण।

परावलम्बन दूसरे शब्दों मे आत्म-हत्या है।

समय का सद्व्यय दूसरे शब्दों मे धन का संचय है।

वही वचन दो जिसका तुम पालन कर सकते हो।

सब समय प्रयत्न करो और परोपकार करो। वही शूर है जो अपने को भला लगने वाले विचार को आचरण मे लाता है।

मनुष्य को ईमानदार होना चाहिए, आत्म-समानी होना चाहिए, परन्तु अभिमानी नहीं।

दूसरों को हाथ दिखा कर बड़ा बनने की अपेक्षा दूसरे को हाथ देने से सच्ची बड़ाई मिलती है।

चन्द्रमा और हिमालय पर्वत भी उतने शीतल नहीं, कदली वृक्ष और चन्दन भी उतने शीतल नहीं, जितना कि तृष्णा रहित चित्त शीतल रहता है।

हर्ष के साथ शोक और भय उसी प्रकार लगे हुए हैं जिस प्रकार कि प्रकाश के संग छाया। सच्चा सुखी वही है जिसकी दृष्टि मे दोनो समान है।

विश्वेश्वरानन्द संस्थान प्रकाशन

संस्कृत

सम्पादक—श्री विश्वबन्धु शास्त्री, ऍम. ए., ऍम. ओ. ऍल.

१. वैदिक-पदानुक्रम-कोष—चारों वेदो से सम्बन्धित संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, सूत्र, वेदाङ्ग, दर्शनादि ५०० वैदिक ग्रन्थो के एक-एक पद का पूरा-पूरा स्थल संकेत और उसके स्वरूप का आलोचनात्मक अध्ययन। १४ खण्डो में से पाँच खण्ड छप चुके हैं। तीन कोटि का कागज लगा है। पाँच खण्डो का मूल्य प्रथम कोटि २००), द्वितीय कोटि १५०), तृतीय कोटि १००)।

२. वैदिक-शब्दार्थ-पारिजात—संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेजी तीनों भाषाओं में चारों वेदों के प्रत्येक शब्द का अर्थ परिचय। १म खण्ड। मूल्य ६)

३. वाल्मीकीय रामायण—अनेक विद्वानो की सहायता से प्राचीनतम मौलिक हस्तलेखो के आधार पर पचीस वर्ष पर्यन्त अथक परिश्रम करके तय्यार किया गया है। ७ भागो का सैट मूल्य ७०)

सम्पादक – श्री रामगोपाल शास्त्री—

४. अथर्ववेद सर्वानुक्रमणी—ऋषि, छन्द, देवता आदि का बोधक प्राचीन ग्रन्थ। मूल्य ६)

५. दन्त्योष्ठ्यविधि—अथर्ववेद का लक्षण ग्रन्थ मूल्य १॥)

६. जैमिनीयोपनिषद्-ब्राह्मण—सम्पादक, श्री रामदेव ऍम. ए. जर्मन विद्वान् आर्टल द्वारा प्रथम शोधित। मूल्य ५)

७. माण्डूकी शिक्षा—सम्पादक, श्री भगवद्दत्त, बी. ए.। मूल्य २)

८. काठक-गृह्यसूत्र—सम्पादक, डा. विलियम कैलेण्ड। मूल्य १०)

९. मन्त्रार्षाध्याय—(चारायण)—यजुर्वेदीय ऋषि-इतिहास। मूल्य २)

१०. वैदिक-कोष—सम्पादक, श्री हंसराज। निर्वचन तथा विज्ञान आदि सम्बन्धी ब्राह्मण वाक्यों का अत्यन्त उपादेय संग्रह। मूल्य १५)

११. ऋग्वेद-भाष्य—(स्कन्दस्वामी)—(उद्गीथाचार्य) मूल्य ४)

१२. श्यङ्क-काव्य—लेखक, श्रीकृष्ण कौर। सिक्ख गुरुओ और तात्कालीन पंजाब का १५० वर्ष का पुरातन ऐतिहासिक ग्रन्थ। मूल्य २)

१३ पुराण विषय समनुक्रमणिका—सम्पादक, श्री यशपाल टण्डन। १८ पुराणों तथा रामायण और महाभारत के मुख्य विषयों की सूची। मूल्य ६)

१४. गणिकावृत्तसंग्रह—The Courtezan in Classical Sanskrit Texts, by Dr. L. Sternbach मूल्य २०)

१५. संस्कृत-शिक्षा—श्री गौरीशकर, एम. ए. डी. लिट
आरम्भ से सस्कृत पढ़ने वालों के लिए अत्युत्तम पुस्तक। तीन भाग। मूल्य १॥=)

१६. साहित्य-सुधा—श्री चारुदेव शास्त्री, एम. ए., एम. ओ. एल.
मिडल तथा संस्कृत पढे हुए इसको पढ़कर अपनी योग्यता बढा सकते है। मूल्य २।=)

हिन्दी-प्रकाशन

श्री स्वामी कृष्णानन्द सरस्वती, बी. ए. बी. टी. कृत—

१७. ब्रह्मविद्या—वेदान्त और योग के अनुसार जीवन-प्राप्ति कराने वाला अनूठा ग्रन्थ। मूल्य ६)

१८ अध्यात्मदर्शन—मूल्य ४); १९. आत्म-पथ—मूल्य २);

२०. कर्म और योग—मूल्य २॥) (ये तीनो ग्रन्थ ब्रह्मविद्या से अनुमुद्रित है)।

२१. हमारे बच्चे—श्री सन्तराम, बी ए.
जन्म से लेकर इक्कीस वर्ष तक के बच्चों, किशोरों और नवयुवकों के सद्भाव को बनाने वाली तथा बुरी आदतो को छुडाने वाली हिन्दी में अपने ढग की अद्वितीय पुस्तक है। मूल्य ३॥)

२२. संस्कृतशिक्षाविधि—श्री गौरीशङ्कर, एम ए.
संस्कृत के पठन-पाठन के लिए अत्यन्त उपयोगी ग्रन्थ। मूल्य ३।)

२३. बच्चों की देख-भाल—श्री बहादुरमल्ल, एम. ए.
बच्चो की शारीरिक तथा मानसिक देख-भाल पर दार्शनिक ढंग से लिखी हुई सरल पुस्तक। प्रत्येक गृहस्थी के पढ़ने योग्य। मूल्य १।।।)

श्री विश्वबन्धु शास्त्री. एम. ए., एम. ओ. एल. कृत—

२४. वेदसार—मूल्य १।।) मानव जीवन के प्रत्येक अङ्ग को उन्नत करने वाले सदुपदेश से युक्त वेद-मन्त्र तथा उनका सरल हिन्दी अनुवाद।

२५. मानवता का मान—मूल्य १।=) मानवता का माप क्या है? इस विषय पर भगवद्गीता के १२ वे अध्याय के आधार पर लिखा हुआ सरल ग्रन्थ।

२६. सत्संग-सार-मूल्य १।=) उपयोगी निबन्ध संग्रह।

२७ सुखी संसार—संसार सुखी कैसे हो सकता है, पढ़िये। मूल्य ।।)

श्री सन्तराम. बी. ए. कृत—

२८. व्यवहारिकज्ञान—२७ प्रतिदिन काम में आने वाले उपयोगी विषयों का ज्ञान। मूल्य २।।)

२९. रसीली कहानियां—पंजाबी भाषा और देवनागरी लिपि में अति सुन्दर तथा मनोरञ्जक सचित्र कहानियाँ। मूल्य १)

३०. देश-देशान्तर की कहानियाँ—पीढ़ी दर पीढ़ी चली आ रही, शिक्षा-प्रद तथा मनोरञ्जक कहानियों का संग्रह। मूल्य १)

३१. नए युग की कहानियाँ—विश्वमैत्री के प्रचारक जर्मन कलाकार स्टीफन ज्विग, मानवता की भावना को बहुत ऊँचे उठा देने वाले खलील जिब्रान, फ्रांस के मोपांसा, इँग्लैण्ड के डिकन्स,

हंगरी के करोली किसफलोदी, चीन के यावचुङ्ग और महाराष्ट्र (भारत) के खण्डेकर की सर्वोत्कृष्ट कहानियो का संग्रह। मूल्य १॥)

३२. फलाहार—भोजन मे फलों और साग-भाजी का कितना महत्त्व है, यह पुस्तक के पढ़ने से पता लगता है। मूल्य १।)

श्री डाक्टर रघुवरदयाल कृत—

३३. गल्प संदोह, ३४. गल्पमंजुल, ३५. गल्पलतिका—
अश्लील और भ्रष्ट कहानियो से चरित्र पर बुरा प्रभाव पड़ता है। इन तीनो सग्रह मे दी हुई कहानियो का उद्देश्य उस दिशा से जनता को मोड़ कर सामाजिक सुधार की ओर लाना है। एक बार आरम्भ करने से छोड़ने को दिल नहीं चाहता। सभी अवस्था के नर-नारियो के पढने योग्य है। प्रत्येक पुस्तक का मूल्य १)

३६. सूखे सन्तरे—सम्पादक तथा संग्रह कर्ता श्री रामचरण महेन्द्र, एम ए.। चुने हुए चार एकाकी नाटकों का सग्रह। इनके लेखक सेठ गोविन्ददास, डा. रामकुमार, श्री आरसीप्रसाद सिंह और श्री रामचरण महेन्द्र ऐसे हिन्दी जगत् के प्रसिद्ध और उच्च कोटि के कलाकार हैं। मूल्य १।≈)

३७.(क) विशाल भारत का इतिहास—श्री वेदव्यास,एम.ए ,एल एल.बी.। हिन्द-चीन में स्थित कम्बोडिया द्वीप मे भारतीय संस्कृति और सभ्यता का सचित्र वर्णन। मूल्य ३॥)

३७ (ख) ऋग्वेद पर व्याख्यान—श्री भगवद्दत्त बी. ए.
ऋग्वेद सम्बन्धी पूर्णज्ञान। मूल्य २॥)

३७ (ग) वेद का स्वाध्याय—श्री स्व प० राजाराम शास्त्री
२०० वेद मन्त्र तथा उनकी व्याख्या। मूल्य १॥)

३७. (घ) अवेस्ता—श्री स्व. राजाराम शास्त्री। मूल्य १।)
(पारसी धर्मग्रन्थ) एक अध्याय की सस्कृत छाया और हिन्दी टीका।

लघु ग्रन्थ

श्री चारुदेवकृत—

३८. भारतीय संस्कृति ।

श्री विश्वबन्धुकृत—

३९. सच्चा सन्त, ४०-४१ प्रभु का प्यारा कौन ? २ भाग, ४२. जीते जी ही मोक्ष, ४३ आदर्श कर्मयोग, ४४. वीर त्यागी. ४५. समता धर्म, ४६. सदाचार संग्रह, ४७. सिद्ध साधक कृष्ण, ४८. विश्वशांति के पथ पर ।

सबके एक जैसे दाम

एक प्रति ≥), पच्चीस प्रति ४), सौ प्रति १५)

श्री विश्वबन्धुकृत—

४९. भारत राष्ट्र की भाषा और लिपि, ५० सलोनो का त्योहार, ५१. कृष्णाष्टमी के पर्व का पुनरुद्धार ।

प्रो. इन्द्रकृत—

५२. नये युग मे दान ।

प्रो. प्यारेलालकृत—

५३. शब्द ब्रह्म की अनेक रूपता ।

सबके एक जैसे दाम

एक प्रति –)॥, पच्चीस प्रति २), सौ प्रति ७)

(सब लघु ग्रन्थो को मिलाकर भी ले सकते हैं)

English

54 **Siddha Bharati or The Rosary of Indology**—Edited by Prof *Vishva Bandhu* Contains 108 original papers, contributed, one each, by 108 eminent scholars from Asia, America and Europe 2-Volume set Rs 60

55 **Sarup-Bharati**—(Dr. L Sarup- Commemoration Volume)—Edited by Prof Jagan Nath Aggarwal and Prof Bhim Dev Shastri Contains 40 papers on Indology. Rs 30

56 **The Etymologies of Yaska**—Dr Siddheshwar Varma M A, D. Litt A complete critical and systematic examination of etymologies of Yaska in the light of modern philology Rs 25

57 **Vedic Origins of Zoroastrianism**—*Shri R R. Kashyap,* M Sc Rs 2/8

मिलने का पता—विश्वेश्वरानन्द पुस्तक भण्डार, होशिआरपुर ।

एजेंसी पुस्तकें—

कुछ अत्यन्त उपयोगी ग्रन्थ

श्री स्वामी कृष्णानन्द कृत--

१ आनन्द मार्ग—योगीराज श्री सियाराम जी का जीवन चरित्र, विचार धारा और वचनो का संग्रह। मूल्य २)

२ धर्म की आवश्यकता--मानव जीवन की उन्नति के लिए धर्म की अनिवार्य आवश्यकता को बडे रोचक ढग से वर्णन किया गया है। मूल्य १)

३ सैकुलर स्टेट अथवा रामराज्य— मूल्य ≡)

4 Sway of Materialism over India—
Examination of modern Indian political trend towards its Moral rearmament (English) Price, 1/8

5. The Role of Religion and Peace—
A Vindication of religion (English). -/12/-

6. Secular state or Ram Rajya—
Examination of present-day Indian political trend towards its spiritualisation (English) 2/-/-

श्री स्वामी सत्यानन्द कृत—

१. वाल्मीकीय रामायण सार २॥) २. भक्ति दर्पण २।॥)

३. श्रीमद्भगवद्गीता भाषा भाष्य ।॥) ४. स्थितप्रज्ञ के लक्षण =)

५. दयानन्द प्रकाश ४॥)

हमारी राष्ट्रीयता—श्री मा. सा. गोलवल्कर। भारतीय राष्ट्रीयता पर एक अधिकृत निबन्ध। १॥)

डा हेडगेवार—राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संस्थापक का जीवन-परिचय तथा कुछ पत्रो वा भाषणो का सग्रह १)

गुरुजी—श्री गंगाधर इन्दूरकर। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के सर सघचालक श्री मा सा. गोलवल्कर (गुरुजी) का संक्षिप्त-जीवन। १)

छत्रपति—लेखक—श्री परमानन्द शर्मा एम. ए.
वीर रस प्रधान काव्य। उत्तर प्रदेश सरकार ने इसके रचयिता को इस पुस्तक के लिए ५००) का पुरस्कार दिया है। मूल्य ३)

श्री सन्तराम जी की अन्य पुस्तकें

१. हमारा समाज

जात-पॉत कैसे बनी ? उसके दुष्परिणाम तथा उस के तोड़ने के उपाय । मूल्य ६)

२. सुखी परिवार

यह पुस्तक परिवार में प्रायः होने वाले दुःखों से बचने के लिए बहुत उपयोगी है । विवाह के समय उपहार देने योग्य है । मूल्य ३)

३. रति विज्ञान

यौन-ज्ञान सम्बन्धी अपूर्व पुस्तक । मूल्य ४)

४. रस धारा

वर्तमानकाल के कवियो का सुन्दर संग्रह । मूल्य ।।।)

५. लोक व्यवहार

डेली कारनेगी की प्रसिद्ध पुस्तक "How to win friends and influence people" का सरल हिन्दी अनुवाद । मू ६)

६ आदर्श पत्नी मू. २।।)   ७ उद्बोधनी ३)

८ सद्गुणी बालक १।।)

मिलने का पता—

विश्वेश्वरानन्द पुस्तक भण्डार

(P. O) साधु आश्रम, होशिआरपुर ।